साहित्य-रश्मियाँ

दिल्ली
ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
बम्बई कलकत्ता मद्रास
१९७६

प्राक्कथन

त्रिवर्षीय उपाधि पाठ्यक्रम के सामान्य हिन्दी विषय की इस पाठ्यपुस्तक का प्राक्कथन लिखते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। विश्वविद्यालय ने यह निर्णय लेकर कि वह सामान्य हिन्दी और सामान्य अंग्रेजी की पाठ्य-पुस्तकें स्वय तैयार करायेगा, एक ऐतिहासिक कार्य किया है।

अपने २९ वर्ष के जीवन मे पहली बार विश्वविद्यालय ने यह निर्णय लिया है। हिन्दी हमारे प्रदेश की अपनी भाषा है वह सम्पर्क भाषा भी है और राष्ट्र भाषा भी है। विश्वविद्यालय मे प्रवेश पाने वाले और उसकी प्रथम वर्षीय परीक्षा मे बैठने वाले छात्र को हिन्दी का ज्ञान विश्वविद्यालय अब अपने ही द्वारा सपादित की गई पुस्तक के द्वारा करा सकेगा।

यह स्पष्ट है कि इस स्तर पर आकर हमे हिन्दी हिन्दी मे एक मौलिक भेद करना पडता है। एक हिन्दी वह है जो सभी वर्गों और सभी सकायो के लिए है और दूसरी वह जो साहित्यिक अध्ययन के लिए कला सकाय या मानविकी के लिए होती है। यह पुस्तक सभी वर्गों और सकायों के छात्रो के लिए है। मानविकी सकाय, समाज शास्त्रीय सकाय, विज्ञान सकाय, वाणिज्य सकाय—सभी सकायों को अपने आपको और अपने विषय को हिन्दी मे अभिव्यक्त करने की योग्यता, विषय की अनुकूलता और वैविध्य के साथ आनी चाहिए। इस अभीष्ट को पाने के लिए शब्द सपत्ति का परम्परागत भडार और ज्ञान-विज्ञान के विकास और विस्फोट की स्थिति से तरग रूप मे आवर्तित नव-नव 'वागर्था विवसपृक्त' वाणी का प्रसाद किन-किन तत्रो और तकनीको से भाषा की प्रकृति के अनुकूल बन सकता है, इसका बोध और अभ्यास दोनो अपेक्षित है। केवल शब्द-सपत्ति का ही प्रश्न नही है, भाषा, वाक्य-समूह मे अभिव्यक्त हो कर नई-नई बातो को प्रस्तुत करने के लिए शैलीगत नये-नये प्रयोग करके नये-नये रूपो मे विधाओ को जन्म देती है और विविध शैलियो का विकास करती है। इन अधुनातन नव-नव शैलियो का ज्ञान भी विचारो और भावो को व्यक्त करने मे कुछ कौशल को पाने मे उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

इसमें दो मत नहीं हो सकते कि हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन को अपनी विशेष परिस्थितियों के कारण विशेष महत्त्व प्राप्त है। इसी बात को ध्यान में रख कर विश्वविद्यालय ने इस कार्य को संपादित करने के लिए जिस संपादकमंडल का गठन किया उसमें डा० सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', डा० रामविलास शर्मा जैसे हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान भी रखे गये और अपने विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर, डा० सरनामसिंह शर्मा एवं डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय और डा० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा भी रखे गये और दोनों के सेतु रूप डा० सत्येन्द्र, जो अपने विश्वविद्यालय के भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष रहे हैं, एवं हिन्दी साहित्य में भी मूर्धन्य स्थान रखते हैं, संयोजक नियुक्त किये गये। इन्होंने परिश्रमपूर्वक यह संग्रह संपादित किया है। इसमें भूमिका और व्याकरण वाला खंड संयोजक-संपादक द्वारा ही प्रस्तुत कराया गया है। इन दोनों की आवश्यकता और उपयोगिता स्वयं सिद्ध है, क्योंकि एक में, अर्थात् भूमिका में विविध विधाओं का परिचय दिया गया है और व्याकरण से भाषा के आन्तरिक तंत्र और नियमिक तत्त्वों का परिज्ञान होता है। व्याकरणांश उदाहरणार्थ प्रयोगात्मक रूप का ही है। विस्तृत ज्ञान के लिए किसी भी प्रमाणिक व्याकरण की सहायता ली जा सकती है।

इन शब्दों के साथ में हम 'साहित्य-रश्मियाँ' नामक संग्रह का स्वागत करते हुए विश्वविद्यालय के छात्रों को इसे संप्रेषित करते हैं, इस आशा के साथ कि वे इससे अभीष्ट योग्यता प्राप्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे।

कुलपति-निवास
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर
२४ जून १९७६ ई०

गोविन्द चन्द्र पांडे
कुलपति

विषय-सूची

पद्य खण्ड

व्याकरण एवं रचना खण्ड

परिशिष्ट

भूमिका

यह सामान्य हिन्दी की पाठ्य-पुस्तक है। हिन्दी हमारे लिए राष्ट्रभाषा है, राजभाषा है, मातृभाषा भी है और भारत की सपर्क भाषा भी है।

विश्वविद्यालय के स्तर पर आकर सामान्य हिन्दी का पठन-पाठन बोधोन्नयन (कम्प्रीहेंसन) मात्र के लिए नही हो सकता। एक ओर तो यह महती आवश्यकता है कि बोधोन्नयन की क्षमता को कम न होने दिया जाय, वरन् उसका और उन्नयन किया जाय, वही यह भी आवश्यक है कि हिन्दी को भावो और विचारो की अभिव्यजना की शक्ति से भी अधिकाधिक परिचित हुआ जाय। हिन्दी हमारी अभिव्यक्ति की भी भाषा है। उसे प्रत्येक प्रकार की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे सशक्त होना चाहिये। अत हिन्दी के इस पाठ्यक्रम मे साहित्य की विविध विधाओं को स्थान दिया गया है। विविध विधाओं के द्वारा अभिव्यक्ति अनेक रूप ग्रहण करती है। इस प्रकार साहित्य का सवर्द्धन तो होता ही है विधाओ मे विभक्त अभिव्यक्ति भी नयी शक्ति अर्जित करती है और उसमे भाषा और भाव की सपन्नता की सभावनाए भी बढ जाती है।

साहित्य रूप—गद्य एवं पद्य

साहित्य को हम पहले दो रूपो मे देखते है। एक रूप है 'गद्य' का, दूसरा रूप है 'पद्य' का। 'गद्य' है भाषा का सहज व्यावहारिक रूप। 'पद्य' छद बद्ध होता है, या किसी विशिष्ट लय से युक्त होता है। इसे विशिष्ट लय इसीलिए कहा गया है कि इसकी लय इसे सगीत की लय से भिन्न रखती है, और छद की मात्रिक-वर्णिक लय के निकट रहती है, भले ही स्वच्छद

छंद ही हो। इस संग्रह में इसी आधार पर दो खंड हैं—एक गद्य-खंड एवं दूसरा पद्य-खंड।

चंपू

यों काव्य-शास्त्र ने एक 'चंपू' रूप भी माना है, जिसमें गद्य-पद्य का मिश्रित रूप रहता है। यह 'चंपू' रूप तो मिश्रण ही है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि रूप तो दो ही हैं : एक गद्य-रूप, दूसरा पद्य-रूप। गद्य और पद्य को मिलाकर कोई नया रूप नहीं खड़ा होता है। चंपू में भी गद्य रूप और पद्य रूप को अलग पहचाना जा सकता है, इनसे भिन्न चंपू में कोई और रूप नहीं विकसित होता।

गद्य और पद्य कितनी ही विधाओं में विभक्त हो जाते हैं।

काव्य के भेद

साहित्य के इतिहास से यह विदित होता है कि साहित्य में पहले 'पद्य' की प्रधानता रही। पद्यबद्ध रचना 'काव्य' कही जाती थी—और इसी कारण साहित्य और काव्य में अभेद था। गद्य युग के प्रतिष्ठित होने से पहले ज्ञान-विज्ञान भी पद्यबद्ध ही लिखे जाते थे। आयुर्वेद, शालिहोत्र, राजनीति आदि के ग्रंथ पद्यबद्ध ही होते थे। भारतीय काव्यशास्त्र ने काव्य के दो बड़े भेद किये : एक श्रव्य, दूसरा दृश्य। 'दृश्य' काव्य में नाटक और उसी के वर्ग की रचनाएं आती हैं। 'श्रव्य' में महाकाव्य, खंडकाव्य एवं मुक्तक आते हैं। गद्य का महत्व प्रायः सभी साहित्यों में पद्य के बाद बढ़ा। विज्ञान-युग और औद्योगिक क्रान्ति से गद्य की विशेष प्रतिष्ठा को जोड़ा जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गद्य

गद्य ही आज हमारी व्यावहारिक और सामाजिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। फलतः हमारी आवश्यकता के अनुरूप गद्य भी व्यावसायिकता के साथ साहित्य का माध्यम बना और वह कई प्रकार की विधाओं में बंटने लगता है।

हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन ने गद्य को और अधिक प्रोत्साहन दिया तथा गद्य मे नयी-नयी बातें लिखी जाने लगी । भारतेन्दुजी ने कवियो और महान पुरुषों की सक्षिप्त जीवनियाँ लिखी; इतिहास, पुरातत्त्व, धर्म और दर्शन पर निबध लिखे; अपनी यात्राओ के रोचक विवरण लिखे, ललित निबंध लिखने की प्रवृत्ति भी विशेष लक्षित होती है । आलोचनात्मक निबध भी लिखे गये । कहानी ने भी नया रूप ग्रहण किया । उपन्यास का आरभ भी भारतेन्दु-युग मे ही हुआ । हिन्दी गद्य के युग का आरभ ही वैविध्य के साथ हुआ । यह विविधता पहले तो प्रयोगात्मक थी, पर अपनी यात्रा मे आगे इन्होंने विधाओ का रूप ग्रहण कर लिया; तथा, इनमे और भी नये-नये प्रयोग जुड़ते गये जो कुछ और आगे बढ कर विधा रूप मे परिणत होते गये । इस समय हमे हिन्दी गद्य मे निम्न विधाए मिलती हैं ·

१. निबध (ललित)	२. कहानी
३ उपन्यास	४. सस्मरण
५. रिपोर्ताज	६. जीवनी
७. आत्मकथा	८. आत्मकथा (कल्पित)
९. यात्रावृत्तान्त	१०. इटरव्यू (भेंट)
११. रेखाचित्र	१२. गद्य-काव्य
१३. एकाकी	१४. रेडियो रूपक

यदि भारतीय काव्यशास्त्र के विभाजन से देखें तो उक्त विधाओ मे 'एकाकी' तो दृश्य-काव्य माना जायगा और शेष सभी श्रव्य या पाठ्य हैं । यह भी द्रष्टव्य है कि इन सभी विधाओ का (उपन्यास को छोडकर) मूल पत्रकारिता से जुडा हुआ है ।

उक्त विधाओ मे निबध, कहानी, उपन्यास और एकाकी सर्वाधिक लोकप्रिय विधाएं हैं, इन विधाओ मे बहुत रचनाए हुई हैं ।

निबंध/लेख

आज जिसे हम निबध कहते हैं, वह भारतेन्दु-युग मे प्राय. 'लेख' कहा

जाता था। अब हम लेख और निबंध में भी भेद करते हैं। 'लेख' सामान्य रचना होती है, इसका क्षेत्र-विस्तार निबंध से अधिक होता है। वस्तुतः निबंध भी लेख का ही एक रूप माना जा सकता है। लेख अब भी पत्रकारिता से जुड़ा हुआ है।

हिन्दी में निबंध आरंभ में लेख का पर्याय होकर धीरे-धीरे विशेष सौष्ठव से युक्त होता गया है। इसमें आज हमें विशेष परिमार्जन मिलता है, और भावों और विचारों की उड़ानें भाषा के प्रवाहपूर्ण लालित्य से युक्त हो गयी है। पाश्चात्य जगत के ऐसे (essay) से प्रेरणा भले ही ग्रहण की गयी हो, पर हिन्दी निबंध का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है।

निबंध : वर्गीकरण

हिन्दी निबंधों का सुविधा के लिए यह वर्गीकरण किया जाता है—

वर्णनात्मक निबंध किसी व्यक्ति या वस्तु का सांगोपांग, नख से शिख तक का वर्णन होता है। स्थिर रूप में जो वस्तु जैसी है शब्दों में उसे यथावत् निरूपित करना ही वर्णन करना है।

विवरणात्मक निबंध में विवरण की प्रधानता रहती है। विवरण का अर्थ होता है ब्यौरा देना या ब्यौरेवार किसी घटना या व्यापार का वर्णन।

कथात्मक निबंध में हलका कथा-सूत्र या उसका अंश रहता है। जब कथा पर ही बल होगा तो वह रचना निबंध न होकर कहानी हो जायगी। किन्तु कथात्मकता एक हलके सूत्र की भाँति हो तो वह निबंध कहा जायगा। इन निबंधों में कथा की कल्पना अन्य उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए की जाती है। 'राजा भोज का सपना' ऐसा ही कथात्मक निबंध है। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की 'दण्डदेव की आत्म-निवेदन' भी निबंध ही

है, आत्मकथा का सूत्र तो बहाने के लिए है।

विचारात्मक निबंध मे विचार प्रतिपादन या किसी सिद्धान्त का निरूपण किया जाता है।

भावात्मक निबंध मे भावोन्मेष की प्रवृत्ति रहती है।

वास्तव में अब निबंध का जिस रूप में विकास हो रहा है, उससे लगता है कि इसके दो भेद ही किये जा सकेंगे—

१. कथ्यप्रधान   २ लालित्य प्रधान (ललित निबंध)।

निबंध मे शैली का कम महत्त्व नही। जहाँ निबंधकार वर्ण्य और कथ्य से अधिक शैली और शिल्प के लालित्य को महत्व दे और लालित्य को व्यक्त करने मे ही सार्थकता माने तो वह ललित निबंध माना जायगा।

अच्छे निबंध की परिभाषा मे हास्य-व्यग के साथ वाक्वैदग्ध्य (wit) को भी स्थान दिया गया है। इसका समावेश ललित-निबंधो मे तो अवश्य ही रहता है, यो सामान्य निबंधो मे इन्हे गूथने से निबंध की सार्थकता बढ जाती है।

यही यह बात समझ लेनी चाहिये कि गद्य की अन्य जितनी भी लघु-विधाए हैं, अर्थात् उपन्यास, कहानी और वृहद जीवनी को छोडकर जो शेष विधाए हैं, प्राय उन सबका आधार निबंध का ही कोई प्रकार रहा है।

रेखाचित्र

जैसे, रेखाचित्र क्या है? यह वर्णनात्मक निबंध का विशेष कौशल और विशेष दृष्टि से प्रस्तुत किया गया सस्करण ही है। 'रेखाचित्र' शब्द ही बताता है कि लेखक शब्दो के माध्यम से रेखाए प्रस्तुत करके एक चित्र, जो स्थिर चित्र है, उसे अकित कर रहा है। यह शब्द चित्रकला के क्षेत्र से लिया गया है। चित्रकला मे जैसे किसी व्यक्ति या स्थिति का चित्र कुछ ऐसी प्राणवान रेखाओ से प्रस्तुत किया जाता है कि व्यक्ति के सपूर्ण व्यक्तित्व का स्थूल रूप भले ही न उभरे पर उसके रूप-आकृति का एक ऐसा चित्र अवश्य बन जाता है, जो उसकी किन्ही विशेषताओ को तीखेपन से उजागर कर देता है। ऐसे रेखाचित्र से उस व्यक्ति मे एक ओर तो किसी कथा-

कहानी की पात्रता की संभावना निहित रहती है, पर गत्यात्मकता का अभाव रहता है; इन्हीं संभावनाओं के कारण कभी-कभी रेखाचित्र को कहानी भी भ्रमात् मान लिया जाता है।

संस्मरण

किन्तु रेखाचित्र में साहित्यकार की अपनी स्मृतियां और उनसे जुड़ी अनुभूतियां सहज ही उतर आती हैं। फलतः रेखाचित्र दूसरी ओर संस्मरण से जुड़ा हुआ प्रतीत होने लगता है। संस्मरण में वर्णनात्मकता भी रहती है और विवरणात्मकता भी। विवरणात्मकता में क्रमशः स्थितियों और व्यक्तियों का एक-एक चरण आगे और पीछे जुड़ा हुआ अंकित किया जाता है। संस्मरण में ये अलग-अलग चरण के चित्र रेखाचित्र भी हो सकते हैं पर प्रत्येक में आगे से जुड़ने की योग्यता या आकांक्षा पायी जायगी। उधर मात्र 'रेखाचित्र' समस्त संभावनाओं के साथ भी अपने में मुक्तक की भांति पूर्ण और स्वतंत्र होगा, उसमें आगे के किसी चरण की संभावना नहीं प्रतीत होगी। वस्तुतः 'संस्मरण' को 'रेखाचित्र' और रेखाचित्र को संस्मरण से पूर्णतः मुक्त नहीं माना जा सकता। यों दोनों शब्दों के अपने-अपने अर्थों के कारण उनके पारस्परिक भेद को स्पष्ट करने के लिए यह तो कहा ही जा सकता है कि रेखाचित्र में वस्तुनिष्ठता (आब्जैक्टिविटी) को विशेष प्रधानता मिलेगी, जब कि संस्मरण में स्मृतियों से उभरने वाला चित्र होगा, उसमें व्यक्ति-निष्ठता या कलाकार के अंतरंग का तत्त्व प्रधान होगा।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि—

१. रेखाचित्र वर्णनात्मकता को आधार मानता है।	संस्मरण आंशिक वर्णनात्मकता को विवरणात्मकता से जोड़ कर लिखा जा सकता है।
२. रेखाचित्र में शब्दों के द्वारा व्यक्ति या स्थिति का चित्र अंकित किया जाता है।	संस्मरण में ऐसे एक से अधिक भी शब्द-चित्र हो सकते हैं।

३.	रेखाचित्र में मुक्तक जैसी संपूर्णता रहती है। हां, कथात्मकता द्योतक गति या अंश उसमें से व्यंजित हो सकता है।	संस्मरण में ये शब्द-चित्र परस्पर आगे-पीछे जुड़ने की उन्मुखता लिए रहते हैं, अतः मुक्तक की स्थिति उनमें नहीं रहती।
४.	रेखाचित्र में चित्रित छवि संकेत और व्यंजना पर आश्रित रहती है, अतः बौद्धिक संबल से वह भाव-संवेदन तक पहुँचती है।	संस्मरण में लेखक की स्मृति से सामग्री ली जाती है, उससे जुड़ी अनुभूतियों और भाव-संपत्ति कलाकार का मुख्य संबल रहता है, उसके आधार पर वह बौद्धिक व्यंजनाओं पर पहुँचता है या पहुँचाता है।
५.	रेखाचित्र में किसी छवि के वैशिष्ट्य को अंकित करने का ही प्रयत्न होता है।	संस्मरण में स्मृति ने जो रूप-रंग भर दिया है, और एक आत्मीय रस से युक्त कर दिया है, वह चित्रण में प्लावित मिलता है।

संस्मरण के संबंध में यह ठीक ही कहा गया है कि यदि ये लेखक के साथ जुड़े होते हैं तो आत्मकथा की झलक दे उठते हैं और यदि किसी अन्य व्यक्ति से जुड़े होते हैं तो जीवनी का रूप लेने लगते हैं। किन्तु कभी-कभी ये संस्मरण इतने रोचक हो जाते हैं, और यथातथ्य से अधिक काल्पनिक लगने लगते हैं कि इन्हें कहानी भी कह दिया जाता है। सियारामशरण गुप्त ने 'रामलीला' को संस्मरण रूप में लिखा; पर बहुतों ने उसे कहानी ही माना है। यही महादेवी वर्मा के बहुत से संस्मरणों के सम्बन्ध में है, ईं संस्मरण पर 'कहानी' लगते हैं।

यहीं यह बात भी समझ लेने की है कि रेखाचित्र निबंध के वर्णनात्मक भेद की वर्णनात्मकता पर खड़ा होकर भी अपनी गुणात्मकता में एकदम भिन्न हो जाता है। क्योंकि रेखाचित्र में वर्णनात्मकता रहती है अवश्य, पर ध्यान में वर्णन प्रमुख नहीं रहता, उससे उभरता चित्र महत्त्व पा लेता है। निबंध आदि से अन्त तक वर्णन से उलझा रहता है, और वर्णन का कौशल ही उसमें हमें प्रभावित करता है। वर्णनात्मक निबंध में भी किसी

वस्तु या व्यक्ति या स्थिति का सांगोपांग व्यवस्थित और साभिप्राय वर्णन रहता है, प्रस्तुत किया गया चित्र भी समझ में आता है, पर रेखाचित्र में वर्णनात्मकता इतनी स्थूल और इतनी सांगोपांग नहीं रहती है, । इसमें वर्णन छवि के एक वैशिष्ट्य की प्राणवान और सशक्त व्यंजना करता है, जिससे निबंध की वर्णनात्मकता रेखाचित्र के वर्णन-कौशल से भिन्न हो जाती है ।

रिपोर्ताज

निबंध के ही परिवार में एक और नया रूप विकसित हुआ है, रिपोर्ताज, जिसने अपने अंदर 'निबंधात्मकता' या निबंध के गुणों से पत्रकारिता के गुणों को विशेष अपना कर, अपनी नयी कलात्मकता दिखायी है । यथार्थ तो यह है कि यह 'रिपोर्ताज' पत्रकारिता से ही सीधे रूप में संबंधित है । इसमें किसी स्थिति (सिचुएशन) में जो यथार्थता रहती है, उसे मूलाधार के रूप में ग्रहण कर उससे ही जुड़े हुए घटकों में मूलाधार के संबंध से उद्भुदित विविध सरल-जटिल मानवीय संवेदनों को चित्रित किया जाता है । लगता है जैसे पत्रकार को किसी विशेष घटना या स्थिति पर अपने पत्र (समाचार-पत्र) को एक रिपोर्ट देनी थी, पर वह वस्तुनिष्ठ विवरण से अधिक उस स्थिति से संलग्न और उस पर मँडराती हुई मानवीय संवेदनाओं से तादात्म्य कर बैठा—और स्थिति या घटना-विशेष को केवल धुरी बना सका, चित्रण वह उन तत्वों का करने लगा जिनका मानवीय संवेदनशीलता से सीधा संबंध था । इस प्रकार उसकी रचना रिपोर्ताज बन गयी, जिसमें लेखक की कला ने एक नया प्राण फूंक दिया कि उसकी रचना एक विशेष महत्त्व से अभिमंडित हो उठी । अभी रिपोर्ताज की विधा बहुत नयी है, और अभी कलात्मक रिपोर्ताज कम ही लिखे गये हैं, फिर भी जितने लिखे गये हैं उनसे यह सिद्ध अवश्य होगया है कि रिपोर्ताज एक अलग ही साहित्य-विधा है ।

फणीश्वरनाथ रेणु की 'स्टिल लाइफ' इन्हीं तत्त्वों के कारण रिपोर्ताज माना गया है । यों वह केवल एक अस्पताल के कक्ष का ही विवरण तो है,

पर उसमे ग्रस्पताल का वर्णन मात्र नही, उसके वर्णन मे उन बातो को लिया गया है, जो ग्रस्पताल के यथार्थ-रूप की गहराई मे ग्रति-यथार्थ की भाँति विद्यमान रहती हैं। ग्रन्तर्व्याप्त विकृतियो ग्रौर सतह पर सचारित प्रवृत्तियो को ग्रनोखे रूप मे चित्राकित किया गया है। कितने व्यक्तियो की मनोवृत्तियो, मनोविकारो, मनोव्यथाग्रो ग्रौर सकल्पो-विकल्पो का ग्राइना बन गया है यह रिपोर्ताज।

इंटरव्यू (भेंट)

ऐसी ही एक ग्रौर ग्रत्यन्त नवीन विधा का भी उल्लेख यहाँ करना है। यह विधा इटरव्यू या भेंट कहलाती है। लगता है कि यह शुद्ध-रूप मे पत्रकारिता का ही एक ग्रायाम है। सभवत इसका ग्रारभ हिन्दी मे भी राजनीतिक ग्रावश्यकता के कारण पत्रकार जगत मे हुग्रा है। राजनीति को लेकर जो प्रश्न जन-मन मे ग्रौर पाठको मे उठते रहे है, उन्हे लेकर किसी महान राजनीतिक पुरुष से उन प्रश्नो पर समाधान भेंट के माध्यम से चाहा गया। पत्रकार ने उस भेंट-वार्त्ता को ग्रपनी ग्रोर से ग्रारभ-ग्रत जोड कर ग्रौर बीच-बीच मे ग्रावश्यक टिप्पणियाँ देकर रोचक बना दिया। इस प्रकार की भेंट-वार्त्ता का महत्त्व स्वयसिद्ध है। यह रूप लोकप्रिय हो चला ग्रौर साहित्यिको ने भी इसे ग्रपना लिया। इससे यह भी एक विधा-रूप मे परिणत हो गया है। ग्राज इसे एक विधा के रूप मे स्वीकार तो कर लिया है, पर इसके विधा-रूप मे भी इसमे पत्रकारिता का रग ग्रब भी लगा हुग्रा है। किन्तु उसके होते हुए भी 'पत्रकारिता' की सामयिक माँग से जुडते हुए भी यह विधा जिससे भेंट की जाती है, उसके उन ग्रन्तर-पटो को खोलती है जो उसके इतने लेखन के उपरात भी बद रह गये हैं। इस विधा से भेंटकर्ता ग्रपने मन मे उठे प्रश्नो का ही स्पष्टीकरण नही प्राप्त करता, सामान्य पाठक के लिए ग्रौर स्वय लेखक के लिए भी जो बातें गुत्थियो की तरह रही हैं, उन्हे खुलवाने का प्रयत्न करता है।

डा० रणवीर राग्रा ने 'सृजन की मनोभूमि' के 'सदर्भ' मे बताया है कि 'इन भेंट-वार्त्ताग्रो मे मेरा मूल लक्ष्य कृतिकार के सृजन-क्षणो की झाकी

पाना रहा है, न कि तर्कजाल फैला कर उन्हें बहस में उलझा लेना'—फलतः भेंट-वार्ता का महत्त्व स्वयंसिद्ध है।

'इण्टरव्यू' लेखक जिससे भेंट करता है कभी पहले उसको सूचना दे देता है, और जिन विषयों पर बात करना चाहता है, उनको प्रश्न के रूप में लिख कर पहले से ही भेज देता है, जिससे भेंट देने वाला भली प्रकार तैयार रहे, कभी-कभी अनायास ही भेंट कर लेता है और मिलते समय ही आवश्यकतानुसार प्रश्न पूछता जाता है। इन प्रश्नों का उत्तर पा लेने के उपरान्त वह निबंध लिखने बैठता है। इसके लिए पहले वह भेंट देने वाले के चारों ओर के वातावरण का एक धुंधला चित्र प्रस्तुत करता है, फिर उस समय की 'भेंटदाता' की मुद्रा को उभार कर लिखता है। वह प्रश्न और उसके उत्तर को लिपिबद्ध करते समय 'भेंटदाता' की मानसिक प्रतिक्रिया की झलक पर गहरी दृष्टि रखता है। फलतः 'भेंट' में संस्मरण, रेखा-चित्र, औपन्यासिकता, संवादकला आदि कई शैलियों का समावेश हो जाता है।

गद्यकाव्य

यहीं वर्णन-विवरण युक्त विधाओं के साथ 'गद्यकाव्य' पर विचार कर लेना समीचीन होगा, क्योंकि गद्यकाव्य के यों तो दो रूप होते हैं—एक भारतेन्दुकालीन परिपाटी का और दूसरा नवीन।

भारतेन्दुकालीन परिपाटी का 'गद्यकाव्य' इस संग्रह में है, 'चन्द्रोदय' पं० बालकृष्ण भट्टकृत। इस युग में भी ऐसे गद्यकाव्य जो प्रसिद्धि पा सके दो ही रहे—एक भारतेन्दुजी का 'सूर्योदय', दूसरा उक्त 'चन्द्रोदय'। इस गद्यकाव्य में किसी वस्तु का वर्णन किया जाता है और इस वर्णन में मूल आधार संदेह अलंकार का रहता है, उसके सहारे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि और भी कितने ही अलंकारों का समावेश वर्णन करने में किया जाता है। इन्हें अलंकार-परिपाटी के कारण ही काव्य कहा जाता है। वस्तुतः यह 'गद्यकाव्य' 'वर्णनात्मक' निबंध का ही एक रूप माना जा सकता है।

पर, एक दूसरे प्रकार का गद्यकाव्य हिन्दी में भारतेन्दु युग के तुरंत

वाद ही आरभ हो गया था । यह 'भावात्मक निबंध' के रूप से आरभ हुआ और एक स्वतन्त्र विधा के रूप मे पल्लवित-पुष्पित हो उठा । इसमे लेखक अपनी मार्मिक काव्यानुभूति और भावानुभूति को गद्य-बद्ध कर देता है । यह वस्तुतः गद्य-काव्य था और एक नई विधा का सम्मान इसे मिला । इसमे 'काव्य' अलकारारूढ होने के कारण नही होता, वरन् उच्च भावभूमि पर अनुभूत कविता जैसी सवेदनशीलता और मर्मस्पर्शी सौन्दर्यान्वित रसात्मकता होती है, तदनुरूप गद्य मे भी एक लय और मार्दव आ जाता है । इन्हे गद्यकाव्य तो कहा ही जाता है, ये 'गद्यगीत' भी हैं ।

'गद्यकाव्य' का एक और अर्थ हमारे भारतीय काव्यशास्त्र मे होता है । इसके अनुसार कथा, वृत्त एव आख्यायिका गद्यकाव्य है, तभी बाणभट्ट की 'कादम्बरी' गद्यकाव्य है । इस गद्यकाव्य का मूलाधार कथा होती है ।

आत्मकथा (कल्पित)

'कथा' तत्व पर आश्रित हैं गद्य की कई विधाए—किन्ही विधाओं मे कथात्मकता मात्र एक हलके सूत्र के रूप मे रहती है, अत्यन्त विरल । ऐसे गद्य-रूप को कथात्मक निबध ही कहा जा सकता है । भारतेन्दुजी की स्वप्न पर आधारित एक हलके कथा-सूत्र वाली रचना कथात्मक निबध ही है । यह कथा-सूत्र काल्पनिक था । ऐसे ही कल्पित कथा-सूत्र से बनी होती है 'आत्मकथा' (काल्पनिक) । महावीरप्रसाद द्विवेदी रचित 'दण्डदेव का आत्म-निवेदन' ऐसी ही काल्पनिक आत्मकथा है । 'आत्मकथा' का शब्दार्थ है किसी के द्वारा स्वय कही हुई अपनी जीवन-कथा । जब यह कहनेवाला पात्र काल्पनिक होता है तो यह 'काल्पनिक आत्मकथा' कहलाती है । अखौरी यशोदानंदन की 'इत्यादि की आत्मकहानी' बहुत प्रसिद्ध काल्पनिक आत्मकथा है ।

ये काल्पनिक आत्मकथाए यथार्थ आत्मकथाओ की शैली को ही अपनाती हैं । इसके लिए पहले आवश्यकता यह है कि जिस पदार्थ, वस्तु या प्राणी की आत्मकथा लिखी जाती है, उसे मनुष्य के समान माना जाय—उसे मनुष्य का रूपक दिया जाय । उस वस्तु या प्राणी के सबध मे लेखक

को यथासंभव इतना ज्ञान हो कि वह उसकी 'आत्मकथा' को प्रामाणिक बना सके।

आत्मकथा में इन बातों पर ध्यान दिया जाता है:

१. किसी व्यक्ति, पक्षी, पशु, इमारत आदि को आत्मकथा का नायक स्वीकार करते हैं।

२. उसे मनुष्य की भांति बोलने वाला तथा उसी की भांति दुःख-सुख अनुभव करने वाला कल्पित किया जाता है।

३. यदि वह कोई ऐतिहासिक सत्ता है तो इतिहास की अनुकूलता ध्यान में रख कर उससे उसका वृत्त कहलाया जाता है। कल्पना का उपयोग केवल घटनाओं की व्यवस्था और संयोजना में होता है।

४. यदि वह केवल कल्पित है तो अपने अभिप्राय के अनुकूल वृत्त की कल्पना कर ली जाती है।

५. आत्मकथा के द्वारा इस प्रकार सभी पदार्थों अथवा व्यक्तियों का सामान्य चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

६. भावुकता का पुट दिया जाता है।

७. वर्णन में कोई अभिप्राय अवश्य रहता है।

ऐसे निबंधों को आरम्भ करने के लिए कभी स्वप्न की कल्पना की जाती है। स्वप्न में रुपया या लेखनी अपनी कहानी कहती है, या उससे होने वाली किसी ध्वनि में उसकी कहानी के संकेत की कल्पना की जाती है, कहीं सीधे ही कथा आरम्भ कर दी जाती है।

किन्तु यथार्थ 'आत्मकथाओं' का बहुत महत्त्व है। ये 'जीवनी' का ही एक भेद है।

आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण तथा डायरी का भेद

आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण एवं डायरी तीनों ही आत्म-अभिव्यक्ति से सम्बन्धित हैं। 'संस्मरण' में तो केवल कुछ चुने लोगों के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन रहता है। ये घटनाएं वे होती हैं, जिनसे लेखक प्रभावित होता है। यथा हिन्दी में महादेवीजी के संस्मरण आदि प्रसिद्ध

हैं। डायरी मे लेखक अपनी दिनचर्या तथा दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाओ का वर्णन करता है। यह तिथि-क्रम से लिखी जाती है।

प्रायः इन तीनों में एक-दूसरे के तत्त्व मिले रहते हैं, संस्मरणों का जीवनी मे तथा डायरी का संस्मरणो मे समावेश हो जाता है। तुजुक-ए-बाबरी बाबर की आत्मकथा भी है और संस्मरण व डायरी भी। डायरी मे व्यक्तित्व की उन्मुक्तता अधिक रहती है। संस्मरणो मे नायक के जीवन की घटनाओ के साथ अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाए भी आ सकती है। जीवनी मे कलात्मकता एव एकसूत्रता अधिक रहती है। जीवनी मे व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति रहती है।

जीवनी, प्रकार

जीवन-चरित्र दो प्रकार से लिखे जाते है—प्रथम तो कोई अन्य पुरुष किसी व्यक्ति-विशेष से प्रभावित होकर उसका जीवन-चरित्र लिखता है। ऐसे जीवन-चरित्रो मे लेखक को कई असुविधाए हो सकती है। उसके पास पूरी सामग्री न हो, नायक के प्रति उसका श्रद्धा-भाव इतना बढ जाय कि वह उसके दोषो को स्वीकार ही न करे। दूसरे स्वय अपना जीवन-चरित्र (आत्मकथा) लिखा जाय। इसमे स्वय अपनी जीवनी सार्थक, वास्तविक तथा उपयोगी रहती है। डा० जॉन्सन ने बताया है—हाँ, ऐसे आत्म-चरित्रो मे लेखक के सकोच, अहकार अथवा व्यक्तिगत रुचियो से दोष उत्पन्न हो सकता है।

कसौटी एवं महत्त्व

जीवनी की कसौटी क्या है? यह तो निर्विवाद है कि जीवनी मे नायक होता ही है, केवल एक ही व्यक्ति 'नायक' होता है। नायक के जीवन-वृत्त की घटनाए भी होती है, यद्यपि इन घटनाओ को उपन्यास अथवा कहानी की भाँति आदि-अन्त का मेल मिलाकर नही प्रस्तुत किया जा सकता, ये तो नायक के जीवन-सूत्र मे पिरोये हुए मणि-मुक्ताओ की भाँति एक के अनन्तर दूसरी तिथि-क्रम से ही उपस्थित की जाती है, पर उनमे कथात्मक

रोचकता तो होगी ही, यथार्थ घटनाओं और नायक के यथार्थ क्रिया-कलापों की पृष्ठभूमि और वातावरण भी अनिवार्य है। नायक की प्रेरणाओं के स्रोत क्या हैं, और नायक से किसको कब क्या प्रेरणा मिली इसको भी समाविष्ट करना होता है। पर इन सबमें नायक के मनोवैज्ञानिक चैतन्य अथवा उसके चेतन मन और अवचेतन मानस को सजीव रूप से, संयम से और शैली के रस से सिक्त करके चित्रित करना होता है, न तो जीवनी को उपन्यास बनाया जा सकता है, न किसी मशीन के कार्यों का विवरण। सजीव मनुष्य की यथार्थ प्रवृत्तियों को रोचकता सहित चित्रित करना ही अभीष्ट होता है। इसमें दो बातें आवश्यक हैं—

१. सेल्फ-कॉशसनेस—आत्म-चेतना; अपने को पहचानने की शक्ति का होना।

२. रससिक्त संस्मरण—कहानी कहने की शक्ति तथा कलापूर्ण शैली जीवनी को उच्चकोटि के साहित्य में रख देते हैं।

आत्म-चरित

आत्म-चरितों के सम्बन्ध में पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी के एक लेख का निम्न उद्धरण उपयोगी है—

"जहां तक आत्म-चरित लिखने की प्रथा का सम्बन्ध है आधुनिक भारतीय भाषा में हिन्दी का नम्बर सबसे अव्वल आता है। कविवर बनारसीदास जैन का 'अर्द्ध-कथानक' आज[1] से ३११ वर्ष पूर्व सन् १६४१ ई० में लिखा गया था। इससे अधिक पुराना आत्म-चरित मराठी, बँगला, गुजराती इत्यादि में भी मिलना सम्भव नहीं। स्वयं रूसो का आत्म-चरित, जो अपनी स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध है, इस ग्रन्थ से कितने ही वर्षों बाद लिखा गया था। 'अर्द्ध-कथानक' की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उसमें कविवर ने अपने जीवन की अनेक साधारण-से-साधारण घटनाओं की ही चर्चा नहीं की, बल्कि अपने दुश्चरित्रों को भी निस्संकोच स्वीकार कर लिया है। किसी तरह का दुराव-छिपाव नहीं किया है।

[1]यह लेख चतुर्वेदी जी ने लगभग २४ वर्ष पूर्व लिखा था।

'उदाहरणार्थ कविवर ने अपनी प्रणय-कथा का वर्णन स्पष्ट शब्दों मे कर दिया है। चौदह वर्ष की उम्र से ही वह प्रेम-पयोनिधि मे फँस गये थे और भयकर बीमारी ले बैठे थे। परिणाम जो होना था वही हुआ। उनके जो नौ बच्चे हुए वे *सभी काल कवलित हो गये और दो पत्नियाँ भी* चल बसी। फिर भी उन्होंने तीसरी शादी की—

नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यो तरवर पतझार ह्वै रहे टूठ से होइ।

'*'अर्द्ध-कथानक'* से देश की तत्कालीन परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश पडता है। *यह बात ध्यान देने योग्य है कि कविवर* बनारसीदास जी महाकवि तुलसीदास जी के समकालीन थे और सभवत उन्हें महाकवि के सत्सग का सौभाग्य ही प्राप्त नही हुआ था, प्रत्युत उनसे वह प्रमाण-पत्र भी मिला था कि आपकी कविता मुझे प्रिय है।

''अर्द्धकथानक' के बाद नम्बर आता है कविवर बिहारी के कुछ आत्म-चरितात्मक दोहो का, जो सवत् १७२१ के लिखे हुए है।

'इन दोहो मे वृन्दावन मे कविवर बिहारी ने नागरीदास जी के यहाँ शाहजहाँ के आगमन का वृत्तान्त लिखा है और वही पर कविवर ने शाहजहाँ को अपनी कविता भी सुनायी थी।

'इसके बाद जयपुर-नरेश के यहाँ जाने और इस प्रसिद्ध दोहे के बनाने का भी इतिहास दिया है—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सो रम्यो, आगे कौन हवाल ॥

'*आधुनिक काल मे स्वर्गीय प० प्रतापनारायण मिश्र तथा राधाचरण* गोस्वामी ने आत्म-चरित लिखने प्रारम्भ किये थे, पर दुर्भाग्य की बात है कि वे अधूरे ही छोड दिये। मिश्र जी ने अपने लेख की भूमिका मे आत्म-चरितो की महिमा का वर्णन बहुत सुन्दर ढग पर किया था।

"एक घास का तिनका हाथ मे लीजिये और उसकी भूत और वर्तमान दशा का विचार कर चलिये तो जो-जो बात उस तुच्छ तिनके पर बीती है, उसका ठीक-ठीक वृत्तान्त तो आप जान ही नही सकते, पर तो भी इतना

अवश्य सोच सकते हैं कि एक दिन उसकी हरीतिमा सब्जी किसी मैदान की शोभा का कारण रही होगी, कितने बड़े-बड़े रूप-गुण-बुद्धि-विद्यादि विशिष्ट उसको देखने को आते होंगे, कितने ही क्षुद्र कीटों एवं महान् व्यक्तियों ने उस पर विहार किया होगा, कितने ही क्षुधित पशु उसके खा जाने को लालायित रहे होंगे। अथवा उसको देखकर यह जानने की इच्छा होती है कि न जाने कैसी मन्द वायु, कैसी अघघोर वृष्टि, कैसे कोमल-कठोर चरण-प्रहार का सामना करता आज इस दशा को पहुँचा है। कल न जाने किस अग्नि में जलकर भस्म हो, इत्यादि। जब तुच्छ वस्तुओं का चरित्र ऐसे-ऐसे भारी विचार उत्पन्न करता है, तो यह तो एक मनुष्य पर बीती हुई बातें हैं। सत्याग्रही लोग इन बातों से सैकड़ों भली-बुरी बातें निकालकर सैकड़ों लोगों को चतुर बना सकते हैं।"

'रामप्रसाद 'बिस्मिल' की फांसी पर चढ़ने से कुछ पूर्व ही लिखी गयी 'आत्मकथा', आत्मचरित या आत्मकथन का उल्लेख हुआ है। उसे आत्मचरित-लेखन में आदर्श माना जा सकता है। यह आकार में छोटी है फिर भी इसमें अच्छी जीवनी और आत्मकथा के सभी लक्षण मिल जाते हैं। 'बिस्मिल' क्रान्तिकारी दल के थे, देश के लिए अपने प्राणों को प्रतिपल हथेली पर रखते थे। यह जीवनी या आत्मकथा जब वे जेल में सींखचों में बंद थे, और मृत्यु के क्षण गिनती के ही रह थे, तब लिखी गयी थी—इससे ही समझ सकते हैं कि इसका कितना महत्त्व हो सकता है।'

यात्रा-विवरण

यात्रा-सम्बन्धी निबंध विवरणात्मक होते हैं। विवरणात्मक निबंधों में जिन बातों की आवश्यकता है, वे सभी यात्रा सम्बन्धी निबंधों में मिलनी चाहिए। विवरण क्रमपूर्वक हो, सुशृंखलित हो। जो बात पीछे कहनी है वह आगे कह देने और जो आगे कहनी है उसे पीछे कह देने से शृंखला विच्छिन्न हो जाती है और विवरण भ्रामक हो उठता है। वे बातें अथवा वे स्थल निबंध में विशिष्ट स्थान पाने के अधिकारी हैं जिनमें या तो (१) कोई प्राकृतिक सौन्दर्य हो या, (२) कोई ऐतिहासिक स्थापत्य हो या,

(३) कोई मनुष्य की अद्‌भुत कृति हो, या (४) कोई ऐसी वस्तु हो जो मन में विशेष श्रद्धा, घृणा, भय अथवा आश्चर्य उत्पन्न करे, या (५) कोई ऐसी वस्तु हो जिससे मनुष्य के किसी धार्मिक या सामाजिक व्यवहार-विश्वास का पता चले।

ऐसे स्थलो का विस्तारपूर्वक वर्णन करने की आवश्यकता है। ये वर्णन ऐसे विशद हों कि शब्दो द्वारा ही उसका चित्र आँखो के समक्ष झूल उठे। विवरणात्मक निबंधों के लिए 'शब्दचित्र' या 'रेखाचित्र' अंकित करने की कला का अभ्यास भी करना चाहिए।

इनके साथ यात्रा-सम्बन्धी निबंधो मे स्थान-स्थान पर काव्य का पुट दे देने से रोचकता बढ जाती है। प्रकृति, स्थानो तथा मार्ग के वर्णनो से ही यात्रा का विवरण परिपूर्ण न हो उसमे ऐसे भी अवसर ढूढ के समाविष्ट होने चाहिए जिनमे मानव-स्वभाव की कोई झलक, झाँकी या अध्ययन मिल सके।

कुशल निबंधकार अथवा सिद्धहस्त लेखक यात्रा-सम्बन्धी निबंधो को मानव समाज के गहरे अध्ययन का भी माध्यम बना देते है, और स्थान-स्थान पर ऐसी समस्याएं भी प्रस्तुत कर देते हैं जिनसे मानसिक भोजन भी मिल सके। पर यह ध्यान सदा रहना चाहिए कि यात्रा के विवरण का आनन्द कम न हो पाये। इन यात्रा-वर्णनो में दो-चार मनुष्यो के वार्तालाप का नाटकीय उपयोग भी कभी-कभी किया जाना चाहिए। ये व्यक्ति वास्तविक हो सकते हैं। ऐसे निबंधो मे निजी संस्मरणो का पुट दे देने से एक सजीवता आ जाती है। फलत. यात्रा सम्बन्धी निबंध-लेखक को 'संस्मरण' लिखने की कला का भी कुछ अभ्यास होना चाहिए। यात्रा सम्बन्धी प्रत्येक निबंध उपयुक्त भूमिका और उचित उपसंहार से सुसज्जित होना चाहिए।

इस दृष्टि से नैनीताल की यात्रा का विवरण प० विष्णुकान्त शास्त्री द्वारा लिखित एक यात्रा का सफल वर्णन माना जा सकता है। इस यात्रा-वर्णन मे लेखक ने प्रकृति की प्रकृति के साथ मानव की प्रवृति को अनोखे ढंग से गूंथा है, इससे दोनो के सौन्दर्य उभर उठे हैं। भाषा का सौष्ठव भी प्रभावित करता है।

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि यात्रा-विवरण प्रधानतः विवरणात्मक ही होते हैं, और अंतरंग धुरी रहती है सौन्दर्य-वर्णन की। पर कभी-कभी यात्राओं का विवरण ऐसा भी हो सकता है कि उसमें 'कथात्मकता' आ जाय और पाठक किंचित काल के लिए भ्रमात् उसे कहानी ही समझ लें। यात्रावृत्तान्त में स्थान, स्थल, मार्ग और संग-साथ, वाहन, दूरी आदि अनेक बातें उसे रोचक, रोमांचक, रहस्ययुक्त, ज्ञानवर्द्धक, पराक्रमपूर्ण तथा अन्य विविध संवेदनाओं के समावेश से विलक्षण बना देती हैं।

शिकार-कथा

यात्रा की भाँति ही शिकार-कथा भी प्रकृति से विवरणात्मक है, पर शब्दचित्र और रेखाचित्र भी इसमें यथास्थान पिरोये जाते हैं, और प्रसंगानुसार संस्मरण भी आ ही जाते हैं, कभी-कभी इसमें कथात्मकता भी मिल जाती है। शिकार-कथा में एक ओर तो जासूसी रहती है, प्रतिपल-प्रतिक्षण की सतर्कता, प्राणभय के साथ शौर्य, ये सभी रहते हैं, इन सबके साथ जंगल के पशु-पक्षियों की प्रकृति और प्रवृत्तियों का ज्ञान, एवं उसकी प्राकृतिक सुषमा का प्रभाव—इन सबके कारण शिकार-कथा रोमांचक और रोचक हो जाती है।

साहित्यिक/ललित निबंध

अब गद्य की उस विधा को ले सकते हैं जिसे साहित्यिक निबंध या ललित निबंध कहते हैं।

साहित्यिक निबंध साहित्यिक विषयों पर होते हैं—इन साहित्यिक निबंधों में ऐतिहासिक और आलोचनात्मक दो प्रकार विशेषतः लक्षित होते हैं। ऐतिहासिक में विवरणात्मकता और कालक्रमबद्धता के रहते हुए विचार-सामग्री प्रचुर रहती है, आलोचनात्मक को तो विचार-प्रधान कह ही सकते हैं। यह विचार-संपत्ति किसी साहित्यिक कृति या समस्या को लेकर विवेचना और आलोचना के साथ प्रस्तुत की जाती है। अतः इसे निबंधों की विचारात्मक कोटि में रख सकते हैं। आज के ललित निबंध

मे वस्तुतः निबध का वह रूप विकसित होता मिलता है, जो निबध-प्रवर्तक मॉन्टेन ने प्रस्तुत किया था, और हिन्दी मे जिसका प्रारभ भारतेन्दु और उनके युग के प० प्रतापनारायण मिश्र, और बाद मे बालमुकुन्द गुप्त और उनकी परपरा मे आचार्य प० पद्मसिंह शर्मा और प० हरिशकर शर्मा ने और बाबू गुलाबराय ने पल्लवित किया था। आज यही निबध विधा भाव-सपत्ति, विचार-गरिमा, ज्ञान-विज्ञान के सूत्रों पर गुथे हुए व्यग्य और हास्य के पुट से युक्त भाषा के सौन्दर्य से अभिमडित कुछ इठलाहटमय प्रवाह से रचना के लालित्य को उभारती है, ललित निबध की कोटि मे आती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प० विद्यानिवास मिश्र, अमृतराय के निबधो से इस परिभाषा की पुष्टि हो सकती है। ऐसे ललित निबध किसी भी विषय या विचार-बिन्दु को लेकर लिखे जा सकते हैं। निबध-कला का यथार्थ या वास्तविक विकास और निखार तथा उत्कर्ष ऐसे ही निबधो मे हो पाता है।

कहानी

अब कहानी पर विचार करे। यह अत्यन्त लोकप्रिय गद्यसाहित्य की विधा है। कहानी भारत मे बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है, किन्तु आधुनिक युग मे कहानी का तत्र हमे अग्रेजी की लघु कहानी (शार्ट स्टोरी) से प्राप्त हुआ है।

कहानी किसी घटित घटना को कहती है। घटित घटना का अर्थ है कि वह लिखे जाने से पूर्व घटित हो चुकी थी, अर्थात् उसमे भूतकाल को महत्व दिया जाता है। घटना कैसी भी हो सकती है, मनुष्य के साथ घटित, मनुष्येतर प्राणियो के साथ घटित, प्रकृति मे घटित, मनोजगत मे घटित या मनुष्य के अनुभव या अनुभूति का एक अश, किसी भी क्षेत्र की घटना या अश या झाँकी पर कहानी बन सकती है। यह घटना कहानी मे कही जाकर कल्पना की सृष्टि हो जाती है, भले ही वह यथार्थ या सत्य घटना ही हो। यथार्थ या सत्य घटना को कहानी अपने ताने-बाने से कुछ कल्पना के रग से ऐसा रूप दे देती है कि वह 'कहानी' ही हो जाती है।

कहानी में प्रायः एक ही घटना रहती है। हां, प्रत्येक कहानी किसी न किसी गहरी मानवीय संवेदना से जुड़ी रहती है। यह संवेदना-तत्त्व जितना व्यापक होगा, उतनी ही कहानी महान होगी।

कहानी आकार में लघु होती है, और उस छोटे रूप में ही वह कथानक के माध्यम से द्रुतगति से चलकर वातावरण और चरित्र-चित्रण में से अत्यन्त आवश्यक तत्त्वों को लेकर और अपने अंदर कुछ रहस्य और कौतूहल को संजोये, वह अपना रूप निर्माण करती है। वह अपने छोटे आकार में ही व्यंजना की सहायता से मानवीय संवेदना की उत्कटता भी प्रकट कर देती है।

इसी कारण कितने ही प्रकार के कला-शिल्प कहानियों में आज हमें मिल जाते हैं।

इन प्रकारों के पल्लवन में कथा-तत्त्व, पात्र, संवाद, वातावरण सृष्टि की प्रधानता से और भी कितने ही अंतरंग अन्तर उद्भासित हो उठते हैं। इसके भी ऊपर आ जमता है पुरुष-भेद। उत्तम-पुरुष में आत्म-कथात्मक कहानी कुछ कलाकारों को विशेष प्रिय होती है। पत्रों के माध्यम से उत्तम तथा मध्यम पुरुष को साथ-साथ लेकर भी कहानियां बनायी गयी हैं। इस प्रकार कहानियों के भेद-प्रभेद बढ़ते चले जाते हैं। क्षेत्रीयता के रंग से कहानी का आस्वाद्य कुछ और हो जाता है। स्वाभाविकता और यथार्थता भी तो अपने लिए आगे बढ़ने के प्रयत्न करती है।

पर समस्त शिल्प में कहानी-निर्माण के दो ही तत्त्व काम करते मिलते हैं—पहला विकास तत्त्व, दूसरा संघर्ष (प्रतिद्वन्द्विता) तत्त्व। एक कहानी बीज से वृक्ष बनने की भांति का रूप लेती है, दूसरी कहानी किसी अखाड़े के दो मल्लों के युद्ध का रूप लेती है।

कहानी अधिकाधिक जीवन के निकट पहुँच गयी है।

पाश्चात्य साहित्य में कहानी की परिभाषा में समय की सीमा को आवश्यक माना गया। एक बैठक में ही जो पढ़ी जा सके, वही छोटी कहानी मानी जानी चाहिए। बैठक की क्षमता अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग होती है। अतः शब्दों की सीमा बाँधी गयी। दो हजार पांच-सौ

शब्दो की कहानी लघु-कहानी कही जायेगी। दस हजार शब्द हो तो लम्बी लघु-कहानी होगी। बीस हजार शब्दो से ऊपर वाली कहानी 'उपन्यासिका (नावेलेट)' कही जायगी।

इस प्रकार कहानी साहित्य की अत्यन्त लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण विधा है। हिन्दी मे आज कई मासिक पत्र हैं, जो केवल कहानी के ही मासिक हैं। अन्य प्रकार की पत्र-पत्रिकाओ मे भी कहानी रहती है।

उपन्यास

कहानी की भाँति ही उपन्यास भी एक अत्यन्त लोकप्रिय विधा है। ऊपर हमने देखा है कि कहानी से बडी 'लम्बी कहानी' होती है। 'लम्बी कहानी' से बडी कृति 'उपन्यासिका' (नौवेलेट) होती है। दूसरे शब्दो मे कहानी ही जब किन्ही आवश्यकताओ के कारण बडी, और बडी होती जाती है तो वह 'उपन्यासिका' अर्थात् 'छोटा उपन्यास' तो हो ही जाती है फिर उससे भी सीमा विस्तार मे और अधिक बढ जाने पर वह उपन्यास हो जायगा।

पर, ऐसा नही। 'उपन्यास' विधा तत्त्वत कहानी से भिन्न है। दोनो के शिल्प और तन्त्र मे अन्तर है। किन्तु कथा या कथानक दोनो मे रहता है, इससे कहानी और उपन्यास दोनो ही कथा-साहित्य के दो रूप हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार और कहानीकार प्रेमचन्दजी ने लिखा है कि 'उपन्यास घटनाओ, पात्रो और चरित्रो का समूह है। आख्यायिका एक घटना है। अन्य बातें सब उसी घटना के अन्तर्गत होती हैं। इस विचार से उसकी तुलना ड्रामा से की जा सकती है। उपन्यास मे आप चाहे जितने स्थान लायें, चाहे जितने दृश्य दिखायें, चाहे जितने चरित्र खीचें, पर यह कोई आवश्यक बात नही कि वे सब घटनाए और चरित्र एक ही केन्द्र पर आकर मिल जायें। उनमे कितने चरित्र तो केवल मनोभाव दिखाने के लिए ही रहते हैं पर आख्यायिका मे इस बाहुल्य की गुजायश नही। बल्कि कई सुविज्ञ जनो की सम्मति तो यह है कि उसमे केवल एक ही

घटना या चरित्र का उल्लेख होना चाहिए। उपन्यास में आपकी कलम में जितनी शक्ति हो, उतना ज़ोर दिखाइये, राजनीति पर तर्क कीजिए। किसी महफ़िल के वर्णन में १०, २० पृष्ठ लिख डालिए, भाषा सरस होनी चाहिए—ये कोई दूषण नहीं। आख्यायिका में आप महफ़िल के सामने से चले जायेंगे और बहुत उत्सुक होने पर भी आप उसकी ओर निगाह नहीं उठा सकते। वहाँ तो एक शब्द एक वाक्य भी ऐसा न होना चाहिए जो गल्प के उद्देश्य को स्पष्ट न करता हो। इसके सिवाय कहानी की भाषा बहुत ही सरल और सुबोध होनी चाहिए।'

बाबू गुलाबराय की यह परिभाषा समीचीन प्रतीत होती है :

'उपन्यास कार्य-कारण-शृंखला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक वा काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।'

हमारे इस संग्रह में 'उपन्यास' नहीं दिया जा सकता था। अब इस संग्रह में गद्य में एक विधा और मिलती है, वह है 'एकांकी'।

एकांकी

'एकांकी' भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से 'दृश्यकाव्य' है—अर्थात् रंगमंच और नाट्य से संबंधित विधा है एकांकी।

हिन्दी में नाटक और साथ ही साथ एकांकी भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से लिखे जाने लगे थे। इस समय से ही कुछ प्रयत्न नाटक एवं एकांकी को रंगमंच पर खेलने के प्रयोग भी हुए पर वास्तव में हिन्दी में दृश्यकाव्य के सभी भेद साहित्य की विधा के रूप में ही लिखे गये। अब कुछ समय से रंगमंच के साथ जोड़कर नाटक रचना होने लगी है।

'एकांकी' शब्द से विदित होता है कि यह वह नाटक है जिसमें एक ही अंक होता है। एकांकी चाहे रंगमंच पर खेलने के लिए लिखा गया हो चाहे रंगमंच के लिए न लिखा गया हो, हर हालत में एकांकीकार को

रंगमच की कल्पना को ध्यान मे अवश्य रखना होता है। फलत दृश्य-विधान, पात्रो के आगमन और निष्क्रमण, उनकी भाव-भगिमा, उनके कार्य या कार्यावस्थाओ का उल्लेख अवश्य करना पडता है। इस प्रकार रंगमचीय निर्देशो का सामान्य उल्लेख करके वह चरित्रो या पात्रो को खडा कर देता है और उनके सवाद और क्रिया-कलाप के माध्यम से अपना कृतित्व प्रस्तुत करता है।

एकाकी न तो कहानी है, न नाटक का सक्षिप्त रूप, न यही माना जा सकता है कि उसकी टेकनीक ही नही, न कोई यही कहने का प्रमाद कर सकता है कि जो जरा सवाद लिखना जानता है, वही एकाकी लिख सकता है। यह कहना भी हमे समीचीन प्रतीत नही होता कि एकाकी का नाटक से ठीक वही सम्बन्ध है, जो कहानी का उपन्यास से। एकाकी और नाटक मे कथा और अभिनेयत्व को छोड कर अन्य कोई साम्य नही मिलेगा। कथा का भी उपयोग दोनो मे बिल्कुल भिन्न-भिन्न रूप मे होता है। नाटक मे तो कथा का ही अभिनय करना प्रधान होता है, उस कथा का पात्रो के चरित्रो मे अनुवाद भर कर दिया जाता है। पात्रत्व का महत्त्व नाटक मे कथा के महत्त्व के समीकरण से स्थापित होता है। प्रत्येक चरित्र कथा के साथ एक विशेष सम्बन्ध स्थापित करता है। और अपने सम्बन्ध की उस विशेपता के अनुपात को वह आरम्भ से अन्त तक निभाये चला जाता है। पर इस सबका एकाकी मे क्या वही भी पता चलता है। एकाकी के लिए कथा 'भूमि' नही जैसे नाटक के लिए है, केवल केन्द्र या धुरी (पिवट) है जिस पर एकाकीकार अपने एकाकी की वस्तु को घुमाता है। एकाकी मे कथा सिमिट कर धुरी के बिन्दु जैसी बन जाती है और उसके ऊपर पात्रो के उभरे व्यक्तित्व की झाकी से भी अधिक विषय की मार्मिकता प्रबल हो उठती है।

अब हमे दो बातो की चर्चा और करनी है। एक है 'साहित्यिक पत्र' और दूसरी है 'भाषण'। वस्तुत इन्हे गद्य की विधा नही कहा जा सकता। फिर भी, किसी भी भाषा के सवर्द्धन के ये दोनो भी अच्छे उपकरण हैं। दोनो मे कलात्मकता की भी अछोर सभावनाए है।

'साहित्यिक पत्र' और 'भाषण' प्रेषणीयता की दृष्टि से एक दूसरे से विपरीत छोर पर स्थित हैं। साहित्यिक-पत्र पत्र के रूप में मूलतः एक व्यक्ति के लिए ही होता है—पत्र सदा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को ही लिखता है। उधर भाषण देता तो एक व्यक्ति है, पर उसके श्रोता अनेक हो सकते हैं। यह पत्र काम-काजी, व्यावहारिक या व्यावसायिक भी हो सकता है। ऐसे पत्र में सामान्य शिष्टाचार के बाद काम-काज या व्यवसाय की बात लिखी जाती है। इन पत्रों में शिष्टाचार, व्यवहार-कौशल, व्यक्तित्व की प्रभावशीलता, वाक्वैदग्ध्य, अपने पक्ष-समर्थन में उचित तार्किकता, अवसरानुकूल वर्णन-विवरण, कहीं भाव-संस्पर्श, अपना उल्लू सीधा करने या अपने अभिप्राय की सिद्धि के लिए कहीं उद्धरण-उदाहरण भी रह सकते हैं। इन्हीं पत्रों के अन्तर्गत वे पत्र भी आयेंगे जिन्हें 'निजी' कहा जा सकता है। ये पत्र व्यवहार के लिए नहीं, वरन् अपने नाते-रिश्तेदारों को पारस्परिक निजी बातों को साधने तथा अपने प्रेम और स्नेह, श्रद्धा एवं आदर, अथवा वात्सल्य आदि भावों से युक्त संबंधों को सींचते और पनपाते रहने के लिए लिखे जाते हैं। इन दोनों से भिन्न प्रकृति के पत्र होते हैं 'साहित्यिक पत्र'। 'साहित्यिक पत्र' का एक रूप तो वह होता है जिसमें एक साहित्यिक दूसरे साहित्यिक को निजी पत्र लिखता है। यह निजी पत्र व्यावहारिक भी हो सकता है— किन्तु इसे 'साहित्यिक पत्र' नहीं कह सकते, 'साहित्यकार का पत्र' कह सकते हैं। 'साहित्यिक पत्र' साहित्यकार द्वारा लिखा जाता है, और किसी साहित्यिक को ही लिखा जा सकता है, या साहित्य-प्रेमी और साहित्य के अध्येता को। यह तो इसका एक उपलक्षण हुआ। दूसरा उपलक्षण अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसमें या तो साहित्य-विषयक कोई चर्चा हो, अथवा जो चर्चा उसमें अभिनिविष्ट है वह उन गुणों से युक्त हो, जिनसे कोई रचना 'साहित्य' बनती है। अर्थात् वह पत्र 'साहित्यिकता' से ओतप्रोत हो—वह लालित्य अच्छी प्रकार उसमें भरा हो जो 'ललित-निबंधों' में मिलता है। महात्मा गांधी और राष्ट्रकवि

मैथिलीशरण गुप्त में एक पत्रव्यवहार हुआ था, जो बहुत प्रसिद्ध है। इसमे मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपनी कृति से सबधित किसी आपत्ति या प्रश्न पर कुछ विस्तार से सोदाहरण चर्चा की थी। हिन्दी मे इधर कितने ही सिद्ध साहित्यकारो के पत्रो के सग्रह प्रकाशित हुए हैं। आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा को सिद्ध पत्र-लेखक माना जाता है। वे पत्र-लेखन मे भी साहित्य की कला का उपयोग करते थे। प० बनारसीदास चतुर्वेदी पत्र-लेखन की दिशा मे युग-प्रवर्त्तक माने जा सकते हैं—वे पत्र लिखते तो हैं किसी एक व्यक्ति को पर उसमे ऐसी चर्चाएं करते हैं जो एक-से-अधिक व्यक्तियों को लपेट लेती हैं। इस पत्र की प्रतियां ऐसे अन्य व्यक्तियो को भी भेजी जाती हैं। प० बनारसीदासजी चतुर्वेदी तो पत्राचार द्वारा आन्दोलनो को चलाने मे भी कुशल हैं। उनकी साहित्य-साधना प्रात २-४ घंटे पत्र लिखने मे व्यस्त रहती है। आज ८४ वर्ष के हो जाने पर भी वे पत्र लिखने मे पूरी तरह प्रवृत्त हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र ज्ञान-विज्ञान की रोचक सूचनाओ और वर्णन-विवरणो से युक्त रहते हैं।

हमने इस सग्रह मे जो पत्र दिया है वह डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित है, और रामवृक्ष बेनीपुरी, सपादक, 'नई धारा' के पत्र के उत्तर मे लिखा गया है। इस पत्र में—

१. बेनीपुरी जी की निजी बातो का सकेत भी है, साथ ही
२. द्विवेदी जी की लालित्य से युक्त अपनी विचार-सामग्री भी है, जिसे
३. वाक्वैदग्ध्य और चुटीली बातों से पैना बना दिया गया है, तथा
४. प्रसगवशात् साहित्यिक कृति पर भी कुछ टिप्पणी इसमे यथा-स्थान गूथी गयी है, इस सबके बाद भी
५. पत्र मे लेखक के सिद्ध साहित्यिक व्यक्तित्व का निजत्व भी हमे विमोहित करता है, और इन्ही कारणो से साहित्यिक पत्र अन्य पत्रो से भिन्न हो जाते हैं।

अब 'भाषण' भी आज के जीवन में विशेष स्थान ग्रहण कर चुका है। पाठशालाओं में, महाविद्यालयों में, विश्वविद्यालयों में भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं के लिए विशेष 'भाषण' आयोजित होते हैं—भाषणों की प्रतियोगिता भी करायी जाती है। किसी भी प्रकार के आन्दोलन के दौर में भाषण-पर-भाषण होते मिलते हैं। धार्मिक आयोजनों में, साहित्यिक गोष्ठियों और सम्मेलनों में 'भाषण' सुनने को मिलते हैं। सुनने वाले अनेक भाषण देने वाला एक होता है।

वस्तुतः 'भाषण' दिया जाता है, इसका अर्थ है कि 'भाषण' लिखा नहीं जाता। किसी भी विशिष्ट व्यक्ति को भाषण देने के लिए कहा जाता है तो वह खड़े होकर बोलने लगता है—वह भाषण लिख कर नहीं लाता। हाँ, कुछ विचार-बिन्दु उसने एक चिट पर लिख रखे हैं, जिन्हें वह कभी-कभी देख लेता है, कभी नहीं भी देखता। भाँति-भाँति के अवसरों पर भाँति-भाँति के विशिष्ट जनों द्वारा भाँति-भाँति के 'भाषण' दिये जाते हैं।

इन भाषणों में कुछ सामग्री बहुत महत्त्वपूर्ण भी हो सकती है। इसके लिए पहले लेखकों को नियुक्त किया गया कि वे भाषण को, जैसे-जैसे वक्ता बोले, लिखते जायें, बाद में उन्हें संपादित कर लिया जाता था। जब टेपरिकार्डर उपलब्ध हो उठा तो भाषण टेप पर अंकित कर लेने में बहुत सुविधा रही। बाद में उस टेप से भाषण लिख कर लेख-रूप में प्रस्तुत कर लिया जाता था। सम्मेलनों के सभापतियों से आग्रह किया जाता रहा कि वे अपना भाषण लिख कर लायें। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापतियों के भाषण केवल पहले से लिखे ही नहीं होते थे, वरन् छपे भी होते थे, जो श्रोताओं को बाँट दिये जाते थे। गोष्ठियों में लिखित भाषणों का महत्त्व और अधिक प्रतीत हुआ। वस्तुतः लिखकर भाषण देने की परंपरा भी बहुत पुरानी है। ये सभी भाषण खुले अधिवेशनों में, भीड़ में या नियमित सदस्यों में दिये जाते थे। इन भाषणों की ये विशेषताएं रहीं—

१. भाषणकर्ता अपने श्रोताओं और उनकी योग्यताओं को ध्यान में रखता है।
२. भाषण में अपेक्षित विषय की चर्चा अवसर के अनुसार—
   (क) हलकी या गभीर
   (ख) गहरी या उथली
   (ग) तार्किक
   (घ) उद्धरणों से एव
   (ङ) कवियों या शायरों की कविताओं से जड़ी
३. हास्य-व्यग्य से युक्त
४. ओजपूर्ण भाषा में
५. भाव-भरे, और कभी-कभी भावुकता से उत्तेजित
६. वाणी के उतार-चढ़ाव से उद्वेलित भी ये भाषण हो सकते थे।
७. इन भाषणों में वक्ता को बहकने, इधर-उधर की असम्बद्ध बातें करने का भी अवसर मिल सकता था।

लिख कर पढ़े गये भाषणों में भी ये लक्षण रहते हैं।

रेडियो वार्ता

इधर 'रेडियो' के कारण भाषण का रूप वार्ता का रूप हो गया। रेडियो पर समय का प्रतिबंध है, श्रोता वक्ता के सामने नहीं होते, वक्ता एक कोठरी में बैठ कर बोलता है, भले ही उसकी चेतना में यह हो कि अनगिनत श्रोता उसे सुन रहे हैं, पर प्रतिक्रिया रूप श्रोताओं की भाव-भंगिमाओं का जो प्रभाव खुले भाषण में पड़ता है, वह यहाँ नहीं मिलता। वक्ता को या वार्ताकार को बँधे समय में अपनी बात कहनी होती है, इससे भाषण में संक्षिप्तता आती है, असंबद्ध कहन के लिए स्थान नहीं रहता, ऐसे भाषण में अपनी बात के प्रतिपादन के आयोजन में ही भाषणकर्ता व्यस्त हो जाता है, अत्यन्त आवश्यक उद्धरण-उदाहरण से काम चलाया जाता है, भावों का उतार-चढ़ाव सयत रहता है, उससे भी अधिक सयत रहता है वक्ता की वाणी में ओज और भड़काहट। इस सग्रह में जैनेन्द्र जी का एक रेडियो

भाषण या 'रेडियो वार्ता' ही दी गयी है, उससे ऐसी भाषण-वार्ताओं के लक्षणों को समझा जा सकता है।

यहाँ तक हमने 'गद्य' की विविध विधाओं की चर्चा की है। इन विधाओं में से 'उपन्यास' को छोड़कर अन्य सभी विधाओं की कृतियाँ इस संग्रह के गद्य खंड में हैं। इस भूमिका से उनके विधा-रूप को समझने में सहायता मिलेगी।

पद्य

अब 'पद्य' को लें। 'पद्य' में रचित साहित्य 'काव्य' कहलाता है, पर 'पद्य' भी गद्य की ही भांति एक माध्यम मात्र है। किन्तु 'काव्य' अथवा कविता की दृष्टि से भी 'पद्य' को बहुत विस्तृत अर्थ में लेना होगा, क्योंकि आज पद्य का एक छोर तो वर्णिक वृत्तों को स्पर्श करता है, तो दूसरी ओर 'गद्य' तक पहुँचता है।

पद्य में निम्नलिखित बातें मिलती हैं—

१. मात्रा युक्त वर्ण विशेष क्रम में बँध कर आते हैं—ये वर्ण-बंध वर्ण-वृत्त कहे जाते हैं।

२. गण—मात्रा युक्त तीन वर्णों का योग। ये आठ माने गये हैं:

ISS = नगण, उदा० 'तपन'
SII = भगण ,, 'राघव'
SSI = तगण ,, 'संसार'
IIS = सगण ,, 'रजनी'
ISS = यगण ,, 'बराती'
SIS = रगण ,, 'भारती'
ISI = जगण ,, 'बसंत'
SSS = मगण ,, 'गांधारी'

वर्ण-वृत्तों की रचना में गणों का विशेष उपयोग होता है।

३. लघु और गुरु मात्राओं के छन्द

४. यति

५. लय
६. तुक
७. वाक्य-रूप मे शैथिल्य ।

सामान्यत. वाक्य का रूप गद्य-रूप होता है, जिसका आधार व्याकरण से सिद्ध रहता है । यो गद्य मे भी कुछ स्थान-विपर्यय मिल जाते हैं, पर पद्य मे तो इसे कवि का अधिकार माना गया है । शिवमगल सिंह 'सुमन' की इस पक्ति को लीजिये—

'पथ भूल न जाना पथिक कही !'

यह पद्य ही है । इसका गद्य रूप होगा—'(हे) पथिक ! (तुम) कही पथ न भूल जाना ।' इससे गद्य-पद्य दोनो का अन्तर स्पष्ट है ।

पहले हिन्दी काव्य-रचना छन्द-बद्ध और तुक-बद्ध भी होती थी, आधुनिक युग मे छन्द-मुक्त भी होने लगी है । छन्द-मुक्त पद्य मे गद्य की अपेक्षा कुछ लय विशेष रहती है । छन्द-मुक्त रचनाए तुक-हीन होती हैं । काव्य अब छन्द और तुक से मुक्त हो उठा है ।

काव्य के दो बडे भेद किये गये—
१. कथा-प्रधान या प्रबन्ध-काव्य
२. मुक्तक

कथा-प्रधान या प्रबन्ध-काव्य के दो प्रकार माने गये—एक महाकाव्य, दूसरा खण्ड-काव्य ।

महाकाव्य मे कोई महान कथा कही जाती है ।
खण्डकाव्य मे कोई छोटी कथा कही जाती है ।

महाकाव्य/खंडकाव्य

इस सग्रह मे जयशकर 'प्रसाद' के महाकाव्य के कुछ अश दिये गये हैं । 'कामायनी' मे मनु-श्रद्धा-इला की विशद कथा दी गयी है । 'दिनकरजी' का 'कुरुक्षेत्र' खण्डकाव्य माना जा सकता है । 'युधिष्ठिर की ग्लानि' उसी मे से है । 'कुरुक्षेत्र' को प्राचीन परिपाटी के प्रबन्ध-काव्य से अलग करने के लिए इसे 'नाटकीय सवाद' भी बताया गया है । इसका अर्थ है कि कुछ

पात्र परस्पर 'संवाद' द्वारा किन्हीं समस्याओं पर चर्चा करते हैं, उस चर्चा में तो उनकी आधुनिक मानसिकता प्रबल रहती है, पर उसका परिप्रेक्ष्य नाम-धाम-काम से प्राचीन ख्यात वृत्त से जुड़कर उसका स्मरण कराता रहता है। 'कुरुक्षेत्र' का माध्यम 'संवाद' है, पर स्वरूप नाटकीय है। इसलिए इसे 'नाटकीय संवाद' कहा गया है।

गीत

हिन्दी में काव्य में गेयता को आधुनिक युग में विशेष आदर मिला है। अतः 'गीत' भी लिखे गये हैं। 'पराजय गीत' राष्ट्रीय भावना युक्त 'गीत' है। पन्तजी को मूलतः छायावादी गीतात्मक काव्य का रचयिता माना गया है।

नाट्यगीत

गीतों में एक प्रकार नाटकीय गीतों का भी है। नाटकों में जब अभिनय-तत्त्व के साथ कोई गीत दिया गया हो तो वह 'नाट्य गीत' कहा जायगा। प्रसादजी का 'बढ़े चलो' ऐसा ही 'नाट्य गीत' है। नाट्य गीत को नाटक या एकांकी अंग भेद कह सकते हैं।

गीति नाट्य/पद्य नाटक

'गीतिनाट्य' भी होता है। जब एक पूरा नाटक गेय पद्य में रचा गया हो तो वह 'गीतिनाट्य' कहा जाता है। जब कवि या नाटककार केवल पद्यबद्ध नाटक या रूपक लिखता है तो वह 'पद्य नाटक' कहा जा सकता है। इस संग्रह में 'एकला चलो रे' के कुछ अंश दिये गए हैं। 'एकला चलो रे' को कवि उदयशंकर भट्ट ने 'पद्य नाटक' कहा है। उसके वस्तु-विधान से यह विदित होता है कि यह रेडियो के लिए लिखा गया है क्योंकि इसमें 'वक्ताओं' के स्वर का ही उल्लेख है—पहला स्वर, दूसरा स्वर आदि। 'रंगमंच'-विधान का अभाव भी है। रेडियो से केवल स्वर-भेद का ही ज्ञान होता है। रूप-भेद नहीं मिलता। स्वर बोलने वाले नाटक के पात्र

नही, वे रेडियो के नैरेटर ही है। 'रेडियो नाटक' भी होते हैं, उनमे नाटकीय पात्र ग्रन्य सामान्य नाटको की भाँति ही ग्राते है। प० उदयशकर भट्ट की कृति 'एकला चलो रे' महात्मा गाधी की नोग्राखली-यात्रा से सबधित है, पर उन्होने भूमिका की तरह बुद्ध, ईसा ग्रौर मुहम्मद साहब के जीवन के उन गुणों का वर्णन किया है जिनके द्वारा ग्रकेले ही उन्होने समाज का हित साधा था।

गीतिनाट्य, पद्य नाटक, ग्रथवा 'भाव-नाट्य' भी समानार्थी माने जाने चाहिए।

विवरण काव्य

ग्राधुनिक युग मे वर्णनात्मक एव विवरणात्मक काव्यो की रचना भी हुई है, इनमे किसी स्थल, प्राकृतिक दृश्य, व्यक्ति, या व्यापार का वर्णन या विवरण रहता है। ये 'मुक्तक' नाम के बडे वर्ग मे ही रखे जा सकते हैं। 'विवरण' ग्रौर 'वर्णन' का मुक्तक-काव्य भी ग्राधुनिक हिन्दी मे नया ही ग्रागतुक है। 'कश्मीर सुषमा' इस काव्य-रूप का एक श्रेष्ठ उदाहरण है जिसे श्रीधर पाठक ने रचा था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से जो युग ग्रारम्भ हुग्रा उसमे पहले तो 'भारतीयता' उभरी, फिर वह राष्ट्रीयता का ग्राधार बनी, इस राष्ट्रीयता के साथ मानवतावाद भी प्रस्तुत हुग्रा। उधर स्वच्छन्दतावाद या रोमाटिसिज्म ने परपरावाद से मुक्त कर सौन्दर्य की नयी ग्रनुभूति से कवियो को ग्रनुप्राणित किया—नयी सौन्दर्यानुभूति, नवीन जीवन-दर्शन, नव मानवतावाद, उदात्त राष्ट्रीयता, नया छद-विधान, नयी गीति, नवीन भाषा-सौष्ठव, नवीन भाषा-शक्ति, प्रत्येक स्थिति ग्रौर गति या व्यापार की नवोन्मेषमयी नवीन व्याख्या, नया सदेश, नये उद्बोधन, नये प्रतीक, नये बिम्ब कविता मे—हिन्दी कविता मे—जगमगा उठे। इन सबका स्पष्ट ग्राभास इस सकलन के पद्यखण्ड से मिल सकता है।

हिन्दी मे कितने ही वादो की झझाए ग्रायी। छायावाद को ग्रारभिक वाद-झझा कह सकते है, फिर प्रगतिवाद की, साथ ही हालावाद की, तब

प्रयोगवाद की, और अस्तित्ववाद की, नकेनवाद की—इन झंझाओं ने कवियों और उनके काव्य को झकझोरा, पर यहाँ संकलित कवियों का काव्य उन झंझाओं में उन्हीं का होकर, या उखड़कर, उन्हीं के साथ बह जाने वाला नहीं रहा। उनका काव्य झंझाओं के चले जाने पर आज नये तेज से उद्दीप्त और आकर्षक लगने लगा है। सन् १८८६ के लगभग से आज तक के काव्य के इतिहास के पदचिह्न इनमें चिह्नित तो हैं, पर, उनके कथ्य और शैली का ओज और संदेश आज तक भी सद्य है, और भविष्य के लिए भी उनकी क्षमता उनमें विद्यमान छलकती दीखती है।

त्रिवर्षीय उपाधि पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष में सामान्य हिन्दी के पठन-पाठन के संबंध में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि इसका प्रधान-धर्म है बोधोन्नयन। विश्वविद्यालय के स्तर पर प्रथम वर्ष में हिन्दी में बोधोन्नयन की क्या समस्या हो सकती है? किसी भी भाषा में बोधोन्नयन का प्रश्न उससे पूर्व उपार्जित भाषायी क्षमता से अवश्य जुड़ा रहता है। इस पाठ्यक्रम के छात्रों को जीवन, व्यवहार और व्यवसाय के विविध क्षेत्रों में प्रवेश करना होगा—विज्ञान, वाणिज्य तथा मानविकी सभी क्षेत्रों से संबंधित रहेंगे ये छात्र। उन्हें बोधोन्नयन के लिए भाषा की अनोखी क्षमता से परिचित होना आवश्यक है। इससे वे यह जान सकेंगे कि भाषा किस प्रकार विविध क्षेत्रों, विविध परिस्थितियों और विविध आवश्यकताओं के लिए कैसे-कैसे रूप ग्रहण करती है, और उन रूपों के द्वारा कैसे शब्दों को ग्रहण कर कैसे-कैसे अर्थ प्रदान करती है—अर्थात् तब हम जान सकेंगे कि भाषा में से समस्त परिवेश के अनुकूल अर्थ-ग्रहण करने और तदनुकूल बोध को गम्य बनाने के लिए किस माध्यम-तंत्र का उपयोग कर सकते हैं। साहित्य की आधुनिक विधाएं वस्तुतः साहित्य की ही विधाएं नहीं हैं, वे क्षेत्रों, परिस्थितियों और आवश्यकता एवं अपेक्षाओं में गर्भित तथ्य एवं तत्त्व विषयक कथ्य को बोधगम्य बनाने के तंत्र ही हैं। बोधोन्नयन और अभि-व्यंजना तथा अभिव्यक्ति के रूप का चोली-दामन का साथ है। आधुनिक युग में विकसित गद्य रूप—संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आत्मकथा (वास्तविक या कल्पित), जीवनी, निबंध (ललित निबंधों सहित) और

कहानी—ये सभी साहित्य के भेद नहीं, वरन् किसी भी सपूर्ण परिवेश को आवश्यकतानुरूप अभिव्यक्त करने और उस परिवेश में परिव्याप्त बोधोन्नयन की समावना से उसे नियोजित करने के माध्यम हैं। रामप्रसाद 'बिस्मिल' की आत्मकथा किसी साहित्यकार की नहीं, परन्तु अपने प्राणों से खेलने वाले, देशहितार्थ फांसी पर चढने वाले क्रान्तिकारी की है—वह फांसी पर चढने से कुछ पूर्व किन विचारों को प्रकट करना चाहता है, यह किसी भी व्यक्ति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसके जीवन का निचोड़ भाषा किस विधि से, किन शब्द-विधानों से, किन मुहावरों से प्रकट करती है, इसे जानना एक भाषा के अध्येता और पाठक के लिए एक महान् उपलब्धि मानी जा सकती है।

किसी विशेष स्थल के विशिष्ट वातावरण की हृदय को गहरे चीर कर बैठी उदासीनता और एकरसता में स्पदित मृत्यु को किन शब्दों में कैसे प्रकट किया जा सकता है, इसका ज्ञान 'स्टिल लाइफ' से, जो 'रिपोर्ताज' है, होता है। हिन्दी अपने जीवत स्वरूप का इस रिपोर्ताज में कैसा परिचय दे रही है, अग्रेजी के, वह भी मैडीकल क्षेत्र के कितने ही शब्दों को अपनी अनोखी भगिमा से आत्मसात कर, कैसे नये अर्थों तक पहुँचने का साधन जुटा रही है, यह इससे, और ऐसे ही अन्य निबंधों से सिद्ध होता है। कहानियों से भी सिद्ध होता है। 'पूस की रात' का भाषा-विधान हिन्दी को किस क्षेत्र में ले जाता है, और उस क्षेत्र की भाषा की शब्द-सपत्ति को हिन्दी आत्मसात कर कैसे हम तक पहुँचाती है और भाषा और शब्दों से नये अर्थ ग्रहण करके हमारे नव-नव बोधोन्नयन में सहायक होती है; यह स्वयं सिद्ध है।

यही बात प्रत्येक पाठ के सबध में कही जा सकती है। फलत यह सकलन साहित्यिक अध्ययन को दृष्टि में नहीं रखता, उसकी विविध विधाओं की रश्मियाँ कैसे हमारे बोध के द्वार को प्रकाशित करती हैं, यही उद्देश्य इसमें निहित और व्याप्त है। प्राध्यापक भी इस मर्म से अवगत होकर छात्रों को अध्ययन और अभ्यास के नये आयामों से परिचित करायेंगे। उनमें यह आस्था जाग्रत करेंगे कि वे किसी भी क्षेत्र से सबधित

क्यों न रहें, उनकी भाषा उनका साथ देगी, और जितना ही वे उसकी प्रकृति को हृदयंगम कर परिस्थिति, परिवेश और आवश्यकता के उन्मेष से अपनी अभिव्यक्ति को ढालना चाहेंगे तो ढाल सकेंगे। इस प्रकार अर्जित भाषायी शक्ति और आस्था से वे कभी साहित्य का भी रसास्वादन करना चाहेंगे तो उसके द्वार भी उन्हें खुले मिलेंगे। इसमें दी गयी सामग्री भाषा-वैभव के साथ मानवीय संवेदनों की रागात्मक प्रतीति से भी जुड़ी हुई है।

अन्त में उन सभी के प्रति संयोजक-संपादक के नाते मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने इसके संपादन में या किसी अन्य रूप में हमें सहायता प्रदान की है। संपादकों में से मैं विशेष आभार डा० 'अज्ञेय' का तथा डा० रामविलास शर्मा का मानता हूँ। स्थानीय संपादकों में से डा० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा का सहयोग अत्यन्त अभिनंदनीय रहा, उन्होंने संपादन-कार्य में आद्यन्त भाग लिया और अपनी असुविधाओं को कभी आड़े नहीं आने दिया। और अभिनंदनीय सहयोग देने वालों के नाम देकर कृतज्ञता ज्ञापित नहीं कर रहा हूँ, इसके लिए मैं उनसे क्षमा-याचना भी करता हूँ।

सत्येन्द्र
संयोजक-संपादक

सियारामशरण गुप्त

राम-लीला

बच्चों की आजकल गरमी की छुट्टी है। उनका दिन तो बारह की जगह चौदह घंटे में अधिक की छलांग नहीं भरता, पर आनन्द उनका राम के युग जैसा ही है। न धूप का भय, न लू का। तपती हुई गच भी उनके विचरण में बाधक नहीं होती। इधर से उधर और उधर से इधर, उनकी फौज दौड़ती ही रहती है। इस दोपहरी में जिस समय हम घंटे-आध-घंटे की झपकी लेना चाहते हैं, उसी समय वे इतने प्रबल रहते हैं जितने लंका के नागरिक भी निशाचरता में न होते होंगे।

नीचे के कमरे में किवाड़-खिड़कियां बन्द करके सोने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु सफलता नहीं मिली। रह-रह कर यहीं से टोह पाता रहा कि ऊपर छत पर लालू के सवार किसी नये काम से छूटे हैं।

जानता हूँ, ऊपर की खुली छत के दोनों ओर जो कमरे हैं, वहां लालू रामलीला की तैयारी कर रहा है। उसी से मालूम हुआ था कि राम और लक्ष्मण का पद किसे दिया जायगा, रावण और मेघनाद बनने की योग्यता किसमें है, और कागज के बने हुए द्रोणाचल को हथेली पर उठा-कर लंका तक ले जाने का काम कौन करेगा। लालू के लिए एक ही समस्या पेचीली थी कि सीताजी कहाँ खोजी जायँ। रामलीला-मंडली में लड़के ही लड़कियों का काम करते हैं। किन्तु नाटक और सिनेमा में ऐसा नहीं होता। लालू का झुकाव इसी ओर अधिक है। उसके विचार से सीता का काम ऐसा है भी नहीं कि कोई लड़की उसे निभा न ले जाय। ब्राह्मण का रूप धरकर जब रावण आ जाय तब जोर-जोर से चिल्लाना, यह कहना कि हे रामजी ! हे लखनलाल जी ! कहाँ हो ?—बस इतना काम है। धनुष उठाकर तोड़ने के जैसा कुछ भी न करना पड़ेगा, हाथ में केवल जय-माला लिये रहनी होगी।

इसी प्रश्न को लेकर अभी भाई-बहन में लड़ाई भी हो चुकी है। लालू ऊपर से चिल्ला रहा था, 'माँ ! चंपो को बुला लो; पीट दूंगा तो कहोगी; भला मैं छोटी बहन को कैसे सीताजी बना दूं ?' और उसके थोड़ी देर बाद चंपा का रोना भी यहीं से मैंने सुन लिया है।

इसी समय देखा, लालू का प्रिय सखा गंगा किवाड़ में धीमे से साँस करके देख रहा है कि मैं जाग तो नहीं रहा। कुछ देखकर और कुछ अनुभव करके मैंने जाना कि दबे पैर आकर भीतर आले में रखी हुई गोंददानी वह उठा ले गया है। गोंद की सहायता से राम के राजमुकुट में रंग-बिरंगे कागद रत्न के रूप में जड़े जायेंगे।

तभी याद आ गई बचपन के अपने उन दिनों की जब रामलीला की तैयारी इसी प्रकार मैं भी करता था। उन दिनों की भक्ति आज मुझ में दीख नहीं पड़ती। फिर भी पाता हूँ, राम चिरन्तन हैं, रावण चिरन्तन है। तुलसीदास ने प्रति कल्प में अवतरने वाले जिस प्रभु को पाया है, उसे पा सकना मेरे लिए सहज नहीं। किन्तु प्रत्येक पीढ़ी में किसी-न-किसी रूप में उतरने वाले अनंत राम की अनुभूति मैं भी कर सकता हूँ।

बाड़े के पीछे आज जहाँ पक्का घर खड़ा है, वहाँ उस समय एक लंबी खपरैल थी। उसमें ढोर-डंगर बँधते थे। खुले में चारे की ऊँची गंजी लगती थी और एक ओर वहीं कंडे पाथे और सुखाये जाते थे। घर का घूरा भी उसी स्थान पर था। यह सब होते हुए भी हम सब वहीं पहुँचते। दूध न देने वाली गायें दूसरी जगह भेज देने से जो जगह खाली हुई थी, उस पर हमारा अधिकार था। वहाँ हम दौड़ सकते थे, चिल्ला सकते थे और एक-दूसरे को पीट सकते थे। अपने झगड़े किसी बाहरी पंच की सहायता के बिना स्वयं सुलझाकर फिर से खेल सकते थे।

रामलीला त्रेता में हो या कलियुग में, झगड़ा सीता को लेकर ही होना चाहिए। सीता का काम मैंने कमल को सौंपा था। उसे विश्वास था कि पहनने के लिए घघरिया और फरिया वह अपने घर से शकुन्तला की ले आयेगा। इसके बाद किसी दूसरे का दावा सीता बनने का चल भी नहीं सकता था। गुल्लू हम सब में ऊँचा था और उसने स्वयं भी प्रस्ताव

ाकया था कि वह रावण बनेगा। मैंने कहा, 'पहले देख लेने दो कि तुम्हारे मुह पर काले रग के दस छपके कैसे जचते हैं।' इसमे भी उसे विरोध न था। उसे दशानन बनाने की चित्रकारी मे मैंने हाथ लगाया ही था कि कमल हँसी के मारे लोट-पोट हो गया। ताली पीटकर उसने कहा, 'भागो, भाई ! भागो, भूत ग्रा गया !' रावण को भूत कहना ग्रनुचित था, उस रावण को जो लका का राजा है ग्रौर जिसे मारने का बल मुझे ही मिल सका था। किन्तु मेरे फटकार देने पर भी कमल ने बात नही मानी ग्रौर दूसरे लडके भी उसी के सहयोगी बन बैठे। इस पर गुल्लू ने वह किया जो उसे करना नही चाहिए था। काला रग लेकर उसने कमल के मुह पर पोत दिया। मैं चिल्लाया, 'उसे क्यो पोत दिया ? जानते नही हो, उसे सीताजी बनना है।'

'जानते नही हो, मुझे रावण बनना है, जो तुम्हें ठीक कर देगा', गुल्लू ने भी वैसे ही स्वर मे उत्तर दिया।

मैंने निश्चय किया कि गुल्लू मूर्ख है, उसे रावण नही बनाऊगा। रावण ऐसा होना चाहिए जो भूल कर भी सीता को न छुए। छुएगा तो भस्म होकर ढेर हो जाएगा। मैंने उसी समय कडककर ग्राज्ञा सुना दी, 'निकल जाग्रो यहा से।'

'मुझे निकालने वाले तुम कौन होते हो ?'

'मैं ! मैं राम हूँ।'

'ऐसे राम बहुत देखे हैं, कहो तो एक धक्के मे सात गुलाटे खिला दू।'

कमल रो रहा था कि उसका कुरता बिगाड दिया, माँ पीटेगी। ग्रपराध ऐसा न था कि गुल्लू को ग्रछूता छोड दिया जाता। ग्रागे बढकर मैंने दो-चार हाथ जमा ही दिये। इस पर ऐसी गडबड मची कि उस दिन का किया कराया सब चौपट हो गया।

दूसरे दिन ठीक समय पर हम सब फिर वही दिखाई दिये। यह उतना ही स्वाभाविक था, जितना कुछ देर के लिए बादल मे छिपकर सूर्य पुन. ग्रपने ही ठिकाने पर चमकने लगे।

गुल्लू से मैंने पूछा, 'तुम्हें हो क्या गया था, जो तुमने कल वैसा उत्पात

किया ?'

उसने उत्तर दिया, 'मैं तो रावण था। मेरा जी करने लगा कि कमल को गेंद बनाकर ऊपर फेंक दूं। फेंक कर उसे गुपक लेना मेरे लिए कठिन न था।'

मैं सोचने लगा—तो इस पर सांच-मांच के रावण की छाया पड़ गयी थी क्या ? अपने सम्बन्ध में भी मैंने विचार किया, किन्तु याद नहीं पड़ा कि मैंने उस समय कौनसी महत्व की बात सोची थी। दबे हुए स्वर में कहा, 'राम किसी को दुःख नहीं देते; इसी से धमकियाकर ही तुम्हें छोड़ दिया था।'

तभी एक साथ मेरा ध्यान कमल की ओर गया। वह लड़की की तरह रोने लगा था और उसने यह तक नहीं सोचा कि उसे तो सीताजी बनना है ! इस सम्बन्ध में गुल्लू का मत मुझ से भिन्न था। उसने उदाहरण देकर कहा, 'अयोध्या जी की मंडली तक में सीता जी रोयी थी। जो रो न सके वह सीता जी कैसे बनेगा।'

बात नयी न थी, फिर भी ऐसी सीताजी के लिए क्लेश हुआ। कुछ-कुछ ऐसी बात के सिलसिले में ही एक बार मैंने दद्दू से कहा था, 'रामलीला में सीताजी को हथियार दे दिये जाते तो उन्हें रोना न पड़ता। देवी की तरह हथियार से रावण के सिर काटकर वे उसी समय फेंक देतीं, जब वह उन्हें चुरा लेने के लिए आता। फिर तो लंका के ऊपर चढ़ाई भी न करनी पड़ती।' इस पर मुझे यह याद दिलाया गया था कि रावण मुनि का भेष बनाकर भिक्षा लेने आया था। भिखारी की इच्छा पूरी न करके यदि सीता उसे मार डालतीं तो उन्हें पाप लगता।

मैंने गुल्लू से कहा, 'तो कमल से वचन ले लिया जाय कि जब मैं कहूँ तभी यह आंसू गिरा सकता है। मैं रोक दूं तो उसे रुकना पड़ेगा, उसी समय, तुरन्त। राम जी की बात सीता जी टाल नहीं सकतीं।'

अब हमारी तैयारी और आगे बढ़ चुकी थी। पड़ोस में विवाह के कारण बाहर के कई नये लड़के न्यौते आये थे। वे भी हमारी मण्डली में आ मिले। छोटे बच्चों के कारण हमारे काम में रुकावट पड़ती थी, परन्तु एक लड़का नन्दू उनमें बड़े काम का था। उसने आसानी से हनुमान

के लिए कपडे की पूछ बना दी। मिट्टी का तेल छिडककर एक लत्ता भी उसके भीतर रख देना वह नही भूला। अपनी धोती मे उसे यथास्थान खोसकर उसने बताया कि कितनी बढिया पूछ है। वह इस शर्त पर उसे देने को तैयार था कि हम उसे हनुमान बना दें।

गुल्लू ने कहा, 'यह नही हो सकता। अपनी पूछ हम अपने आप बनायेंगे।' रजन ने भी विरोध किया, क्योंकि पहला हनुमान वही था।

नन्दू निश्चिन्त था कि ऐसी पूछ किसी के बनाये न बनेगी। कमर मे उसे पीछे की ओर खोसे हुए वह हमसे अलग एक ओर जा बैठा। आशय उसका स्पष्ट था कि उसे देख-देखकर हम जलें। हमने कहा, 'दुष्टता क्यो करते हो, जाओ यहा से।'

उसका कहना था, 'हम यही बैठेंगे, तुम हमे क्यों छेडते हो?' तब गुल्लू को रोष आ गया और बडी कठिनाई से रावण और हनुमान का वह युद्ध बरकाया जा सका। किसी ने सुझाया कि हम लोग दूसरी जगह जाकर खेलेंगे। पलायन की नीति उसी समय ठुकरा दी गयी।

मैंने अपने पुराने हनुमान से कहा, 'यहाँ से वहाँ तक, जहाँ वह गुल्लू खडा है सौ जोजन का सागर है। इसे एक छलाँग मे पार करना होगा। छलाँग मारकर देखो तो।'

इधर हम लोग यह हिसाब लगाने मे व्यस्त थे कि यह भूमि सौ जोजन से अधिक तो नही है, उधर दूसरी ओर नया काण्ड उपस्थित हो गया। हमारा एक साथी कही से दियासलाई की डिब्बी ले आया और नन्दू के पीछे जाकर चुपके से उसने पूछ मे आग छुआ दी। नन्दू हडबडाकर उठा। उसने जलती हुई पूछ निकालकर आगे की ओर फेंक दी।

'कौन था, किसने किया' की आवाजें उठने के पहले ही आग लगाने वाला अन्तर्धान हो चुका था।

कपडे की पूँछ आग पकड चुकी थी और उसमे से ऊपर उठी हुई लौ इस प्रकार आगे-पीछे डोल रही थी, जैसे किसी साथी को छू लेने की क्रीडा में हो। नीचे पडा हुआ चारा भी जल रहा था और उसमे से उडती हुई छोटी-छोटी चिनगारियाँ उस ओर जा रही थी, जहा चारे की ऊँची गजी

लगी थी।

जो संकट सामने था, उसे सबने स्पष्ट रूप से समझ लिया। चारे की गंजी ने आग पकड़ी नहीं कि पूरे-पूरे मुहल्ले में सुन्दरकाण्ड का दृश्य दिखाई देने लगेगा। पलक मारते-न-मारते हमारे सब साथी वहां से भागे।

मैंने क्या सोचा, क्या समझा, और क्या किया, इसका स्मरण मुझे नहीं। आगे जो कुछ हुआ उसी के आधार पर समझ में आता है कि मैंने लकड़ी जैसी कोई वस्तु आस-पास खोजी होगी, जिसके द्वारा जलती हुई पूंछ को चारे से दूर हटा सकूं। वैसे ढेरों लकड़ियाँ दिखाई दें, किन्तु जब तत्काल आवश्यकता हो तब छोटी-सी छिप्पट भी नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में पता नहीं लकड़ी का काम हाथों से लेने की बात कैसे सूझी। हाथों से पानी जैसा उलीचकर वह पूंछ कब मैंने वहां से दूर कर दी, इसका ध्यान मुझे भी नहीं है। यह याद है, उसी समय लकड़ी हाथ में लिए हुए गुल्लू को देखकर संतोष हुआ। उसने आकर उस जलते संकट को और दूर कर देने में सहायता दी।

आग वश में हो चुकी थी, किन्तु मेरे दोनों हाथ बुरी तरह जल रहे थे। दौड़कर मैं एक ओर छटपटा कर गिर पड़ा। इतनी देर में कुछ लोग दौड़कर आ गये थे जो लहरें लेते हुए मारे जा चुके सांप जैसा व्यवहार उस पूंछ के प्रति कर रहे थे।

उस रात हथेलियों में जलन के कारण बहुत पीड़ा रही। डर था कि दद्दू ऐसा खेल खेलने के लिए बहुत बिगड़ेंगे। यह आशंका भी बहुत थी कि अब हमें रामलीला न करने दी जायगी। किन्तु मेरा भय निर्मूल निकला। यह उस समय जान सका जब कमरे में दिये के उजाले में अपने सिरहाने बैठे हुए दद्दू की आंखों में आनन्द के आंसू देखे। सान्त्वना देकर उन्होंने कहा था, 'बेटा! घबरा मत, यह लीला उन्हीं प्रभु की थी। तेरे भीतर उस निमिष में जन्म लेकर उन्होंने हम सबको संकट से उबारा। अपने मन्दिर में राम-जन्म का उत्सव कल झालर-घण्टे के साथ मनेगा। शंख में फूंक उस समय तुझे ही देनी होगी।'

+ + +

आज मैं दद्दू की जगह और लालू मेरी जगह है। रामलीला के उत्साह मे इस दोपहरी मे उसने मुझे झपकी नहीं लेने दी। इस समय ऊपर के कमरे मे लडके मिलित स्वर मे रामायण की चौपाइया उसी प्रकार गा रहे हैं जिस प्रकार हम कभी-कभी गाया करते थे। मेरी कामना है, दद्दू के वे प्रभु एक पीढी से दूसरी पीढी मे इसी प्रकार अवतरित होते रहें। उनकी लीला का प्रवाह खडित न हो।

प्रेमचन्द

पूस की रात

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा, 'सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं उसे दे दूं, किसी तरह गला तो छूटे।'

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली, 'तीन ही तो रुपये हैं, दे दोगे तो कम्बल कहाँ से आएगा? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर रुपये दे देंगे। अभी नहीं हैं।'

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, बिना कम्बल के हार में रात को वह किसी तरह नहीं सो सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमाएगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों मरेंगे, बला तो सिर से टल जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिये हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप गया और खुशामद करके बोला, 'ला दे दे, गला तो छूटे। कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूंगा।'

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आंखें तरेरती हुई बोली, 'कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूं, कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्बल? न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए। मैं रुपए न दूंगी—न दूंगी।'

हल्कू उदास होकर बोला, 'तो क्या गाली खाऊं?'

मुन्नी ने तड़पकर कहा, 'गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?'

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौहें ढीली पड़ गई। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जन्तु की भाँति

उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली, 'तुम छोड दो अबकी से खेती। मजूरी मे सुख से रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौस तो न रहेगी। अच्छी खेती है, मजूरी करके लाओ, वह भी उसमें झोक दो, उस पर से धौस।'

हल्कू ने रुपये लिए और इस तरह से चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से काट-काट कर तीन रुपये कम्बल के लिए जमा किये थे। वे आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

२

पूस की अधरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ईख के पत्ते की एक छतरी के नीचे बास के खटोले पर अपनी पुरानी गाढे की चादर ओढे पडा काप रहा था। खाट के नीचे उसका सगी कुत्ता जबरा पेट मे मुह डाले सरदी से कूँ-कूँ कर रहा था। दोनो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनो को गरदन मे चिपटाते हुए कहा, 'क्यो जबरा, जाडा लगता है? कहता तो था, घर मे पुआल पर लेटा रह, तू यहा क्या लेने आया था? अब खाँओ ठड, मैं क्या करूँ? जानते थे, मैं यहाँ हलुवा-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौडे-दौडे आगे-आगे चले आए। अब रोओ नानी के नाम को।'

जबरे ने पडे-पडे दुम हिलाई और वह अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान बुद्धि ने शायद ताड लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नीद नही आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकाल कर जबरा की पीठ सहलाते हुए कहा, 'कल से मत आना मेरे साथ, नही तो ठण्डे हो जाओगे। यह राड पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिये आ रही है। उठू, फिर एक चिलम भरू। किसी तरह

रात तो कटे। आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मज़ा है! और एक भागवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाए तो गरमी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ़, कम्बल। मजाल है जो जाड़े की गुज़र हो जाए। तकदीर की खूबी! मजूरी हम करें, मज़ा दूसरे लूटें।'

हल्कू उठा और गड्ढे में से ज़रा-सी आग निकाल कर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा, 'पिएगा चिलम? जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ, ज़रा मन बहल जाता है।'

जबरा ने उसके मुंह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू, 'आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहां पुआल बिछा दूंगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।'

जबरा ने अगले पंजे उसके घुटने पर रख दिए और उसके मुंह के पास अपना मुंह ले गया। हल्कू को उसकी गरम सांस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और यह निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ भी हो अब की सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो उसे इधर महीने भर से उसे न मिला था। जबरा शायद यह समझ रहा था कि स्वर्ग यही है। हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गन्ध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया था। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे, और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता

ने उसमे एक नयी स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठण्डे झोको को तुच्छ समझती थी। वह झटपट उठा और छतरी के बाहर आकर भूकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार पुचकार कर बुलाया, पर वह उसके पास न आया। हार मे चारो तरफ दौड़कर भूकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरन्त फिर दौडता। कर्त्तव्य उसके हृदय मे अरमान की तरह उछल रहा था।

३

एक घण्टा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और उसने दोनो घुटनो को छाती से मिलाकर सिर को उसमे छिपा लिया। फिर भी ठण्ड कम न हुई। ऐसा जान पडता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियो मे रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा – अभी कितनी रात बाकी है? सप्तर्षि आकाश मे अभी आधे भी नही चढे। ऊपर आ जायँगे तब कही सबेरा होगा। अभी पहर-भर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमो का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गया था। बाग मे पत्तियो का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे, तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठा नही रहा जाता।

उसने पास ही अरहर के खेत मे जाकर कई पौधे उखाड लिए और उनकी एक झाड़ू बनाकर हाथ मे सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे देखा तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा, 'अब तो नही रहा जाता जबरू, चलो बगीचे मे पत्तियाँ बटोर कर तापें। टाँटे हो जाएगे तो फिर आकर सोएगे। अभी तो रात बहुत है।'

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की

ओर चला । बगीचे में घुप अँधेरा छाया हुआ था और उस अन्धकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था । वृक्षों से ओस की बूंदें टप-टप नीचे टपक रही थीं ।

एकाएक एक झोंका मेंहदी के फूलों की खुशबू लिए हुए आया ।

हल्कू ने कहा, 'कैसी अच्छी महक आई जबरू, तुम्हारी नाक में भी कुछ सुगन्ध आ रही है ?'

जबरा को कहीं ज़मीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी । वह उसे चिचोड़ रहा था । हल्कू ने आग ज़मीन पर रख दी और पत्तियां बटोरने लगा । ज़रा देर में पत्तियों का एक ढेर लग गया । हाथ ठिठुरे जाते थे, नंगे पांव गले जाते थे और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था । इसी अलाव में वह ठण्ड को जलाकर भस्म कर देगा ।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा । उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छू कर भागने लगी । उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो इस अथाह अन्धकार को अपने सिर पर संभाले हुए हों । अन्धकार के उस अनन्त सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता-मचलता हुआ जान पड़ता था ।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था । एक क्षण में उसने दोहर उतार कर बगल में दबा ली और दोनों पांव फैला दिए, मानो ठण्ड को ललकार रहा हो, 'तेरे जी में जो आए सो कर' । ठण्ड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था ।

उसने जबरा से कहा, 'क्यों जब्बर, अब तो ठण्ड नहीं लग रही है ?'

जब्बर ने कूं-कूं करके मानो कहा, 'अब क्या ठण्ड लगती ही रहेगी ?'

'पहिले से यह उपाय न सूझा, नहीं तो इतनी ठण्ड क्यों खाते ?'

जब्बर ने पूंछ हिलायी ।

'अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें, देखें कौन निकल जाता है । अगर जल गए बच्चा, तो मैं दवा न करूंगा ।'

जब्बर ने उस अग्नि-राशि की ओर कातर नेत्रों से देखा ।

'मुन्नी से कल न कह देना, नहीं तो लड़ाई करेगी ।'

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया। पैरो मे जरा लपट लगी, पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खडा हुआ।

हल्कू ने कहा, 'चलो-चलो, ऐसे नही, ऊपर से कूदकर आओ।'

वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

४

पत्तियाँ जल चुकी थी। बगीचे मे फिर अँधेरा छाया हुआ था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा के झोका आ जाने पर जरा दहक उठती थी, पर एक क्षण मे फिर आँखें बन्द कर लेती थी।

हल्कू ने सिर से चादर ओढ ली और गरम राख के पास बैठा हुआ गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन मे गर्मी आ गई थी, पर ज्यो-ज्यो शीत बढता जाता था, उसे आलस्य दबाए लेता था।

जबरा जोर से भूककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हो रहा था कि जानवरो का एक झुण्ड उसके खेत मे आया है। शायद नीलगायो का झुण्ड था। उसके कूदने और दौडने की आवाजें साफ कान मे आ रही थी। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वे चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल मे कहा, 'नही, जबरा के होते कोई जानवर खेत मे नही आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ, अब तो कुछ सुनाई नही देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ है।'

उसने जोर से आवाज लगाई, 'जबरा, जबरा!'

जबरा भूकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आवाज सुनाई दी। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दँदाया हुआ बैठा था, ऐसे जाडे-पाले मे खेत मे जाना, जानवरो के पीछे दौडना असूझ जान पडा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई, 'लिहो-लिहो ! लिहो !!'

जबरा फिर भूंक उठा । जानवर खेत चर रहे थे । फ़सल तैयार है । कैसी अच्छी फ़सल है, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किये डालते हैं ।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला; पर एकाएक हवा का ऐसा ठण्डा, चुभने वाला, बिच्छू के डंक-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेद कर अपनी ठण्डी देह को गरमाने लगा ।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था । नीलगाय खेत का सफ़ाया किये डालती थीं और हल्कू गरम राख के पास शान्त बैठा हुआ था । अकर्मण्यता ने रस्सियों की भांति उसे चारों ओर से जकड़ रखा था ।

उसी राख के पास गरम ज़मीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया ।

सवेरे जब उसकी नींद खुली तब चारों तरफ़ धूप फैल गई थी और मुन्नी कह रही थी, 'आज क्या सोते ही रहोगे ? तुम यहां आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया ।'

हल्कू ने उठकर कहा, 'क्या तू खेत से होकर आ रही है ?'

मुन्नी बोली, 'हां, सारे खेत का सत्यानाश हो गया । भला ऐसा भी कोई सोता है ? तुम्हारे यहां मड़ैया डालने से क्या हुआ ?'

हल्कू ने बहाना किया, 'मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है । पेट में ऐसा दर्द हुआ कि मैं ही जानता हूँ ।'

दोनों फिर खेत की डांड पर आये । देखा, सारा खेत रौंदा हुआ पड़ा है और जबरा मड़ैया के नीचे चित्त लेटा है, मानो प्राणहीन हो ।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे । मुन्नी के मुख पर उदासी थी, पर हल्कू प्रसन्न था ।

मुन्नी ने चिन्तित होकर कहा, 'अब मजूरी करके मालगुज़ारी भरनी पड़ेगी ।'

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा, 'रात की ठण्ड में यहां सोना तो न पड़ेगा ।'

भगवतीशरण सिंह

कोनाव की शेरनी और गुलदार

गगा के किनारे पौडी-गढवाल ज़िले मे वन-विभाग का एक ब्लाक है जिसे चिल्ला कहते हैं। इसका एक भाग कोनाव है। यहाँ पहुँचने के लिए नजीबाबाद से कडी रोड पर चलकर चिल्ला होते हुए जाना पडता है। उस साल जाडे के दिनो मे शेर का शिकार खेलने का अवसर नही मिल सका था। कुछ तो काम की अधिकता और कुछ सयोग दोनो ने ही मिलकर हर शिकार के नाम पर जगली मुर्गी और सुअरो तक ही सीमित रखा था। बच्चे भी नही आ सकते थे। अकेले शिकार पर जाने की तबीयत भी नही हुई थी। अत अप्रैल और मई के महीनो के लिए मैंने दरखास्त भेज दी थी। सयोग से अप्रैल के दूसरे पक्ष के लिए मुझे यह ब्लाक मिल गया था, पर दुर्भाग्य से काम की अधिकता ने अभी तक पीछा नही छोडा था। मैं पन्द्रह अप्रैल की शाम को तो अपने ब्लाक मे पहुँच ही नही सकता था। बडी कोशिशो के बावजूद मैं पच्चीस की शाम को ही वहाँ पहुँच सका था। मेरे साथ मेरे मित्र राजा जसजीतसिंह भी थे। शिकार के मामले मे न केवल उनकी मेरे ऊपर बडी कृपा रहती है, वरन् उनके अनुभवो से कभी-कभी ऐसा लाभ भी हुआ है जिसकी याद सदा बनी रहेगी। ऐसी ही एक कहानी लिख रहा हूँ।

इस ब्लाक के वन-विभाग का विश्राम-गृह गगा के ठीक किनारे बना हुआ है। छोटा होने पर भी गर्मियो के लिए बडा सुखकर है। हम जब शाम को वहाँ पहुँचे तो हमारे सामने एक कठिनाई नही थी, वरन् अनेक थी। ऐसा लगता था कि एक ओर तो पौडी-गढवाल की ओर ऊँचे उठते हुए पहाड हैं तो दूसरी ओर कठिनाइयो के पहाड हैं, जिनसे मैं घिर गया हूँ। उस वक्त अगर कोई शान्ति देने वाली चीज लगी तो वह गगा का तरल-प्रवाह था, जो सनातन से मनुष्यो को सुख और शान्ति प्रदान करता रहा है।

अपने सामने खड़ी समस्याओं का विवेचन करने के सिवाय हम उस समय कुछ भी नहीं कर सकते थे। इस जंगल में जंगली हाथी बहुतायत से पाये जाते हैं और उनके रहते पैदल चलकर सुबह और शाम शेरों के पद-चिह्नों की तलाश करना, उनके लिए सही स्थानों पर कटरे बाँधना, बड़ा कठिन काम था। शिकार के सिलसिले में प्रबन्ध-सम्बन्धी बहुत से ऐसे काम करने पड़ते हैं जो बहुत मेहनत की अपेक्षा रखते हैं जिनमें बहुत सूझ-बूझ की जरूरत पड़ती है। आम तौर पर यह काम लोग अपने वेतन-भोगी शिकारियों और कर्मचारियों को सौंप देते हैं। ये वेतन-भोगी कर्मचारी और शिकारी अक्सर बड़ी मेहनत और अपने पुराने अनुभवों के आधार पर सही प्रबन्ध कर देते हैं। किन्तु मेरी समझ में ऐसा करने वालों के लिए शिकार का आधा मजा निकल जाता है। असली रोमांच और रहस्य तो शिकार खोजने और उसके प्रबन्ध करने में ही है। मैं अपने शिकारियों के साथ इस काम में स्वयं लगे रहना सदा पसन्द करता हूँ। किन्तु यहाँ समस्या यह थी कि जंगली हाथियों के रहते मेरे अनुभवी मित्र राजा साहब मुझे इस काम के लिए देर-सवेर पैदल निकलने को मना कर रहे थे। मैंने इस काम के लिए दो हाथियों का प्रबन्ध कर रखा था। पर जिस दिन हम पहुँचे उस दिन तक वे हाथी नहीं पहुँच पाये थे। यदि पच्चीस अप्रैल की शाम को कटरे न बँध सके तो छब्बीस को किसी प्रकार के शिकार होने की संभावना नहीं थी और इस प्रकार जिस पखवारे में केवल चार दिन बचे हों, उसमें एक दिन इस प्रकार नष्ट हो जाना हम लोगों को बहुत खल रहा था। मैं उन भाग्यशालियों की बात नहीं करता कि जिनकी अक्सर जंगल में पहुँचते ही अचानक शेर से भेंट हो जाती है और उसे वे मार भी लेते हैं। यह केवल भाग्य की बात होती है, इसमें पुरुषार्थ की कोई बात नहीं। मुझे वह काम बिल्कुल पसन्द नहीं, जिसमें पुरुषार्थ और कड़ी मेहनत का सामना न करना पड़े। मेहनत के बाद जो फल मिलता है वह मुझे अधिक सुस्वादु और चिरस्थायी जान पड़ता है। शायद यही प्रवृत्ति मुझे अपने शिकारियों और कर्मचारियों के साथ लगकर मेहनत करने के लिए प्रेरित करती रहती है। इतना ही नहीं, दूसरी कठिनाई

यह भी थी कि इस शिकार में मेरे अपने शिकारी लड्डन खाँ नहीं थे। उनके न रहने से हँसी-मज़ाक और शिकारी दुनिया के किस्से-कहानियों का भी अभाव खटक रहा था। राजा साहब ने जिस एक शिकारी को बुला रखा था वह शरीर से अत्यन्त भारी होने के कारण स्वय और स्वभाव से भीरु था। इसलिए वह अपने पुराने अनुभवों की कहानी दुहरा कर अपनी पिछली जानकारी के आधार पर बैठे-बैठे ही प्रबन्ध का स्वरूप निश्चय कर देना चाहता था। जहाँ तक जगलों को थोड़ा-बहुत जान पाया हूँ, जगल हर रोज बदल जाता है। जब मैं यह कहता हूँ कि जगल हर रोज बदल जाता है तो प्रधानतः मेरा मतलब जगली जानवरों के बदलते हुए व्यवहार से है। यह ज़रूरी नहीं कि एक दिन जो जानवर एक स्थान पर एक बार जैसा आचरण करता पाया गया हो उसकी बिरादरी के दूसरे जानवर भी उसी स्थान पर अथवा उस परिस्थिति मे वैसा ही आचरण करें। यह दूसरी बात है कि कुछ स्थान ऐसे होते हैं जहाँ घूम-फिरकर यह जानवर रहते ही हैं।

दूसरी कठिनाई जगल में पानी के ठिकानों की कमी की थी। जगलों मे जहाँ भी पानी होता है, वहाँ जानवरों के एकत्र होने का प्रायः निश्चित स्थान होता है। किन्तु यह आम जानकारी की बात है कि गरमी प्रारम्भ हो जाने पर पानी के स्रोत सूखने लगते हैं और इस प्रकार ऋतु-भेद से जानवरों के रहने का स्थान-भेद भी हो जाता है। जल-स्रोत खिसककर जगलों की गहनता अथवा प्राकृतिक सुविधा के अनुसार स्थान बदल लेते हैं। इसीलिए मुझे उन शिकारी महाशय की बहुत-सी बातें पसन्द नहीं आ रही थी। अतः मैंने यह निश्चय कर लिया कि हाथियों के अभाव में भी हम लोग स्वय चलेंगे और शेर के पजे को देख-ताक कर केवल उचित स्थानों पर ही कटरे बाँधेंगे। लेकिन केवल ऐसा निश्चय कर लेने से ही काम नहीं बन पा रहा था। कटरों की भी कमी थी, इसलिए हम और भी चाहते थे कि कटरे इस सूझ-बूझ के साथ ऐसे स्थानों पर बाँधे जायें जहाँ शेर का आना ही केवल सभव न हो बल्कि मार के बाद ठहरना भी निश्चित हो। इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी था कि अगर अपने

हाथी न पहुंच सकें तो पैदल भी मचान तक पहुंचना सुकर हो। किन्तु एक समस्या और थी। अपने साथ उस दिन, एक ड्राइवर और एक निजी नौकर—केवल दो—ही ऐसे आदमी थे जो इस काम में साथ लिये जा सकते थे। अतः इन दो आदमियों के सहारे अलग-अलग दिशाओं में यह काम सावधानीपूर्वक नहीं किया जा सकता था। जैसा मैंने पहले कहा कि —काम की अधिकता के कारण पच्चीस अप्रैल से पहले यहां नहीं आ सका था और आने की फुरसत मिली तो कुछ ऐसी जल्दबाजी मची कि अन्य जरूरी सामानों में एक जरूरी सामान—टॉर्च लाना भी भूल गया था। अन्य बातों का जिक्र आगे करूंगा। यहां आज का काम शुरू करने से पहले तीन-चार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, मैंने केवल उन्हीं का जिक्र किया। बहुत सोच-विचार के बाद यह निश्चिय हुआ कि हम सब एक साथ एक ही ओर चलें और ढूंढ़-खोजकर किसी अच्छे और सम्भावनायुक्त स्थान पर कटरा बांध दें। सोच-विचार में ही प्रायः सूर्यास्त हो चला था, अतः जंगल के भीतरी स्थानों पर पहुँचते-पहुँचते एक तो सूर्यास्त हो जाने का अंधेरा और दूसरा अंधेरा जंगल के घनेपन का—ये दोनों ही मिलकर और अधिक अँधेरा पैदा कर रहे थे। रास्ता तो साफ दिखाई पड़ जाता था क्योंकि अँधेरे में भी सफेद रजकण चमकते ही रहते थे किन्तु रात में जंगलों में क्या हो रहा है हां इस बात का कुछ अधिक पता नहीं चल रहा था। जानवरों की आंखें कभी-कभी चमक जाती थीं, जिससे यह पता चल जाता था कि वे किस किस्म के जानवर हैं—हिंस्र अथवा शाकाहारी। इसका पता उनकी आंखों की ज्योति से चल जाता है। पर इसमें भी एक भ्रम अक्सर हो जाता है। दूर बैठी छपका चिड़िया की आंखें भी ठीक वैसी ही होती है जैसी हिंस्र पशुओं की, और जिन्हें देखने पर कभी-कभी यह भ्रम हो जाता है कि वहां गुलदार अथवा अन्य कोई हिंस्र पशु बैठा है। पर हाथी की आंखें नहीं चमकतीं। कभी-कभी घने पेड़ों और झाड़ियों के बीच हाथी ऐसे खड़े होते हैं कि उनके बगल से निकल जाने के बावजूद उनका पता नहीं चलता। आम तौर पर जंगली हाथी अचानक हमला नहीं करते।

बिना छेडे हमला करने की आदत या तो पागल जानवर मे देखी गयी है अथवा आदमी मे। इन्ही जगली हाथियो के झुण्ड मे कभी-कभी दुष्ट हाथी भी पाये जाते हैं जो अचानक हमलावर हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति मे इनसे बचना बहुत कठिन होता है। पर यदि दुष्ट हाथियो की बात छोड भी दी जाय तो भी हाथियो के सत्कार से भी मनुष्य का उपकार हो जाता है। इस सम्बन्ध मे एक कहानी मुझे याद आ गई। मेरे एक शिकार मे एक मुशी जी रात को जगल के रास्ते जीप मे बैठे हुए जा रहे थे। जीप खुली हुई थी। ड्राइवर सहित उस पर कई लोग बैठे हुए थे। यह मुशी जी जीप के पीछे किनारे की ओर बैठे हुए थे। इनकी पीठ बाहर की ओर थी। रात के अधेरे मे उसी सड़क पर एक जगली हाथी खडा था। जगल की हरीतिमा मे हाथी का काला शरीर कुछ ऐसा छिप गया था कि रोशनी मे भी बगल मे खडा हाथी दिखाई नही पडा। जब जीप बगल मे आ गयी तो उसने हटने की कोशिश की। लेकिन जगल की ओर कटीला तार था। अत. उसने आती हुई जीप रूपी बला को टालने के लिए 'छीप' मार दी। जगल और शिकार की शब्दावली मे हाथी जब अपनी सूड से कोई चीज हटाता है तो उसे 'छीप' मारना कहते हैं। इस हल्की-सी चोट से ही मुशी जी की रीढ की हड्डी टूट गई। जिन लोगो ने जगली हाथी को जगल मे नही भी देखा होगा, उन्हे भी अक्सर सरकस मे आने वाले हाथी के बच्चो का खिलवाड स्मरण होगा।। कभी-कभी इन बच्चो को सहलाने के लिए बडे-बडे लोग भी उनके बहुत नज़दीक चले जाते है। हाथी के ये बच्चे उन्हें अपनी सूड से हटाने की कोशिश करते हैं। उनकी सूड के इस हल्के से धक्के से ही वे सँभल नही पाते और गिर जाते हैं। कहने का मतलब यह कि हाथी-जैसे बलवान जानवर से आदमी-जैसे छोटे जीव का बडा नुकसान हो सकता है। यह बहुत बडी शका थी जो हम लोगो के मन मे बैठी हुई थी किन्तु काम तो करना ही था। हम कटरे को लिए हल्की बातचीत करते हुए सावधानी से शेर के पजो की छाप खोजने की ताक मे ज़मीन मे दृष्टि गडाये चलने लगे। बातचीत की आहट पाकर जगल के जानवर पीछे हट जाते हैं; सिवाय उन दुष्ट

हाथियों के जो अभद्र झुण्ड का कभी-कभी शरगना बन बैठते हैं, जंगली हाथी भी ऐसा ही करते हैं। इस प्रकार हमने एक-डेढ़ मील जंगल के भीतर का रास्ता तय कर लिया था। हम ऐसी जगह पहुँच चुके थे जहां कुछ खुला था और जो जंगली रास्ते की तिमुहानी थी। सहसा कुछ पत्तों के खड़कने की आवाज आई और हम सहमकर वहीं खड़े हो गए। जिस प्रकार का खटका हुआ था, उससे वहां से शेर के हटने की भी बात हो सकती थी और जंगली हाथी के भी सजग होने की।

शिकारी से ऐसा मालूम हुआ कि वहीं पास में पानी का एक स्रोत भी है। अतः इस बात की संभावना तो बढ़ गई कि वहाँ जानवर हो सकते हैं। वहाँ शेर भी हैं इसका निश्चय या तो उसके पंजों की छाप से ही सकता था या फिर दूसरे जानवरों की आवाज से। उस समय यह दोनों ही शून्य थे। अँधेरा बढ़ता जा रहा था और उसी के साथ निराशा भी बढ़ रही थी। हम अभी खड़े ही थे कि फिर वैसा ही खटका हुआ। इस बार कुछ हटकर और हमारे नजदीक से आहट आई थी। इस बात में अब सन्देह नहीं रह गया था कि या तो वह शेर था जो हमारी आहट पाकर हटने की कोशिश कर रहा था, अन्यथा जंगली हाथी था। अगर यह जंगली हाथी था तो वहां कटरा बांधना उचित नहीं था। क्योंकि उसकी उपस्थिति में शेर वहां नहीं जाता और अगर यह हाथी दुष्ट हाथी था तो वह बँधने वाले कटरे को वहीं रौंद डालता। मेरे साथ एक शिकार में ऐसा ही हुआ था। अतः मैं हाथी की संभावना अधिक होने पर वहाँ कटरा बाँधने को तैयार नहीं था। दो बार खटका हो चुका था, अतः वहाँ देर तक रुकना भी उचित नहीं था क्योंकि उससे अगर शेर होता तो उसके दूर निकल जाने की आशंका थी। पर कटरे को लेकर लौटना भी तो नहीं था। हम लोगों ने आपस में विचार करके यह तय किया कि यदि यह शेर है तो संभवतः वहीं घूम रहा है और यदि इस तिमुहानी पर कटरा बाँध दिया जाय तो रात को इसे जरूर मार लेगा। पानी का स्रोत नजदीक होने के कारण दूसरे दिन पास में ही विश्राम भी करेगा और तीसरे पहर फिर कटरे के पास जल्दी ही आ जाएगा। मन को यह विश्वास

करा लेने पर हम लोगों ने कटरा वहीं बाँध दिया और फिर बातचीत करते हुए चल पड़े। कुछ दूर जाने पर हमें ऐसा लगा कि दाहिनी बाज़ू झाड़ियों में फिर हल्की-सी सिहरन शुरू हो रही है। हम सहमकर चुपचाप खड़े हो गये। ज्यादा छेड़छाड़ मुनासिब नहीं लगी। पर हमारे छेड़छाड़ न करने से क्या होता था? अगर दूसरा खुद अपनी सत्ता जताने के लिए आतुर हो रहा हो तो हम क्या कर सकते थे? यकायक मेरा नौकर बिदक कर खड़ा हो गया। उलटकर देखा तो झाड़ियों के पीछे विशालकाय हाथी खड़ा था। हाथी जब अकेला हो तो वह निश्चय ही दुष्ट हाथी होता है। हमारे पाँव आदमी के न होकर हाथी के हो गए। उस स्थिति में उन्हें सिर पर भी नहीं रखा जा सकता था। हमने एक मोटे पेड़ की आड़ ली और बड़ी देर तक सन्नाटे की स्थिति में खड़े रहे।

अगले रोज़ सवेरे कटरे को देखने गये तो हमारी आशा के अनुरूप ही वह कटरा वहाँ नहीं था। उसकी रस्सी टूटी हुई थी और उसको घसीट जंगल के भीतर की ओर दिखाई पड़ी। पिछली शाम की घटना याद आई। त्रिमुहानी, जहाँ हमने कटरा बाँधा था, वहाँ दो बार किसी जानवर की आहट लगी थी। आगे चलकर एक दुष्ट हाथी का साक्षात भी हुआ था। दिन के उजाले में यह भी तय हो गया कि वह शेरनी थी, बड़ी थी, और दो बार वह आई-गई थी। जो घटना रात को हुई थी उसमें यह देखकर कि हमारी मौजूदगी में भी शेरनी इतनी करीब थी, सवेरे की हवा कानों को और सर्द कर गई। कटरे को ढूढ़ने के पहले यह निश्चय करना जरूरी था कि इसे शेरनी ने मारा था या हाथी ने रौंदा था। थोड़ी दूर पर दुष्ट हाथी की उपस्थिति ने ही यह सन्देह पैदा किया था। वहाँ मिट्टी भी इस प्रकार हटी थी कि सन्देह होना स्वाभाविक था। लेकिन जब थोड़ी ही दूर हटकर घसीट दिखाई पड़ी तो स्पष्ट हो गया कि कटरे को शेरनी ले गई थी। छानबीन करने पर यह भी ज़ाहिर हो रहा था कि हाथी वहाँ ज़रूर आया था और कटरे ने रस्सी तुड़ा ली थी अथवा दुष्ट हाथी ने कटरे को मारकर रस्सी को तोड़ दिया था, पर पास ही बैठी शेरनी उसे ले आने में समर्थ हुई थी। किन्तु दुर्भाग्य से शेरनी ने कटरे को घसीटकर

ऐसी जगह छोड़ दिया था कि उसे इधर-उधर हटाना उचित नहीं था। मार को अपनी जगह से हटाने का निश्चय मौक़े पर ही होता है और अनुभवी शिकारियों की स्वानुभूति इसमें मदद देती है। कटरे को न हटाने पर मचान बांधने के लिए वहां पेड़ न थे पर जंगल का वह हिस्सा ऐसा था कि आगे बढ़ने पर भी सुविधाजनक पेड़ों का मिलना संभव नहीं दिखाई पड़ रहा था। हार-थककर वहीं दो पेड़ों का सहारा लेकर मचान को जरूरत से अधिक ऊँचाई पर बाँधना पड़ा। दोनों पेड़ बहुत ऊँचे थे और दोनों के सहारे मचान बँधा होने के कारण उसका रूप कुछ झूले जैसा हो गया था। तेज हवा के चलने से उसमें हिलन पैदा होगी, यह निश्चित था। किन्तु दूसरा उपाय भी नहीं था। हम यह भी पहले कह चुके हैं कि पानी का सोता नज़दीक होने के कारण हमारा अनुमान था कि शेरनी अपनी मार पर जल्दी आ जायगी। अतः मैं और राजा साहब दोनों ही मचान पर लगभग ढाई बजे से ही आकर बैठ गये थे। उस समय कुछ हवा चल रही थी। अतः जैसी आशंका थी मचान हिलने लगा। लेकिन थोड़ी ही देर बाद हवा बन्द हो गयी और हम स्थिरता के साथ बैठ गये। क़ोई साढ़े तीन-पौने चार बजे के लगभग यद्यपि हवा बन्द थी फिर भी मचान रह-रहकर हिलने लगा। समझ में नहीं आया कि बात क्या थी। हम लोग बहुत देर तक बैठे हुए केवल अनुमान लगाते रहे। कुछ वैज्ञानिक तर्कों का सहारा भी लिया जा रहा था किन्तु कोई समाधान नहीं मिलता था। हार कर हमने यह निश्चय किया कि ज़रा मचान के नीचे की ओर देखा जाय। झुकते ही देखा कि मचान के नीचे दोनों पेड़ों के बीच ऐरा के समान एक हाथी खड़ा है। हाथी अकेला था, अतः यह समझने में देर नहीं लगी कि वह दुष्ट हाथी था। हमने फिर सन्नाटा खींच लिया। वह कभी-कभी अपने शरीर को हल्के-हल्के पेड़ों से रगड़ देता था। उसकी रगड़ से ही ऊपर मचान में कंपन आ रहा था। हमने सन्नाटा इसलिए खींचा था कि अगर उसे यह पता चल जाता कि हम लोग ऊपर बैठे हैं तो संभव था कि वह शरारत पर उतर आता। उसके आ जाने से एक और खतरा पैदा हो गया। जब तक वह वहाँ रहता, शेरनी अपनी

मार पर कभी नही आती । पर यह हाथी था जो हटने का नाम नही लेता था। हम उसी दशा मे लगभग साढे चार बजे तक मचान पर उसी तरह टगे रहे। सयोग से साढे चार बजे के थोडी देर बाद यह हाथी अपनी सूड पटकता हुआ चला गया। उसके जाने से हमे बडी खुशी हुई किन्तु उसके सूड पटकने हुए जाने से हमे विस्मय जरूर हुआ था। हाथी सूड तभी पटकता है जब वह गुस्से मे होता है अथवा जब वह अपने किसी दुश्मन को देख लेता है। बहरहाल इस रहस्य का पता हमे मचान पर बैठे-बैठे नही लग रहा था। हम दोनो बैठे रहे और शाम हो गयी। शेरनी न आयी। अधेरा होते ही हम लोग मचान से नीचे उतर आये, एक बार फिर उस मरे हुए कटरे को देख लेना उचित समझा। मार के स्थान पर पहुँचते ही देखा कि कटरा अपने स्थान से दूर अलग पडा हुआ है और वही हाथी के पांव के बडे-बडे निशान दिखाई पडे। बात फौरन समझ मे आ गयी। इस दुष्ट हाथी ने हमारे मचान पर आने के पहले ही इस कटरे को देख लिया था और इसे मार-मार कर वहाँ से हटा दिया था। इसका एक ही कारण हो सकता था। यह हाथी प्राय जगल के इसी भाग मे रहता रहा होगा और उसे इस बात का भी अनुभव हो चुका था कि जहाँ इस प्रकार के कटरे बँधे हुए होते हैं वहाँ शेर आता है। अत वह नही चाहता था कि उसके एकान्त मे कोई और बाधा डाले और इसी कारण उसने बँधे हुए कटरे को रौंदकर फेंक दिया था। उस दिन फिर कुछ नही हो सका और हम अपने विश्राम-गृह मे लौट आये।

अब हमारे पास सिर्फ २८-२९ और ३० तारीखें बची हुई थी। २८ अप्रैल का सारा दिन दूसरी जगह तलाश करने और कटरे बाधने मे ही लग गया था। २८ अप्रैल को एक अच्छाई जरूर हुई कि हमारा हाथी आ गया था। उस दिन थोडा-बहुत घूम-फिर कर रास्ते मे मिलने वाले जानवरो का शिकार जरूर हो सकता था, लेकिन उसी शाम मुझे यह मालूम हुआ कि मेरी छोटी लडकी, जो उन दिनो लखनऊ लॉरेटो कॉन्वेन्ट मे पढ रही थी, छुट्टियाँ होने पर मेरे पास आ रही है। निदान मुझे गाडी लेकर फौरन वापस जाना पडा। लडकी को स्टेशन से लेने के बाद रात को ही उसे

लिये-लिये फिर जंगल वापस आ गया; क्योंकि घर जाने पर एक दिन और नष्ट होता। यद्यपि उस छोटी-सी बच्ची के मन में अपनी माता और भाइयों से मिलने की प्रबल उत्कण्ठा थी, फिर भी जंगल के रोमांच और जीवन से परिचित होने के कारण, वह मेरे साथ बड़ी प्रसन्नतापूर्वक चली आयी। दूसरे दिन सबेरे ही यह सूचना मिली कि २८ की शाम को बँधे हुए कटरों में से एक कटरा फिर मारा गया। हम लोगों ने सारा काम छोड़कर मार की जगह मचान बाँधा और उस दिन फिर लगभग तीन बजे ही मचान पर बैठ गये। मचान तो आरामदेह था। किन्तु उस दिन कटरे को मार की जगह से थोड़ा हटाकर इस प्रकार रखना पड़ा कि वह दिखाई पड़ता रहे। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि शिकार के नियमों में एक नियम यह भी है कि जहाँ तक सम्भव हो मार को अधिक छूना या हटाना नहीं चाहिए। अच्छा यही होता है कि शेर जहाँ अपना शिकार छोड़ जाये उसे वहीं पड़ा रहने दिया जाये। यह मचान जहाँ बँधा था उसके दाहिनी ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ थीं, बाईं ओर एक छोटा-सा नाला था और सामने की ओर थोड़ी दूरी पर गंगा बह रही थी। यद्यपि वहाँ से गंगा दिखाई नहीं पड़ती थी फिर भी उस ओर खुला होने के कारण उधर से खूब रोशनी आती थी। हमारे बैठने के थोड़ी ही देर बाद पास के हिस्से में हलचल शुरू हो गयी और मुर्गियों और चीतलों के बोलने से इस बात का निश्चय हो गया कि शेरनी आ रही है। हम दोनों ने अपनी आँखें उस रास्ते पर गड़ा दी थीं। कुछ ही क्षणों बाद देखा तो उसी रास्ते एक गुलदार चला आ रहा था। वह चलता आया और कटरे से लगभग २०-२५ गज की दूरी पर आकर रुक गया। थोड़ी देर खड़ा रहने के के बाद वह वहीं बैठ गया। बात यह थी कि उसे यह मालूम था कि यह शिकार उसका नहीं है। उस कटरे को शेरनी ने मारा था, अतः शेरनी द्वारा किये गये शिकार पर आने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। हम भी उसे देख रहे थे। बन्दूकें कंधों पर लगी हुई थीं किन्तु हमारा उद्देश्य शेरनी का शिकार था। अतः हमने उस पर गोली नहीं चलाई। इस प्रकार लगभग पाँच बजे शाम तक वह वहीं बैठा रहा। कभी वह खड़ा होता और

कभी बैठ जाता। उसके मन में लालच जरूर था, इसीलिए वहाँ से हट नहीं रहा था। किन्तु मन में भय था, इसलिए वह आगे बढ़कर कटरे पर भी नहीं आ रहा था। अब पाँच बज गये और यह लालच आया कि इस पखवारे का केवल एक दिन और बचा है। यह कोई जरूरी नहीं कि ३० अप्रैल को, जो अन्तिम दिन था फिर कोई मार हो ही जाय। अतः यदि शेरनी नहीं आती है तो गुलदार ही सही। हमने गौर से देखा और देखा कि गुलदार अदाज़ से लगभग सात फुट से कम नहीं था। गुलदार के लिए सात फुट का होना कम बात नहीं थी और इस विचार के पक्का होते ही हमारी गोली दनदना कर उसके सीने में समा गई। वह वहीं धराशायी हो गया। हमारी गोली की आवाज सुनते ही हमारा हाथी और महावत मेरी बच्ची को लेकर चल पड़े। हमने उसे आते देख भी लिया और शायद हम उतर भी आते किन्तु मेरे मित्र राजा साहब ने, जिन्हें शिकार का बड़ा अद्भुत अनुभव है, फौरन मुझ से कहा कि बिना शोर किये किसी प्रकार इस हाथी को आने से रोकना चाहिए। मैंने उनसे कहा कि अब यहाँ बैठने से कोई फायदा नहीं। हमारी गोली की आवाज दूर-दूर तक गूंज गई थी और इस आवाज के बाद शेरनी कहीं पास में भी नहीं होगी। वह अब हरगिज शिकार पर नहीं आएगी। राजा साहब अपनी ज़िद पर अड़े थे। उनका कहना था कि हमारी गोली पहाड़ी के बाईं ओर चली है। सामने गंगा का पाट होने के कारण गोली की आवाज सीधे उस पार निकल गयी होगी। अभी समय है अतः शेरनी जरूर आ सकती है। हमें बेमतलब उतरने की जल्दी नहीं करनी चाहिए। अगर वह आयी तो कटरे पर जाने से पहले वह इस गुलदार को देखेगी। स्वभावतः उसे गुस्सा आयेगा कि मेरे शिकार पर यह कौन आने वाला है। वह देखते ही इस गुलदार पर झपटेगी और हम उसे भी मार लेंगे। मुझे उनकी यह तरकीब बिल्कुल कहानी-सी लगी। किन्तु मेरे मन में उनके लिए इतना ज्यादा आदर है कि उनकी बात मानकर मैंने मचान पर बैठे रहना ही उचित समझा। हमारा हाथी नज़दीक आ गया था और हमें दिखाई भी पड़ रहा था। हमने अपनी टोपियाँ हिला-हिला कर उसे वापस

जाने का इशारा किया और सौभाग्य से उसने इशारे को समझ भी लिया। किन्तु उसे क्या पता था कि हम उसे किस लिए वापस कर रहे हैं। वह यह सोचकर रुक गया कि शायद अभी शेरनी मरी नहीं है और घायल होकर यहीं छिप गयी है। जो कुछ भी हो, वह पीछे लौट गया और कुछ ही क्षणों में ओझल हो गया। इस बीच मुर्गियों के भागने और चूं-चूं करने की आवाज़ तेज़ हो गयी। हम अभी सँभले भी नहीं थे कि शेरनी उस झाड़ी से निकल कर गुलदार पर झपट पड़ी और उसे अपने अगले हिस्से के नीचे दबा लिया। जिस स्थिति में वह थी वहाँ से उसे देखने में किंचित भी कठिनाई नहीं हो रही थी। दूसरी बात यह थी कि इतनी जल्दी उसे सहसा आया देख हम भी चकित थे। फिर भी घुटने के बल उठकर गोली चलाने में हमने देर नहीं की और एक के बाद दूसरी गोली में वह ढेर हो गयी।

हमारा हाथी पुनः लौट आया और देखते-देखते हम लोगों के पास आ गया। हम एक नहीं दो शिकार लेकर अपने विश्राम-गृह की ओर चल पड़े थे।

पच्चीस मिनट पहले जिस बात को मैंने कहानी समझा था, वही मेरी आँखों के सामने एक सच्ची घटना हो गयी थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे राजा साहब ने जो कहा था और उनकी जिस बात के लिए मेरे मन में अविश्वास हुआ था उसे ही सच करने के लिए ईश्वरीय प्रेरणा से वह शेरनी आयी ताकि वह कथा वैसी ही घटे जैसी कि उन्होंने बतायी। इस घटना को अब भी जब मैं सोचता हूँ, मुझे ऐसा लगता है कि शायद ही किसी शिकारी के जीवन में इस प्रकार का अवसर आया हो। एक ही मचान से पच्चीस मिनट के भीतर गुलदार और शेरनी के दो शिकार करने की घटना जीवन में एक ही बार घट सकती है। आज भी यह शेरनी और गुलदार मेरे कमरे में लगे हैं। उन्हें देखते ही इस शिकार की याद ताज़ा हो जाती है और राजा साहब की दूरदर्शिता तथा अनुभव के प्रति नत-मस्तक हो जाता हूँ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

दण्डदेव का आत्म-निवेदन

हमारा नाम दण्डदेव है। पर हमारे जन्मदाता का कुछ भी पता नही। कोई कहता है कि हमारे पिता का नाम वश या बाँस है। कोई कहता है, नही, हमारे पूज्यपाद पितृ महाशय का नाम काष्ठ है। इसमे भी किसी-किसी का मतभेद है, क्योकि कुछ लोगो का अनुमान है कि हमारे बाप का नाम बेंत है। इसी से हम कहते हैं कि हमारे जन्मदाता का नाम निश्चय-पूर्वक कोई नही बता सकता। हम भी नही बता सकते। सबके गर्भ-धारिणी माता होती है, हमारे वह भी नही। हम तो जमीतोड है। यदि माता होती तो उससे पिता का नाम पूछकर आप पर अवश्य ही प्रकट कर देते पर क्या करें मजबूरी है। न बाप, न माँ। अपनी हुलिया यदि हम लिखाना चाहें तो कैसे लिखावें। इस कारण हम सिर्फ अपना नाम ही बता सकते हैं।

हम राज-राजेश्वर के हाथ से लेकर दीन-दुर्बल भिखारी तक के हाथ मे विराजमान रहते हैं। जराजीर्णों के तो एक-मात्र अवलम्ब हमी हैं। हम इतने दूरदर्शी हैं कि हममे भेद-ज्ञान जरा भी नही। धार्मिक-अधार्मिक, साधु-असाधु, काले-गोरे सभी का पाणिस्पर्श हम करते हैं। यो तो हम सब जगह रहते हैं, परन्तु अदालतो और स्कूलो मे तो हमारी ही तूती बोलती है। वहाँ हमारा अनवरत आदर होता है।

ससार मे अवतार लेने का हमारा उद्देश्य दुष्ट मनुष्यों और दुर्वृत्त बालको का शासन करना है। यदि हम अवतार न लेते तो ये लोग उच्छृंखल होकर मही-मण्डल मे सर्वत्र अराजकता उत्पन्न कर देते। दुष्ट हमे बुरा बताते हैं, हमारी निन्दा करते हैं, हम पर झूठे-झूठे आरोप करते हैं। परन्तु हम उनकी कटूक्तियो और अभिशापो की जरा भी परवाह नही करते। बात यह है कि उनकी उन्नति के पथ-प्रदर्शक हमी हैं। यदि हमी

उनसे रूठ जाएँ तो वे लोग दिन-दहाड़े मार्ग-भ्रष्ट हुए बिना न रहें।

विलायत के प्रसिद्ध पण्डित जॉन्सन साहब को आप शायद जानते होंगे। ये वही महाशय हैं जिन्होंने एक बहुत बड़ा कोश अंग्रेज़ी में लिखा है और विलायती कवियों के जीवन-चरित, बड़ी-बड़ी तीन जिल्दों में भरकर, चरित-रूपिणि त्रिपथगा प्रवाहित की है। एक दफे यही जॉन्सन साहब कुछ भद्र महिलाओं का मधुर और मनोहर व्यवहार देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उस सुन्दर व्यवहार की उत्पत्ति का कारण खोजने पर उन्हें मालूम हुआ कि इन महिलाओं ने अपनी-अपनी माताओं के कठिन शासन की कृपा ही से ऐसा भद्रोचित व्यवहार सीखा है। इस पर उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा—

Rod ! I will honour thee
For this thy duty

अर्थात् हे दण्ड, तेरे इस कर्त्तव्य-पालन का मैं अत्यधिक आदर करता हूँ। जॉन्सन साहब की इस उक्ति का मूल्य आप कम न समझिये। सच-मुच ही हम बहुत बड़े सम्मान के पात्र हैं; क्योंकि हमीं तुम लोगों के—मानव-जाति के भाग्य-विधाता और नियन्ता हैं।

संसार की सृष्टि करते समय परमेश्वर को मानव-हृदय में एक उप-देष्टा के निवास की योजना करनी पड़ी थी। उसका नाम है विवेक। इस विवेक ही के अनुरोध से मानव-जाति पाप से धर-पकड़ करती हुई आज इस उन्नत अवस्था को प्राप्त हुई है। इसी विवेक की प्रेरणा से मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में, हमारी सहायता से पापियों और अपराधियों का शासन करते थे। शासन का प्रथम आविष्कृत अस्त्र दण्ड, हमी थे। कालक्रम से हम अब नाना प्रकार के उपयोगी आकारों में परिणत हो गए हैं। हमारी प्रयोग-प्रणाली में भी अब बहुत कुछ उन्नति, सुधार और रूपान्तर हो गया है।

पचास-साठ वर्ष के भीतर इस संसार में बड़ा परिवर्तन—बहुत उथल-पुथल हो गया है। उसके बहुत पहले भी इस विशाल जगत में

हमारा राजत्व था। उस समय भी रूस मे मार-काट जारी थी। पोलैंड मे यद्यपि इस समय हमारी कम चाह है, पर उस समय वहाँ की स्त्रियो पर रूसी सिपाही मनमाना अत्याचार करते थे और बार-बार हमारी सहायता लेते थे। चीन मे तब भी वश-दण्ड का अटल राज्य था। टर्की मे तब भी दण्ड चलते थे। श्यामवासियो की पूजा तब भी लाठी से ही की जाती थी। अफ्रीका से तब भी मम्बो-जम्बो (गैंडे की खाल का हण्टर) अन्तर्हित न हुआ था। उस समय भद्र महिलाओ पर चाबुक चलता था। पचास-साठ वर्ष पहले ससार मे, जिस दण्ड शक्ति का निष्कण्टक साम्राज्य था, यह न समझना कि अब उसका तिरोभाव हो गया है। प्राचीन काल की तरह अब भी सर्वत्र हमारा प्रभाव जागरूक है। इशारे के तौर पर हम जर्मनी के हर प्रान्त मे वर्तमान अपनी अखण्ड सत्ता का स्मरण दिलाये देते हैं।

अब यद्यपि हमारे उपचार के ढग बदल गये हैं और हमारा अधिकार-क्षेत्र कही-कही सकुचित हो गया है तथापि हमारी पहुँच नयी-नयी जगहो मे हो गयी है। आजकल हमारा आधिपत्य केन्या, ट्रान्सवाल, केप कॉलनी आदि विलायतो मे सबसे अधिक है। वहाँ के गोरे कृषक हमारी ही सहायता से अफ्रीकी और भारतवर्षी कुलियो से बारह-बारह, सोलह-सोलह घण्टे काम कराते है। वहाँ काम करते-करते, हमारा प्रसाद पाकर अनेक सौभाग्यशाली कुली, समय के पहले ही स्वर्ग सिधार जाते हैं। फीजी, जमाइका, गायना, मारीशस आदि टापुओ मे भी हम खूब फूल-फल रहे हैं। जीते रहें गन्ने की खेती करने वाले गौरकाय विदेशी। वे हमारा अत्यधिक आदर करते हैं; कभी अपने हाथ से हमे अलग नही करते। उनकी बदौलत ही हम भारतीय कुलियो की पीठ, पेट, हाथ आदि अग-प्रत्यग छू-छू कर कृतार्थ हुआ करते हैं अथवा कहना चाहिए कि हम नही, हमारे स्पर्श से वही अपने को कृत्य-कृत्य मानते हैं। अण्डमान टापुओ के कैदियो पर भी हम बहुधा जोर-आजमाई करते हैं। इधर भारत के जेलो मे भी कुछ समय से, हमारी विशेष पूछ-ताछ होने लगी है। यहाँ तक कि एम०ए० और बी०ए० पास कैदी भी हमारे सस्पर्श से अपना परि-

काम नहीं कर सकते। कितने ही असहयोगी कैदियों को प्रत्यक्ष हमीं ने ठिकाने लगाये हैं।

भारतवर्ष में तो हमारा एकाधिपत्य ही सा है। भारत अप्राहिंस है। इसलिए भारतवासी हमारी मूर्ति को बड़े आदर से अपनी छाती से लगाये रहते हैं, शिक्षकों का बेंत या कमची, सवारों का हन्टर, कोचमैनों का चाबुक, गाड़ीवानों की औंगी या छड़ी, गोंइदों के लट्ठ, सौकीन बाबुओं की पहाड़ी लकड़ी, पुलिसमैनों के डन्डे, बूढ़े बाबा की कुबड़ी, भंगेड़ियों के सवार्नीदीन और लठैतों की लाठियाँ आदि सब क्या हैं? ये सब हमारे ही तो रूप हैं। थाना नामक देव स्थानों में हमारी ही पूजा होती है। हमारी कृपा और सहायता के बिना हमारे पुजारी (पुलिसमैन) एक दिन भी अपना कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकते। भारत में तो एक भी पहले दर्जे का मजिस्ट्रेट ऐसा न होगा, जिसकी अदालत के अहाते में हमारे उपयोग की योजना का पूरा-पूरा प्रबन्ध न हो। जेलों में भी हमारी शुश्रूषा सर्वदा हुआ करती है। इसी से हम कहते हैं कि भारत में तो हमारा एकाधिपत्य है।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' की आत्मकथा

क्या ही लज्जत है कि रग-रग से आती यह सदा ।
दम न ले तलवार जब तक जान बिस्मिल मे रहे ॥

आज १६ दिसम्बर १९२७ ई० को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूँ, जबकि १९ दिसम्बर, १९२७ ई० सोमवार (पौष कृष्ण ११ संवत् १९८४ वि०) को ६॥ बजे प्रातःकाल इस शरीर को फाँसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है । अतएव नियत समय पर इह-लीला संवरण करनी होगी । यह सर्वशक्तिमान प्रभु की लीला है । सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं । यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम है कि किस प्रकार किसको शरीर त्यागना होता है । मृत्यु के सकल उपक्रम निमित्त मात्र हैं । अपने लिए मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अति शीघ्र ही पुनः भारत-वर्ष में ही किसी निकटवर्ती संबंधी या इष्ट-मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूँगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मान्तर उद्देश्य रहेगा कि मनुष्य मात्र को सभी प्राकृतिक पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो । कोई किसी पर हुकूमत न करे । सारे संसार मे जनतंत्र की स्थापना हो । वर्तमान समय मे भारतवर्ष की अवस्था बड़ी शोचनीय है । अतएव लगातार कई जन्म इसी देश मे ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारतवर्ष के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतन्त्र न हो जाएँ, परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश मे जन्म दे, ताकि उसकी पवित्र वाणी—'वेद वाणी' का अनुपम घोष मनुष्य मात्र के कानों तक पहुँचाने में समर्थ हो सकूँ ।

अब मैं उन बातों का भी उल्लेख कर देना उचित समझता हूँ, जो काकोरी षड्यंत्र के अभियुक्तों के संबंध में सेशन जज के फैसला सुनाने के

पश्चात् घटित हुई । ६ अप्रैल सन् १६२७ ई० को सेशन जज ने फ़ैसला सुनाया था । १८ जुलाई सन् १६२७ ई० को अवध चीफ़ कोर्ट में अपील हुई । इसमें कुछ की सजाएँ बढ़ीं और एकाध की कम भी हुई । अपील होने की तारीख से पहले मैंने संयुक्त प्रांत के गवर्नर की सेवा में एक मेमोरियल भेजा था, जिसमें प्रतिज्ञा की थी कि अब भविष्य में क्रान्तिकारी दल से कोई संबंध न रखूंगा । इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपने अंतिम दया-प्रार्थना-पत्र में, जो मैंने चीफ़ कोर्ट के जजों को दिया था, कर दिया था, किंतु चीफ़ कोर्ट के जजों ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना स्वीकार न की । मैंने स्वयं ही जेल से अपने मुकदमे की बहस लिखकर भेजी जो छापी गई । जब यह बहस चीफ़ कोर्ट के जजों ने सुनी, उन्हें बड़ा सन्देह हुआ कि बहस मेरी लिखी हुई न थी । इन तमाम बातों का नतीजा यह निकला कि अवध चीफ़ कोर्ट द्वारा मुझे महाभयंकर षड्यंत्रकारी की पदवी दी गई । मेरे पश्चात्ताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा को इस प्रकार प्रकट किया कि यदि यह (रामप्रसाद) छूट गया तो फिर वह कार्य करेगा । बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर प्रकाश डालते हुए मुझे 'निर्दयी हत्यारे' के नाम से विभूषित किया गया । लेखनी उनके हाथ में थी, जो चाहे सो लिखते किन्तु काकोरी षड्यन्त्र का, चीफ़ कोर्ट का, आद्योपांत फ़ैसला पढ़ने से भली भाँति विदित होता है कि मुझे मृत्युदण्ड किस ख़याल से दिया गया । यह निश्चय किया गया कि रामप्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफिया विभाग के कार्यकर्ताओं पर लाँछन लगाए हैं अर्थात् अभियोग के समय जो अन्याय होता था, उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई है, अतएव रामप्रसाद अब से सबसे बड़ा गुस्ताख मुलजिम है । अब माफी चाहे वह किसी रूप में मांगे, नहीं दी जा सकती ।

चीफ़ कोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद यथा नियम प्रांतीय गवर्नर तथा फिर वायसराय के पास दया-प्रार्थना की गई । रामप्रसाद 'बिस्मिल', राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह तथा अशफाकउल्ला खाँ के मृत्युदण्ड को बदलकर अन्य दूसरी सज़ा देने की सिफारिश करते हुए

मयुक्त प्रांत की काउंसिल के लगभग सभी निर्वाचित हुए मेंबरों ने हस्ताक्षर करके निवेदनपत्र दिया। मेरे पिता ने ढाई सौ रईस, ऑनरेरी मजिस्ट्रेटों तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थनापत्र भेजा, किन्तु श्रीमान सर विलियम मेरिस की सरकार ने एक न सुनी। उसी समय लेजिस्लेटिव असेंबली तथा काउंसिल ग्राफ स्टेट के ७८ सदस्यों ने हस्ताक्षर करके वाइसराय के पास प्रार्थनापत्र भेजा कि 'काकोरी षड्यन्त्र के मृत्युदण्ड पाए हुओं को मृत्युदण्ड की सजा बदलकर दूसरी सजा कर दी जाए, क्योंकि दौरा जज ने सिफारिश की है कि यदि वे लोग पश्चात्ताप करें तो सरकार दण्ड कम दे। चारों अभियुक्तों ने पश्चात्ताप प्रकट कर दिया है,' किन्तु वाइसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय प० मदनमोहन मालवीय जी ने तथा असेंबली के कुछ अन्य सदस्यों ने वाइसराय से मिलकर भी प्रयत्न किया था कि मृत्युदण्ड न दिया जाए। इतना होने पर भी सबको आशा थी कि वाइसराय महोदय अवश्यमेव मृत्युदण्ड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयादशमी से दो दिन पहले जेलों को तार भेज दिए गए कि दया नहीं होगी, सबकी फाँसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिटेंडेंट जेल ने तार सुनाया, तो मैंने भी कह दिया कि आप अपना काम कीजिए। किन्तु सुपरिटेंडेंट जेल के अधिक कहने पर कि एक तार दया-प्रार्थना का सम्राट के पास भेज दो, क्योंकि यह उन्होंने एक नियम-सा बना रखा है कि प्रत्येक फाँसी के कैदी की ओर से जिसकी दया-भिक्षा की अर्जी वाइसराय के यहाँ से खारिज हो जाती है, वह एक तार सम्राट के नाम से प्रांतीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिटेंडेंट ऐसा नहीं करता। उपर्युक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रिवी काउंसिल, इंग्लैंड में अपील की जाए। मैंने श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना वकील, लखनऊ को सूचना दी। बाहर किसी को वाइसराय द्वारा अपील खारिज करने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे-तैसे करके श्रीयुत मोहनलाल द्वारा प्रिवी काउंसिल में अपील कराई गई। नतीजा तो पहले से मालूम था। वहाँ से भी अपील खारिज हुई। यह जानते हुए कि अंग्रेज

सरकार कुछ भी न सुनेगी, मैंने सरकार को प्रतिज्ञापत्र क्यों लिखा ? क्यों अपीलों पर अपीलें तथा दया-प्रार्थनाएँ कीं ? इस प्रकार से प्रश्न उठ सकते हैं। मेरी समझ में सदैव यही आया कि राजनीति एक शतरंज के खेल के समान है। शतरंज के खेलने वाले भलीभाँति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपनी मोहरें मरवा देनी पड़ती हैं।

मैं प्राण त्यागते समय निराश नहीं हूँ कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गए। भारतवर्ष के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिन्दुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के अधिकतर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध किया है, और अगली कांग्रेस (मद्रास) पर सब राजनैतिक दलों के नेता तथा हिन्दू-मुसलमान एक होने जा रहे हैं। वाइसराय ने जब हम काकोरी के मृत्युदण्ड वालों की दया-प्रार्थना अस्वीकार की थी, उसी समय मैंने श्रीयुत मोहनलाल जी को पत्र लिखा था कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू-मुसलमानों को अगली कांग्रेस पर एकत्रित हो हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफाकउल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। अशफाकउल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्यसमाजी रामप्रसाद का क्रांतिकारी दल के संबंध में यदि दाहिना हाथ बन सकते हैं, तब क्या भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के नाम पर हिन्दू-मुसलमान अपने निजी छोटे-छोटे फायदों का खयाल न करके आपस में एक नहीं हो सकते ?

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया, जो सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ। अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फांसी पर चढ़ने से जरा भी दुःखित हुए हों तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हिन्दू-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो कांग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत

दूर न होगा जबकि अंग्रेज़ी सरकार को भारतवासियों की माँग के सामने सिर झुकाना पड़े, और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं। क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जाएगा। हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की यादगार तथा अन्तिम इच्छा है, चाहे वह कितनी ही कठिनता से क्यों न प्राप्त हो। जो मैं कह रहा हूँ वही श्री अशफ़ाकउल्ला खाँ का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ में फाँसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस मे हर तरह की बातें हुई थीं। गिरफ्तारी के बाद से हम लोगों के सज़ा बढ़ने तक श्री अशफ़ाकउल्ला खाँ की बड़ी भारी उत्कट इच्छा यही थी कि वह एक बार मुझसे मिल लेते, जो परमात्मा ने पूरी कर दी।

श्री अशफ़ाकउल्ला खाँ तो अंग्रेज़ी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया-प्रार्थना न करनी चाहिए, परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफ़ाक-उल्ला खाँ को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया।

प्रिवी काउंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया, उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्यु-दण्ड उपयुक्त नहीं, क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर डकैती डालने की जिम्मेदारी के खयाल से मृत्युदण्ड दिया गया तो चीफ कोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था, और प्रांत का नेता भी मैं ही था। अतएव मृत्युदण्ड तो अकेले मुझे ही मिलना चाहिए था। अन्य तीन को फाँसी नहीं देनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त दूसरी सजाएँ सब स्वीकार होतीं। पर ऐसा क्यों होने लगा। मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना चाहता था कि यदि कोई राजनैतिक अभियोग चले तो वे कभी भूल करके भी किसी अंग्रेज़ी अदालत का विश्वास न करें। तबियत आए तो जोरदार बयान दें। अन्यथा मेरी तो यही राय है कि

अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें। काकोरी षड्यन्त्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें। इस अभियोग में सब प्रकार के उदाहरण मौजूद हैं। प्रिवी काउंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था कि मैं कुछ समय तक फाँसी की तारीख टलवाकर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। अन्त में मैंने निश्चय किया था कि यदि हो सके, तो जेल से निकल भागूं। ऐसा हो जाने से सरकार को अन्य तीनों फाँसीवालों की सजा माफ कर देनी पड़ेगी और यदि सरकार न करती तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेक प्रयत्न किए, किन्तु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी। यहीं तो हृदय पर आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा षड्यन्त्रकारी दल खड़ा किया था, वहाँ से मुझे प्राण-रक्षा के लिए एक रिवाल्वर तक न मिल सका। एक नवयुवक भी सहायता को न आ सका। अन्त में फाँसी पा रहा हूँ। फाँसी पाने का मुझे कोई भी शोक नहीं, क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि परमात्मा को यही मंजूर था।

> यदि देशहित मरना पड़े, मुझको सहस्रों बार भी,
> तो भी न मैं इस कष्ट को, निज ध्यान में लाऊं कभी।
> हे ईश ! भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
> कारण सदा ही मृत्यु का, देशोपकारक कर्म हो।

देशवासियों से यही अन्तिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें और सब देश की भलाई के लिए करें। इसी से सबका भला होगा।

> मरते 'बिस्मिल', 'रोशन', 'लाहिड़ी', 'अशफाक' अत्याचार से।
> होंगे पैदा सैकड़ों, इनकी रुधिर की धार से।

गुलाव राय

प्रभुजी, मेरे औगुन चित न धरो

सूर और तुलसी की भाँति मैं यह तो नहीं कह सकता कि मेरे दागों को स्वयं माता शारदा भी सिंधु की दवात में काले पहाड़ की स्याही घोलकर पृथ्वी के कागज पर कल्पवृक्ष की कलम से भी नहीं लिख सकती है। इतने भारी झूठ के मोल में दैन्य खरीदने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। बात यह है कि वे लोग तो कवि थे, उनकी अतिशयोक्तियाँ भी अलंकार बन जाती हैं। 'समरथ को नहिं दोष गुसाँई'।

लेकिन बेचारे गद्य लेखक की क्या ताव जो अपने छोटे मुह इतनी बड़ी बात कह डाले। हाँ, फिर भी मुझ में अवगुण हैं और उनको मैं ही जानता हूँ। —साँप के पैर साँप को ही दीखते हैं—उनको शायद परमेश्वर भी न जानते हों, क्योंकि जहाँ तक मैंने सुना है, वे भले पुरुष हैं, पुरुषोत्तम हैं और भले आदमी दूसरे के दोषों को स्वप्न में भी नहीं देखते और यदि देखते भी हैं तो सुमेरु-से दोषों को राई बराबर। बुराई उनकी कल्पना की पहुँच से बाहर है।

ख्याति की चाह को मिल्टन ने बड़े आदमियों की अन्तिम कमजोरी कहा है, लेकिन शायद यह मेरी आदिम कमजोरी है, क्योंकि मैं छोटा आदमी हूँ। यश-लोलुपता के पीछे दुख भी काफी उठाना पड़ता है। ख्याति की चाह ही—जिसको मैं दूसरों की आँख में धूल झोंकने के लिए साहित्य-सृजन की प्रारम्भ-प्रेरणा कहूँ—मुझे इस समय जाड़े की रात में गद्दे-लिहाफ का सन्यास करा रही है। रोज कुआँ खोदकर रोज पानी पीने की उक्ति सार्थक करते हुए मुझे भी कालेज के लड़कों को पढ़ाने के लिए स्वयं भी अध्ययन करना पड़ता है। उसकी सुध-बुध भूलकर, और यम-दूत नहीं तो कम-से-कम कजूस कर्जख्वाह की भाँति प्रूफों के लिए प्रातः-काल ही अपने अवांछित दर्शन देने वाले प्रेस के भूत—कम्पोजिटर की माँग

की भी अवहेलना करके, देश के दंगों के शमन और शरणार्थियों के पाकिस्तान से निष्कासन की भाँति इस लेख को मैं चोटी की प्राथमिकता दे रहा हूँ।

आचार्य मम्मट के काव्य के उद्देश्यों में यश को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। काव्य 'यशसे' पहले और 'अर्थकृते' पीछे। किन्तु आजकल जमाना पलटने से उसका क्रम भी पलट गया है। त्रेतायुग में लड़ाइयाँ भी यश के लिए ही लड़ी जाती थीं। किन्तु आजकल विजय भी 'अर्थकृते' ही की जाती हैं। फिर भी मुझे जैसा प्राचीन-पंथी 'चील के घोंसले में मांस' की भाँति अर्थाभाव के होते हुए भी, यश-लोलुपता से पल्ला नहीं छुड़ा सका है। रेल की यात्राओं की यम-यातनाओं के कारण दूर के स्थानों की सभाओं का सभापतित्व करना छोड़ दिया है किन्तु निकट के मथुरा, अलीगढ़ आदि स्थानों को कुछ अधिक आग्रह करने पर नहीं छोड़ता। स्थानीय सभाओं में, यदि वे 'निशाचरी' वृत्तिवालों की न हों, तो गीता का काला अक्षर भैंस बराबर जानते हुए भी गीता तक पर व्याख्यान देने और अपने अल्पज्ञ श्रोताओं का साधुवाद लेने पहुँच जाता हूँ। काले अक्षर मेरे लिए भैंस बराबर ही हैं। वह मेरे लिए चन्द्र-ज्योत्स्ना-सा धवल यश और साथ ही कम-से-कम इस संसार में निरुपम, और यदि स्वर्ग तक पहुँच होती तो अमृतोपम दुग्ध-धारा का सृजन कर देते हैं। कभी-कभी भैंस की भाँति वे ठल्ल भी हो जाते हैं। दिमाग का दिवालियापन मैं सहज में स्वीकार नहीं करता और लोग करने भी नहीं देते।

यश-लोलुप होते हुए भी नेतागीरी से कुछ दूर रहा हूँ। लेखन-कार्य में तो चारपाई पर पड़े-पड़े भी यश-लाभ की जुगति लग जाती है; नेतागीरी में खैर पैदल तो नहीं मोटर-तांगों में घूमना पड़ता है। रक्तचाप के कारण तथा धनाभाव के कारण वायुयान में बैठकर देवताओं की स्पर्धा नहीं करना चाहता, मनुष्य बना रहना मेरे लिए काफी है। गला फाड़कर, कभी-कभी बिना लाउडस्पीकर के भी, व्याख्यान देना होता है, जाड़ों में भी शुद्ध खद्दर के बगुले के पंख से सफेद कुरते में ही सन्तोष करना पड़ता है और घर पर मक्खन टोस्ट खाते हुए भी बाहर पार्टियों में चना-गुड़

खाने का त्याग दिखाना होता है। खैर, अब जेल जाने की बात नहीं रही।

उदारता तो कभी-कभी छाती पर पत्थर रखकर भी कर देता हूँ, किन्तु बिना अहसान जताए नहीं रहता। जहाँ तक लक्षणा-व्यंजना के साहित्यिक साधनों की पहुँच है उन सबका प्रयोग कर लेता हूँ, फिर भी यदि कोई संकेत-ग्राही चतुर पुरुष न मिला तो यथासम्भव अभिधा से भी काम ले लेने की निर्लज्जता कर बैठता हूँ। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि मैं उपकृत का सम्मान बहुत करता हूँ। उस पर अहसान जताते हुए उसमें हीनता का भाव उत्पन्न नहीं होने देता हूँ। मुझे तुलसीदास जी की बात याद आ जाती है, 'दान मान सन्तोष'। उपकृत मुझे बड़ा बनने का अवसर देता है। उसका मैं सदा आभार मानता हूँ। अहसान जताने के लिए जब हार्दिक ग्लानि होती है तब माफी भी माँग लेता हूँ, एक जगह यह भी सुनने को मिला, 'जूता मारकर दुशाले से पोंछने से क्या लाभ ?'

जहाँ यश-प्राप्ति और धन-लाभ के साथ आलस्य का संघर्ष न हो वहाँ आलस्य शीर्ष स्थान पाता है। साधारणतया मैं बाबा मलूकदास के—

> अजगर करै न चाकरी, पछी करै न काम।
> दास मलूका कह गए, सबके दाता राम ॥

वाले अमर काव्य को अपना आदर्श वाक्य बनाना चाहता हूँ और प्रवृत्ति के कारण सन्तोषी होने का श्रेय भी पा जाता हूँ, किन्तु इस युग में बिना हाथ-पैर पीटे काम नहीं चलता।

मेरी स्वार्थपरायणता मेरे आलस्य और आरामतलबी पर सान चढ़ा देती है, फिर शारीरिक शैथिल्य ने तो आलस्य का प्रमाण-पत्र दे दिया है। मैं अपने पास-पड़ोसी या संबंधी के प्र-प्रपितामह का भी मरना नहीं चाहता। उसमें मानवता की मात्रा तो वाजिबी ही है, किन्तु उस शुभ-कामना का असली उद्देश्य यह होता है कि श्मशान तक न जाना पड़े। जहाँ स्वार्थ-साधन की बात न हो वहाँ बड़ी से बड़ी भव्य बात भी फीकी पड़ जाती है। सरल साहित्य-सेवियों की मंडली में जहाँ मुझे कुछ ज्ञान-

प्राप्ति की भी संभावना नहीं होती, मैं उन लोगों की बातों में भी रस लेने का अभिनय-सा कर देता हूँ। कभी-कभी मेरी उदासीनता प्रकट हो जाती है। मैं पक्का उपयोगितावादी हूँ किन्तु मेरा स्वार्थ मुझे सीमा से बाहर नहीं जाने देता। अपने स्वार्थ का यदि दूसरे के स्वार्थ से संघर्ष हो तो मैं दूसरे के स्वार्थ को मुख्यता देता हूँ। मैं हमेशा यह चाहता रहता हूँ कि भगवान कहीं से छप्पर फाड़ कर दे दें, किन्तु दुर्भाग्यवश मेरे मकान में कोई छप्पर नहीं है और मैं धन के लिए भी अपने मकान की छत तोड़ना नहीं चाहता। इसीलिए शायद गरीब हूँ। चुपड़ी और दो-दो की बात नहीं हो सकती।

मान-मद तो मुझ में नहीं है फिर भी बड़े आदमियों द्वारा अपमान को सहन नहीं कर सकता हूँ। गरीब आदमी द्वारा किया हुआ अपमान मैं महर्षि भृगु की लात की भाँति सहर्ष स्वीकार कर लेता हूँ क्योंकि वह बिना किसी कसक के या बिना हीनता-ग्रंथि के सहज में दूसरे का अपमान नहीं करता। क्रोध भी मैं अपने से बड़ों पर ही करता हूँ। छोटों पर दिखावटी क्रोध भी नहीं करता। द्वेष तो मैं किसी से नहीं करता—बनिया जिसका यार, उसको दुश्मन क्या दरकार ! इसका अर्थ मैं यह लगाया करता हूँ कि बनिये का इतना सद्व्यवहार होता है कि उसके और उसके मित्रों तक के कोई दुश्मन नहीं होते (जब यह कहावत बनी तब ब्लैक मार्केट नहीं थे)। हाँ, ईर्ष्या अवश्य होती है। जब दूसरे लोगों को, जो मेरे साथी थे, मोटरों पर चलता देखता हूँ और मैं स्वयं धूप निवारण करने के लिए सर पर कोट डालकर सड़क पर बिना द्रुम-छाया के भी विश्रम्य-विश्रम्य चलता हूँ तब ईर्ष्या अवश्य होती है और सोचता हूँ कि मुझे भी कुछ अधिक साहसी, उद्योगी और थोड़ा-बहुत बेईमान भी बनना चाहिए था। बनिये लोग वैसे तो फौज में जाते हैं, कप्तान और कर्नल बनते हैं और उन्होंने इस कलंक को धो डाला है कि कहा जाने वणिक-पुत्र गढ़ लेबे की बात। अब उन पर यह कलंक नहीं लगाया जाता कि 'संस्कारादवला जातिः' अथवा 'यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते' फिर भी 'आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च' में और गुणों के साथ भय मुझ में प्रचुर मात्रा में

है। इसे मैं पहले गिनता हूँ। गीता पर व्याख्यान देते हुए मै चाहे बडी डीग के साथ कह दू कि अभय को दैवी सम्पत्ति में पहला स्थान दिया गया है किन्तु यह 'पर-उपदेश कुशल' की बात है। निर्भयता की हिन्दू-मुस्लिम दगो मे काफी परीक्षा हो गई है। उन दिनो मैं घर के दुर्ग से बाहर नही निकला। सरकार मे मोर्चा लेने की बात मैंने कभी सोची भी नही क्योकि जब जेल जाने के लिए प्रभु ईसा-मसीह की भाँति ईश्वर से प्रार्थना करनी पडे कि 'या खुदा आफ्त का प्याला मुझ से टाल' तो फिर उस राह जाने से ही क्या काम ? और जिस राह नही जाता उसके पेड भी नही गिनता। पुलिस को धोखा देने मे मजा अवश्य आता है, बुद्धि के चमत्कार पर गर्व करने को भी मिलता है, किन्तु वह कम-से-कम महात्मा गाँधी के अर्थ मे बहादुरी नही कही जाती है। मुझ में न इतना साहस है और न इतना शारीरिक बल कि रात-बिरात खाई-खन्दकों मे घूमता फिरूँ और फिर जेल मे घर का-सा आराम कहा ? मैं काग्रेस जनो की बुराई करते हुए भी, गाधीजी की भाँति चार आने का मेम्बर भी न होते हुए भी, और लोगों के आग्रह करने पर भी गाधी-टोपी को पूर्णतया न अपनाने पर भी, और जेल जाने का प्रमाण-पत्र न प्राप्त करते हुए भी, काग्रेस के आदर्शों का परम भक्त हूँ। इस बात को शायद पिछली सरकार के सामने भी स्वीकार करने को तैयार था। कभी-कभी अपने मित्रो से काग्रेस के पक्ष मे लडाई भी लडनी पडती है किन्तु फिर भी निर्भयता का गुण नही अपना सका हू। जीवधारियो की शेष कमजोरियाँ भी मुझ मे उचित सीमा के भीतर वर्तमान है। अन्तिम को मेरी अवगुणो की सूची मे अन्तिम ही स्थान मिला है। उसको मैं मानसिक रूप देने का ही गुनहगार हूँ क्योकि मनोभव का उचित स्थान मन मे ही है। 'नेत्र सुख केन वार्यते' के सिद्धान्त को मै मानता हूँ। किन्तु गजे के नाखूनो की भाँति नेत्र की ज्योति भी ईश्वर की दया से मन्द ही है। नेत्रो के पाप से भी यथासभव बचा ही रहता हूँ किन्तु मानसिक दृष्टि मन्द नही हुई है। उस दिन को मैं दूर ही रखना चाहता हूँ, जब मन-मोदको से भी वचित हो जाऊँ।

आहार को पण्डितो ने पहला स्थान दिया है किन्तु मैं उसे भय के पश्चात्

दूसरा स्थान देता हूँ। आहार जीवन की आवश्यकता ही नहीं वरन् जीवन का आनन्द भी है। डाक्टरों की कृपा से कहूँ या रोगों के प्रकोप से कहूँ, आहार का आनन्द बहुत सीमित हो गया है; फिर भी नित्य ही पाचन शक्ति के अनुकूल थोड़ा-बहुत भाग मिल जाता है। काव्य से अधिक 'सद्यः परनिर्वृतिः' भोजन में मिलती है। उपवास में विश्वास रखते हुए भी मैं एकादशी व्रत तक नहीं रखता जब तक छप्पन प्रकार के व्यंजन नहीं तो कम-से-कम एकादश प्रकार के भोज्य पदार्थों के मिलने की संभावना न हो।

दोपहर का भोजन तो पेट भर कर लेता हूँ, उसमें तो मैं अपने नव-युवक बन्धुओं से बाजी ले जाता हूँ; सायंकाल को मैं आधे पेट ही सोता हूँ, गरीब भारत की आधे पेट सोने वाली जनता की सहानुभूति में नहीं, और न अर्थाभाव से, किन्तु आटे में वर्तमान शक्कर की मात्रा के पचाने वाले पैंक्रियस के रस के अभाव के कारण। उस अभाव की पूर्ति मैं इन्सू-लिन के इंजेक्शनों से कर लेता हूँ। अन्धकार की भाँति मेरा शरीर भी सूची-भेद्य है और जैसा मैंने अन्यत्र लिखा है, मेरे शरीर में जितनी सूइयाँ लग चुकी हैं उतने बाण भीष्म पितामह की शर-शय्या में भी न होंगे।

मिष्टान्न का मैं यथासम्भव सन्यास करता हूँ किन्तु दूध के साथ शर्करा का वियोग कराना पाप समझता हूँ। शरीर और शक्कर के जोड़े में एक का विच्छेदन करने से मुझे क्रौंच-मिथुन की बात याद आ जाती है और भय लगता है। कोई वाल्मीकि जैसे करुणार्द्र हृदय ऋषि मुझे भी शाप न दे दें कि कि 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः'। लेकिन शक्कर इतनी ही डालता हूँ जितना दाल में नमक डाला जाता है या किसी आजकल के सभ्य समाज में बिना आत्म-सम्मान खोए कोई झूठ बोल सकता है। मिठाई मैं मोल लेकर बहुत कम खाता हूँ क्योंकि मैं आफत मोल नहीं लेता। अच्छे भोजन का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। मैं किसी के निमन्त्रण का तिरस्कार नहीं करता। किन्तु मर्यादा का ध्यान अवश्य रखता हूँ। फिर भी रोगमुक्त नहीं हो पाता हूँ क्योंकि डाक्टरों की बाँधी हुई सौमित्र-रेखा का मान करने में असमर्थ हूँ। दावतों में जाकर

अपनी अन्तरात्मा को धोखा देने के लिए 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडित.' के न्याय से अपने पास बैठने वाले सज्जन को मिठाई का अर्धांश समर्पित कर देता हूँ किन्तु क्या रखू या क्या दू के निर्णय का भार मैं अपने ऊपर ही रखता हूँ। 'पराम्न प्राप्य दुर्बुद्धे! मा शरीरे दया कुरु' के सिद्धान्त को मैं भूल जाने का प्रयत्न करता हूँ और इसी से मैं बचा हुआ हूँ।

जब मैं न बातें करता हूँ और न पढ़ता हूँ तब सोना ही चाहता हूँ। इसीलिए मैंने अपने ठलुआ-क्लब का समर्पण सुख-दुःख की अपनी चिर-संगिनी परम प्रेयसी शय्या-देवी को किया है। रियासत मे रहकर मुझ मे दो ही विलासिताएँ आई हैं, एक दिन मे सोने की और दूसरी धूप मे न चलने की। धूप निवारण के लोभ से ही मैं काग्रेस के राज्य मे भी कोट को इसी तरह साथ रखता हूँ जिस तरह बन्दर अपने मरे हुए बच्चे को। रात को सोने ही के प्रेम के कारण मैं सिनेमा, ताश खेलने आदि के दुर्व्यसनों से बचा हुआ हूँ। मैं उन लोगो मे से नही हूँ जो रात भर जागकर 'या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी' की भगवान कृष्ण की उक्ति को सार्थक करते हैं।

लोग मुझ धार्मिक समझने की मूर्खता करते हैं और बडी श्रद्धा से धर्म-चर्चा करते है। मै यथासभव उनका स्वप्न-भग नही करता। ऐसे श्रद्धालु लोगो को सन्तुष्ट करना कठिन नही होता है। धार्मिकता की विडबना किए बिना मै उनकी बातो का यथामति उत्तर देता हूँ। उत्तर देकर यदि दाताओ की सूची मे मेरा नाम आ जाए तो 'वचने का दरिद्रता'।

मैं अधार्मिक या अत्याचारी नही हूँ। मैं गोस्वामी तुलसीदास के इन वचनो मे कि 'परहित सरिस धर्म नही भाई, पर-पीडन सम नही अधमाई' सवा सोलह आना विश्वास करता हूँ, पर इतना धर्म-भीरु भी नही जो पाप के नाम से डरूँ। झूठ भी, जैसे ईद-बकरीद पर जुलाहा पान खा लेता है, मैं बोल ही लेता हूँ, अर्थलाभ के लिए तो नही किन्तु मान-मर्यादा की रक्षा के लिए। कभी बेबस होकर बिना टिकट के रेल मे सफर भी कर लेता हूँ किन्तु उसका पश्चात्ताप नही होता। पकडा न जाऊँ तो उस बेबसी के किए हुए पाप को सहज मे भूल जाता हूँ किन्तु ताँगे वाले को

कम पैसे देने में अवश्य दुःख होता है।

चोरी मैं बड़ी चीज की तो नहीं करता, किन्तु छोटी चीज को कभी-कभी कर लेता हूं। वह पाप भी चीज की पसन्द पर न्यौछावर कर देता हूं। कभी-कभी अच्छी पुस्तकें, जिनकी गिनती एक हाथ की अँगुलियों पर की जा सकती है, मैंने चुरा ली हैं; वह उनके यहां से जिनके यहां से आतिथ्य स्वीकार किया है। उनमें एक कोष महोदय का संस्कृत ड्रामा है। उसे भी मुझ-सा सहृदय मुझसे मांगकर लौटाना भूल गया है। अपरिग्रह अर्थात् त्याग उतना से ज्यादा नहीं करता हूं। मैं दुनिया में और लोगों की भांति आराम चाहता हूं, कुछ-कुछ वैभव भी, किन्तु दूसरों को सताकर नहीं। जिस तरह लोग कला का कला के लिए अनुशीलन नहीं करते हैं वैसे ही मैं धन के लिए धन का अनुशीलन नहीं करता, फिर भी धन के लोभ-लालच से मैं परे नहीं हूं। धन मेरे लिए साधन है, साध्य नहीं।

इन सब अवगुणों के होते हुए भी मैं परेशान नहीं हूं। जब तक कोई आफत सर पर न आ जाए मैं भगवान से भी दया की भिक्षा नहीं मांगता। किसी दूसरे से भी मांगने में मुझे लज्जा नहीं आती किन्तु मैं मनुष्य के एक बार नहीं करने पर या मौन हो जाने पर दुबारा नहीं मुंह खोलता। मैं पूजा-पाठ सौंदर्योपासना के रूप में मन को खुश करने के लिए भोजनों की प्रतीक्षा में कर लेता हूं। लोग कहते हैं, 'भूखे भजन न होइ गुपाला' किन्तु मैं भूख में ही भजन करता हूं। मुझे धूप की गन्ध बड़ी अच्छी लगती है। बिना मन्त्रों के ही कभी-कभी हवन कर लेता हूं। भक्ति-भावना से नहीं, वरन् नाद-सौंदर्य के कारण कभी देवताओं के स्तोत्र पढ़ लेता हूं।

और कुछ न लिख सकने के कारण मानसिक दरिद्रता की आत्मग्लानि निवारण करने के लिए मैंने ये आत्मस्वीकृतियां लिख दी हैं नहीं तो अपना मरम न खोलता। बौद्धों में तथा रोमन कैथोलिकों में पापों की आत्म-स्वीकृति विधिवत् की जाती है और उसकी गणना पुण्य कार्यों में होती है। मुझे मालूम नहीं कि इस पुण्य का क्या फल मिलेगा। इतना ही बहुत है कि इस आत्मस्वीकृति में जितना आत्म विज्ञापन है उसे जनता उदारता-पूर्वक क्षमा कर दे।

चन्द्रोदय

अँधेरा पाख बीता, उजेला पाख आया। पश्चिम की ओर सूर्य डूबा और वशाकार हँसिया की तरह चन्द्रमा उसी दिशा मे दिखाई पडा। मानो कर्कशा के समान पश्चिम दिशा सूर्य के प्रचण्ड ताप से दु खी हो क्रोध मे इसी हँसिया को लेकर दौड रही है और सूर्य भयभीत हो पाताल मे छिपने के लिए जा रहा है। अब तो पश्चिम की ओर आकाश सर्वत्र रक्त-मय हो गया। क्या सचमुच ही इस कर्कशा ने सूर्य का काम तमाम किया, जिससे रक्त बह निकला? अथवा सूर्य भी क्रुद्ध हुआ, जिससे उसका चेहरा तमतमा गया और उसी की यह रक्त आभा है? इस्लाम धर्म के मानने वाले नये चन्द्र की बहुत बडी इज्जत करते हैं, सो क्यो? मालूम होता है, इसीलिए कि दिन-दिन क्षीण होकर नाश को प्राप्त होता हुआ चन्द्रमा मानो सबक देता है कि रमज़ान मे अपने शरीर को इतना सुखाओ कि वह नष्ट हो जाय, तब देखो कि उत्तरोत्तर कैसी वृद्धि होती है अथवा यह कामरूपी श्रोत्रिय ब्राह्मण के नित्य जपने का ओंकार महामन्त्र है, या अन्धकार महागज के हटाने का अँकुश है, या विरहिणियों के प्राण कतरने की कैंची है, अथवा शृगार रस से पूर्ण पिटारे के खोलने की कुजी है या तारा-मौक्तिको से गुथे हार के बीच का यह सुमेरु है; अथवा जगम जगत् मात्र को डसने वाले अनग-भुजग के फन पर यह चमकता हुआ मणि है, या निशानायिका के चेहरे की मुस्कराहट है; अथवा जगज्जेता कामदेव की धन्वा है; या तारा-मोतियो की दो सीपियों मे से एक सीपी है।

इसी प्रकार दूज से बढते-बढते यह चन्द्र पूर्णता को पहुँचा। यह पूनो का पूरा चाँद किसके मन को न भाता होगा? यह गोल-गोल प्रकाश का पिड देख भाँति-भाँति की कल्पनाएँ मन मे उदय होती हैं कि यह निशा-अभिसारिका के मुख देखने की आरसी है या उसके कान का कुण्डल

अथवा फूल है; या रजनी-रमणी के लिलार पर बुक्के का सफेद तिलक है, अथवा स्वच्छ नीले आकाश में यह चन्द्र मानो त्रिनेत्र शिव की जटा में चमकता हुआ कुन्द के सफेद फूलों का गुच्छा है। काम-वल्लभा रति की अटा में कूजता हुआ यह कबूतर है; अथवा आकाश रूपी बाजार में तारा-रूपी मोतियों का बेचने वाला सौदागर है। कुई की कलियों को विकसित करते, मृगनयनियों के मान को समूल उन्मीलित करते, छिटकी हुई चांदनी से सब दिशाओं को धवलित करते, अंधकार को निगलते चन्द्रमा सीढ़ी-दर-सीढ़ी शिखर के समान आकाश-रूपी विशाल पर्वत के मध्य भाग में चढ़ा चला आ रहा है। क्षपा-तमस्कांड का हटाने वाला यह चन्द्रमा ऐसा मालूम होता है, मानो आकाश महासरोवर में श्वेत कमल खिल रहा है, जिसमें बीच-बीच में जो कलंक की कालिमा है, सो मानो भौंरे गूंज रहे हैं। अथवा सौंदर्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी के स्नान करने की यह बावड़ी है; या कामदेव की कामिनी रति का यह चूना-पोता धवल-गृह है; या आकाश गंगा के तट पर विहार करने वाला हंस है, जो सोती हुई कुईंयों के जगाने को दूत बनकर आया है; या देवनदी आकाश गंगा का पुण्डरीक है; यह चाँदनी का अमृत-कुण्ड है; अथवा आकाश में जो तारे दीख पड़ते हैं वे सब गौएँ हैं और उनके झुण्ड में यह सफेद बैल है; यह हीरे से जड़ा हुआ पूर्व दिगंगना का कर्णफूल है; या कामदेव के बाणों को चोखा करने के लिए सान धरने का सफेद गोल पत्थर है; या संध्या-नायिका के खेलने का गेंद है। इसके उदय से पहले सूर्यास्त की किरणों से एक ओर जो ललाई छा गई है, सो मानो फागुन में इस रसिया चन्द्र ने दिगंगनाओं के साथ फाग खेलने में अबीर उड़ाई है, वही सब ओर आकाश में छाई हुई है। अथवा निशा-योगिनी ने तारा-प्रसून-समूह से कामदेव की पूजा कर यावत् कामीजनों को अपने वश में करने के लिए छिटकी हुई चांदनी के बहाने वशीकरण बुक्का उड़ाया है; अथवा स्वच्छ नीले जल से भरे आकाश-हौदा में काल महागणक ने रात के नापने को एक घण्टी-यंत्र छोड़ रखा है; अथवा जगद्विजयी राजा कामदेव का यह श्वेत छत्र है; वियोगी-मात्र को कामाग्नि में झुलसाने को यह दिनमणि है; कंदर्प-सीमंतिनी रति-

देवी की छप्पेदार करधनी का टिकडा है, या उसी मे जडा चमकता हुआ सफेद हीरा है; या सब कारीगरो के सिरताज की बनाई हुई चरखियो का यह एक नमूना है, अथवा महापथगामी समय-राज के रथ की सूर्य और चन्द्रमा-रूपी दो पहियो मे से यह एक पहिया है, जो चलते-चलते घिस गई है, इसी से बीच मे कलाई देख पडती है, अथवा लोगो की आँख और मन की तरावट और शीतलता पहुँचाने वाला यह बडा भारी बर्फ का कुण्ड है, इसी से वेदो ने परमेश्वर के विराट्-वैभव के वर्णन मे चन्द्रमा को मन और नेत्र माना है; या काल-खिलाडी के खेलने का सफेद गेंद है, समुद्र के नीले पानी मे गिरने से सूखने पर भी जिसमे कही-कही नीलिमा बाकी रह गई है; या तारे रूपी मोतीचूर के दोनो का यह बड़ा भारी पसेरा लड्डू है, अथवा लोगो के शुभाशुभ काम का लेखा लिखने के लिए यह बिल्लौर की गोल दवात है; या खडिया मिट्टी का बडा भारी ढोका है, या काल-खिलाडी की जेबी घडी का डायल है; या रजत का कुण्ड है या आकाश के नीले गुम्बज मे वह सगमरमर का शिखर है। शिशिर और हेमत मे हिम से जो इसकी द्युति दब जाती है, सो मानो यह तपस्या कर रहा है, जिसका यह फल चित्रा के सयोग से शोभित हो चैत की पूनो के दिन पावेगा, जब इसकी द्युति फिर दामिनी-सी दमकेगी। इसी से कवि कुलगुरु कालिदास ने कहा है—

हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।

फणीश्वरनाथ 'रेणु'

रिटर्न टाइफ

अस्पताल में दाखिल होते ही आपका नाम बदल जाता है। आप अपना नाम खोकर किसी नंबर के नाम से मशहूर हो जाते हैं। बैड नं० ५ को 'सीपी डायट' चलेगा, नं० ३ को एनिमा देना है, नं० १२ का 'ब्लड' लेना है। नं० ६ को 'बैकरेस्ट' लगा दो।

मां-बाप का दिया हुआ राशि-चक्र का और भृगुसंहिता द्वारा प्रमाणित आपका नाम अथवा आपका प्यारा साहित्यिक नाम-उपनाम यहां नहीं चलेगा।

मैं बैड नं० १ था। लगातार चौदह महीने तक अस्पताल में पड़े रहने के कारण मेरा यह नाम परमानेंट-सा हो गया था। आज भी कभी किसी काम से अस्पताल जाता हूँ, तो वार्ड कुली हँसकर सलाम करके कहता है —बहुत दिनों के बाद इधर आना हुआ एक नंबर बाबू!

और जब-जब अस्पताल जाता हूँ मुझे बैड नं० ४ की याद आ जाती है। दीवाल पर अंकित अक्षर को ध्यान से देखता हूँ—बैड नं० ४।

चौदह महीने में बहुत-से रोगी आए, अपना नाम खोकर किसी बैड नंबर से पुकारे गए। आराम होकर घर गए अथवा...। बैड नं० ४ पर भी बहुत-से रोगी आए, आकर चले गए। लेकिन उस बार चार नंबर बैड पर एक ऐसा रोगी आकर याद छोड़ गया—जिसे अभी तक भूल नहीं सका हूँ।

आउटडोर से स्ट्रेचर पर लेटकर आया, कुलियों ने बैड पर लिटा दिया और वार्ड नर्स ने बुखार जांचकर ६८॥ पर एक गोल बिंदी लगा दी। ६८॥ एक स्वस्थ शरीर का तापमान!

वार्ड में दाखिल होते ही नए रोगियों की चीख पुकार तेज हो जाती है, रोना-धोना बढ़ जाता है। नए वातावरण की प्रतिक्रिया बहुत तेजी से

होती है। बुखार तेज हो जाता है, दिल की धड़कन बढ़ जाती है और आँखों की रोशनी कुछ ऐसी हो जाती है कि हर आदमी की सूरत भयावनी मालूम पड़ती है। यह अवस्था प्रायः चौबीस घंटे तक रहती है। अस्पताल की भयावनी रातों में कभी पूर्णिमा का चाँद नहीं आता। बारहो महीने-तीसो रात अमावस्या की अँधियारी छायी रहती है।

दिन के उजाले में जब वार्ड का कोई नंबर मरता है, उसके रोने वाले सगे-संबंधियों को वार्ड के डॉक्टर से लेकर कुली तक डाँटकर चुप कर देते हैं, 'बाहर जाकर रोना-पीटना करो।' 'हल्ला नहीं।' 'ऐ बूढ़ी, छाती क्यों पीटती है जोर-जोर से!'

किन्तु रात में तो सारे अस्पताल में मरने वालों की संख्या का अनुमान बेड पर पड़े-पड़े ही लगाया जा सकता है। यह आवाज बेबी वार्ड की ओर से आ रही है। किसी का फूल जैसा सुकुमार बच्चा चल बसा। माँ छाती पीट-पीट कर रो रही है, 'तोता रे तोता! लाल-लाल होठ तेरे काले क्यों पड़ गए रे—बेटा आ-आ-आ। अरे कोई मेरे तोते को पकड़कर ला दे रे दैवा-आ-आ!!' दाहिनी ओर टी०बी० वार्ड में भी रोना-पीटना चल रहा है—खून की कै करता हुआ कोई जर्जर शरीर ठण्डा हो गया। —अच्छा हुआ, आखिर आदमी खून की कै करता हुआ कब तक जिन्दा रहने की कोशिश करेगा?

और यह पतली तीखी आवाज विमेन्स हास्पिटल से आ रही है। लेबर रूम में ही प्रसव पीड़ा से छटपटाती हुई कोई होने वाली माँ मर गई, शायद.....।

ऐसी मनहूस रातें जिसने करवट लेकर काट दी—बस समझिए कि उसका दिल मजबूत हो गया। सुबह को उसकी हालत नॉर्मल हो जाएगी। और तभी रोग का निदान भी सही हो सकता है, इलाज भी कारगर साबित हो सकता है।

लेकिन बेड नंबर ४ को लाकर आउट डोर के कुलियों ने जिस तरह लिटा दिया—लेटा रहा। न रोया, न चिल्लाया। कराहने की आवाज भी नहीं सुनाई पड़ी उसकी।

उसके आने से वार्ड में कोई हड़कंप भी नहीं मचा।... कभी-कभी किसी रोगी के आते ही वार्ड में बड़ी सरगर्मी शुरू हो जाती है। सगे-संबंधी बार-बार ड्यूटी रूम से नर्स और डाक्टरों को बुला ले जाते हैं। नर्स की चाल तेज हो जाती है—खुट-खुट-खुट-खुट ! डॉक्टर की आवाज गंभीर हो जाती, 'सिस्टर ! आइस-कैप .... कोरामिन।'

रोगी के संबंधी, डाक्टर से हर पांच मिनट के बाद जाकर पूछते हैं, 'डॉक्टर साहब, एक बार बड़े डॉक्टर को काल दिया जाए ....?'

रोगी के दूसरे आदमी—वार्ड के मेहतरों और कुलियों को धमकी देते हैं, 'पेशाबदानी साफ करके जल्दी दे जाओ.... यह मत समझो कि ऐसे-वैसे आदमी का रोगी है। ननकेसर बाबू को नहीं जानते ? मिनिस्टर साहब के साले का अपना भतीजा है। सो समझ लो।'

वार्ड कुली बड़बड़ाता है, 'हां भाई, राज ही तुम लोगों का है।'

कभी-कभी उत्पात मचाने वाले रोगी आते हैं। आते ही सबसे पहले पलंग की टूटी हुई स्प्रिंग की शिकायत करते हैं, तुरन्त 'स्पंजिंग' मांगते हैं, गर्म पानी का थैला उठाकर फेंकते हैं—'एक दम ठंडा है। सिस्टर ! यह गर्म पानी का थैला है ? जरा छूकर देखिए; एकदम बर्फ की तरह ठंडा है।'

नर्स 'हॉट वाटर बैग' को छूकर देखती है, 'और कितना गर्म चाहते हैं आप ?'

इसके बाद रोगी और उसके साथ आए हुए दोस्त न जाने क्यों हँस पड़ते हैं एक साथ। और नर्स ड्यूटी रूम में जाकर दूसरी नर्सों से कहती है, 'अरी प्रमिला ! सोलह नंबर पर एक 'पार्टी-पेशेंट' आया है।... बड़ा क़ानून बघार रहा है ! होशियार रहना—।' दूसरी नर्स जवाब देती है, 'ये पार्टी वाले रोगी बड़े उत्पाती होते हैं, लेकिन किताबें बड़ी अच्छी-अच्छी लाते हैं साथ में। फिलमफेयर.....।'

बैड नंबर चार ने ऐसा कोई उत्पात नहीं किया। उसने डाक्टरों को परेशान नहीं किया, नर्सों को सरपट नहीं दौड़ाया और न वार्ड के कुलियों को काल बुक लेकर बड़े डाक्टर के पास भिजवाया। ९८।। डिग्री बुखार

अपने टैंपरेचर चार्ट पर लेटा रहा—लाल रेखा से नीचे एक काली बिंदी ।।

मैं अपना टैंपरेचर चार्ट खोलकर कभी-कभी देखता था । मिस दास हाथ से नापती थी, मानो कपड़ा नाप रही हो, 'बाप रे साढ़े नौ हाथ । .जन्म-पत्तरी है यह तो ।"

बैड नंबर ११ का टैंपरेचर चार्ट देखकर कोई भी कह सकता है—हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियों का रेखांकन है । बैड नंबर २ के टैंपरेचर चार्ट और किसी विदेशी संगीत की सिंफनी में क्या अन्तर है ? किसी सिंफनी आर्केस्ट्रा का कंडक्टर—इस कंपोजीशन को सामने रखकर—फर्स्ट वायलिन ग्रुप से कहेगा—मोस्ट टेंडर नोट ... ।

लाल रेखा पर तीन काली बिंदियाँ—फिर रेखा से नीचे एक बिंदी । फिर लाल रेखा से ऊपर दो बिंदियाँ ! !

बैड नंबर चार के टैंपरेचर चार्ट पर सिर्फ एक काली बिंदी पड़ी हुई है । लाल रेखा से नीचे एक पड़ी हुई बिंदी को देखकर जरा भी चंचल नहीं होती कभी—नॉट सिरियस !

चार घंटे के बाद, डाइरेक्शन बुक हाथ में लेकर वार्ड नर्स कोई टेबलेट बाँटने आई । टेबलेट बँटने के समय, नर्स की पगध्वनि छंद और ताल से बंधी हुई सुनाई पड़ती है—खुट-खुट-खुट-खुट, बैड नंबर दो. . ,मुंह खोलो ... आँ करो. . . . ,निगल जाओ ठीक है. . . ,खुट-खुट-खुट-खुट, बैड नंबर तीन. . मुंह खोलो बारी-बारी से एक-एक रोगी का मुंह खुलवाती है—मुंह खोलो । रोगी चित्त लेटा हुआ चिड़िया की तरह मुंह खोल देता है । मिस साहिबा, मुंह में टेबलेट देकर छोटे गिलास से एक घूंट पानी डाल देती है—निगल जाओ । फिर ठीक है—के बाद —खुट-खुट-खुट-खुट !

छंद-भंग हुआ. . .बैड नंबर चार : 'अजी ओ . . उठो । मुंह खोलो. . . . .बैड नंबर चार !'

बैड नंबर चार न हिला, न डुला । चुपचाप लेटा रहा । मिस साहिबा विरक्त हुई ।. . . . .ललाट पर रेखाएँ खिंच आती हैं जब इस नर्स के . . . बड़ी भली दिखाई पड़ती है. . .'अरे ओ सोने वाले' ।

मिस साहिबा ने टेंपरेचर पर नजर डाली—नार्मल तो है बुखार !

फिर उसने बेड नंबर चार के मुंह पर से कपड़ा हटा दिया, 'घोड़ा बेचकर सोया है ।' मिस साहिबा ने पलंग-पांव में अपनी जूती की ठोकर दी—'बेड नंबर चार ।'

और अन्त में उसने कलाई पकड़ी । छूते ही न जाने क्यों, नर्स के ललाट पर खिंची हुई रेखाएँ बिला गईं. . . . । उसने नाक के पास हाथ रखकर परीक्षा की, छाती पर तलहथी डालकर देखा—'अरे, एक्सपायर्ड ?'

खुट-खुट-खुट-खुट-खुट-खुट. . . .मिस साहिबा ड्यूटी रूम की ओर तेजी से दौड़ी. . .'अरे बाबू लाल, ओ० डी० आफिस जाते हैं ? जरा एक स्लिप लेते आओ । बेड नंबर चार एक्सपायर्ड कर गया । . . . . .अभी नहीं सर्टिफाई करेंगे तो फिर चार घंटे लग जाएँगे. . . . . ।'

ऑफिसर ऑन ड्यूटी—ओ०डी० आए । स्टेथस्कोप की थुथनी को छाती से लगाया । फिर कान से निकेल के 'एयरपीस' को निकालते हुए, नर्स की किताब पर कुछ लिख दिया ।

बेड नंबर चार—एक्सपायर्ड । मर गया चार नंबर । यह सिर्फ मर गया । किसी का सुहाग नहीं लुटा और न किसी की आँख का तारा ही टूटा । उसके मरने के बाद किसी प्रकार के सामूहिक रुदन का भी कोई आयोजन नहीं हुआ । वह सिर्फ मर गया । . . . . . .सिर्फ मरने में अंतर है ।

अस्पताल के नियमानुसार उसका 'बेड-हेड-टिकट' और 'टेंपरेचर चार्ट' बना दिया गया था । उसने अपनी ओर से कोई प्रार्थना नहीं की थी । न दवा के लिए रोया-रिरियाया, न ही फल के लिए वार्ड कुली से झगड़ा, न दूध का गिलास बढ़ाते हुए बोला—जरा लगा के देना, बाबू-लाल भाई । और न मेम साहब से पलंग के खटमलों की शिकायत की । . . . . . .ठंडे होते हुए 'हॉटवाटर बैग' की तरह धीरे-धीरे वह ठंडा हो गया ।

अस्पताल में दाखिल हुआ—इन-डोर रोगियों के रजिस्टर के एक कोष्ठ को भरने के लिए एक बूंद रोशनाई खर्च हुई । वार्ड में आया—टेंपरेचर

चार्ट पर रोशनाई की दूसरी बूद खर्च हुई। वह मर गया, मरे हुए रोगियो के रजिस्टर की खानापूरी मे तीसरी बूद. ।

बर्फघर के कुलियो का जत्था आया—"मिम साहब ! लीजिए 'साइन' कर दीजिए कागज पर जल्दी से । बडे साहब बैठे हैं । इम्तहान चल रहा है।'

दूसरे ने कहा—'बहुत मार्के से जाता 'डैडबौडी' मिल गया। क्यो नदू ?'

स्ट्रेचर को उठाते हुए नदू नाम के कुली ने रसिकता की—चल भैया कदम-कदम बढाके । हटो भाई, ज़रा निकलने दो—'सैकड पार्ट' के बाबू लोगो का 'कोसचैन' जा रहा है।

एक मेडिकल स्टूडैंट हडबडाता हुआ आया और वार्ड नर्स से पूछने लगा, 'मिस दास । .प्लीज । बैड नबर चार का 'बैड-हैड टिकट' ज़रा दिखाइएगा .क्या केस था, कह सकती हैं ?' नर्स मिस दास अपनी मुस्कराहट को रोककर बैड-हैड-टिकट और टैंपरेचर चार्ट निकालने लगी।. ..तीन-चार और परीक्षार्थी आए । कम से कम केस की हिस्ट्री मिल जाए तो समझो पोस्टमार्टम मे.. ।

मैडिकल स्टुडैंटो ने 'बैड-हैड-टिकट' को इधर-उधर उलटा कर देखा —रोगी के नाम की जगह लिखा था—एक रोगी—अचैतन्यावस्था मे । पता—लावारिस ! टैंपरेचर चार्ट पर, लाल रेखा के नीचे एक काली बिंदी पडी हुई थी।

सभी ने एक साथ हँसकर कहा, 'धत्तेरी की जय हो।'

खुट-खुट-खुट-खुट । मिस साहिबा मुस्कराकर मिक्चर बाँटने चली ।

और मैंने करवट लेकर दीवाल पर अकित अपने नबर को देखा, बैड-हैड-टिकट मेरा काफी मोटा हो गया है—पचासो किस्म की रिपोर्ट . ।

तकिये पर अनजाने ही दो बूद आँख का पानी गिर गया . बेवजह, बेकार, जिसका कोई अर्थ नही ।

रामवृक्ष बेनीपुरी

गेहूँ बनाम गुलाब

गेहूँ हम खाते हैं, गुलाब सूंघते हैं। एक से शरीर की पुष्टि होती है, दूसरे से हमारा मानस तृप्त होता है।

गेहूँ बड़ा या गुलाब? हम क्या चाहते हैं—पुष्ट शरीर या तृप्त मानस? या पुष्ट शरीर पर तृप्त मानस!

जब मानव पृथ्वी पर आया, भूख लेकर आया। क्षुधा, क्षुधा; पिपासा, पिपासा। क्या खाये, क्या पीये? माँ के स्तनों को निचोड़ा; वृक्षों को झकझोरा; कीटपतंग, पशु-पक्षी—कुछ न छूट पाये उससे!

गेहूँ—उसकी भूख का काफला आज गेहूँ पर टूट पड़ा है। गेहूँ उपजाओ, *गेहूँ उपजाओ!*

मैदान जोते जा रहे हैं, बाग उजाड़े जा रहे हैं—गेहूँ के लिए!

बेचारा गुलाब—भरी जवानी में कहीं सिसकियाँ ले रहा है! शरीर की आवश्यकता ने मानसिक वृत्तियों को कहीं कोने में डाल रखा है, दबा रखा है।

किन्तु, चाहे कच्चा चरे, या पका कर खाये—गेहूँ तक पशु और मानव में क्या अन्तर? मानव को मानव बनाया गुलाब ने! मानव, मानव तब बना, जब उसने शरीर की आवश्यकताओं पर मानसिक वृत्तियों को तरजीह दी!

यह नहीं; जब उसके पेट में भूख खाँव-खाँव कर रही थी, तब भी उसकी आँखें गुलाब पर टँगी थीं, टँकी थीं।

उसका प्रथम संगीत निकला, जब उसकी कामिनियाँ गेहूँ को ऊखल और चक्की में कूट-पीस रही थी। पशुओं को मारकर-खाकर ही वह तृप्त नहीं हुआ; उनकी खाल का बनाया ढोल और उनकी सींग की बनायी तुरही। मछली मारने के लिए जब वह अपनी नाव में पतवार का पंख

लगाकर जल पर उडा जा रहा था, तब उसके छप-छप मे उसने ताल पाये, तराने छेडे ! बाँस मे उसने लाठी ही नही बनायी, वशी भी बजायी !

रात का काला घुप्प पर्दा दूर हुआ, तब वह उच्छ्वसित हुआ सिर्फ इसलिए नही कि अब पेट-पूजा की समिधा जुटाने मे उसे सहूलियत मिलेगी, बल्कि वह आनन्द-विभोर हुआ ऊषा की लालिमा से, उगते सूरज की शनै-शनै प्रस्फुटित होने वाली सुनहली किरणो से, पृथ्वी पर चमचम करते लक्ष-लक्ष ओस-कणो से ! आसमान मे जब बादल उमडे, तब उसमे अपनी कृषि का आरोप करके ही वह प्रसन्न नही हुआ, उसके सौन्दर्य-बोध ने उसके मन-मोर को नाच उठने के लिए लाचार किया—इन्द्रधनुष ने उसके हृदय को भी इन्द्र-धुनुषी रगो मे रँग दिया !

मानव शरीर मे पेट का स्थान नीचे है, हृदय का ऊपर और मस्तिष्क का सबसे ऊपर ! पशुओ की तरह उसका पेट और मानस समानान्तर रेखा मे नही है! जिस दिन वह सीधे तनकर खडा हुआ, मानस ने उसके पेट पर विजय की घोषणा की !

गेहूँ की आवश्यकता उसे है; किन्तु उसकी चेष्टा रही है गेहूँ पर विजय प्राप्त करने की ! प्राचीनकाल से उपवास, व्रत, तपस्या आदि उसी चेष्टा के भिन्न-भिन्न रूप रहे हैं !

जब तक मानव के जीवन मे गेहूँ और गुलाब का सन्तुलन रहा, वह सुखी रहा, सानन्द रहा !

वह कमाता हुआ गाता था और गाता हुआ कमाता था । उसके श्रम के साथ सगीत बँधा हुआ था और सगीत के साथ श्रम ।

उसका साँवला दिन मे गायें चराता था, रात मे रास रचाता था ।

पृथ्वी पर चलता हुआ, वह आकाश को नही भूला था और जब आकाश पर उसकी नजरे गडी थी, उसे याद था कि उसके पैर मिट्टी पर हैं !

किन्तु धीरे-धीरे वह सन्तुलन टूटा ।

अब गेहूँ प्रतीक बन गया हड्डी तोडने वाले, थकाने वाले, उबाने वाले, नारकीय यत्रणाएँ देने वाले श्रम का—उस श्रम का, जो पेट की क्षुधा भी अच्छी तरह शान्त न कर सके !

और गुलाब बन गया प्रतीक विलासिता-भ्रष्टाचार का, गन्दगी और गलीज़ का ! वह विलासिता —जो शरीर को नष्ट करती है और मानस को भी !

अब उसके साँवले ने हाथ में शंख और चक्र लिए। नतीजा—महाभारत और यदुवंशियों का सर्वनाश !

वह परम्परा चली आ रही है। आज चारों ओर महाभारत है, गृह-युद्ध है—सर्वनाश है, महानाश है !

गेहूँ सिर धुन रहा है खेतों में, गुलाब रो रहा है बगीचों में—दोनों अपने-अपने पालनकर्ताओं के भाग्य पर, दुर्भाग्य पर......!

× × ×

चलो, पीछे मुड़ो। गेहूँ और गुलाब में हम फिर एक बार सन्तुलन स्थापित करें !

किन्तु मानव क्या पीछे मुड़ा है, मुड़ सकता है ?

यह महायात्री आगे बढ़ता रहा है, आगे बढ़ता रहेगा।

और क्या नवीन सन्तुलन चिर-स्थायी हो सकेगा ? क्या इतिहास फिर दुहराकर नहीं रहेगा ?

नहीं, मानव को पीछे मोड़ने की चेष्टा न करो।

अब गुलाब और गेहूँ में फिर सन्तुलन लाने की चेष्टा में सिर खपाने की आवश्यकता नहीं।

अब गुलाब गेहूँ पर विजय प्राप्त करे।

गेहूँ पर गुलाब की विजय—चिर-विजय ! अब नये मानव की यह नई आकांक्षा हो।

क्या यह सम्भव है ?

बिल्कुल, सोलह आने सम्भव है।

विज्ञान ने बता दिया है—यह गेहूँ क्या है ? और उसने यह भी जता दिया है कि मानव में यह चिर-बुभुक्षा क्यों है।

गेहूँ का गेहूँत्व क्या है, हम जान गये है । यह गेहूँत्व उसमे आता कहाँ से है, हम से यह भी छिपा नही है !

पृथ्वी और आकाश मे कुछ तत्त्व एक विशेष प्रक्रिया से पौधो की बालियो मे सग्रहीत होकर गेहूँ बन जाते है । उन्ही तत्त्वो की कमी हमारे शरीर मे भूख नाम पाती है !

क्यो पृथ्वी की जुताई, कुडाई, गुडाई ! क्यो आकाश की दुहाई ! हम पृथ्वी और आकाश मे उन तत्त्वो को सीधे क्यो न ग्रहण करे ?

यह तो अनहोनी बात—उटोपिया, उटोपिया !

हाँ, यह अनहोनी बात, उटोपिया तब तक बनी रहेगी जब तक विज्ञान सहार-काड के लिए ही आकाश-पाताल एक करता रहेगा । ज्योही उसने जीवन की समस्याओ पर ध्यान दिया, यह हस्तामलकवत् सिद्ध होकर रहेगी !

और विज्ञान को इस ओर आना है, नही तो मानव का क्या, सारे ब्रह्माण्ड का सहार निश्चित है !

विज्ञान धीरे-धीरे इस ओर कदम बढा भी रहा है !

कम से कम इतना तो वह तुरत कर ही देगा कि गेहूँ इतना पैदा हो कि जीवन की अन्य परमावश्यक वस्तुएँ—हवा, पानी की तरह—इफरात हो जाँय ! बीज, खाद, सिचाई, जुताई के ऐसे तरीके निकलते ही जा रहे हैं, जो गेहूँ की समस्या को हल कर दें।

प्रचुरता—शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले साधनो की प्रचुरता—की ओर आज का मानव प्रधावित हो रहा है !

× × ×

प्रचुरता ?—एक प्रश्न चिह्न !

क्या प्रचुरता मानव को सुख और शान्ति दे सकती है ?

'हमारा सोने का हिन्दुस्तान'—यह गीत गाइए, किन्तु यह न भूलिए कि यहाँ एक सोने की नगरी थी, जिसमे राक्षसता वास करती थी !

राक्षसता—जो रक्त पीती थी, अभक्ष्य खाती थी, जिसके अकाय शरीर थे, दस सिर थे, जो छः महीने सोती थी, जिसे दूसरों की बहू-बेटियों को उड़ा ले जाने में तनिक भी झिझक नहीं थी।

गेहूँ बड़ा प्रबल है—वह बहुत दिनों तक हमें शरीर का गुलाम बनाकर रखना चाहेगा! पेट की क्षुधा शान्त कीजिए, तो वह वासनाओं की क्षुधा जाग्रत कर आपको बहुत दिनों तक तबाह करना चाहेगा।

तो, प्रचुरता में भी राक्षसता न आवे, इसके लिए क्या उपाय?

अपनी वृत्तियों को वश में करने के लिए आज का मनोविज्ञान दो उपाय बताता है—इंद्रियों के संयमन का और वृत्तियों के उन्नयन का।

संयमन का उपदेश हमारे ऋषि-मुनि देते आए हैं। किन्तु इसके बुरे नतीजे भी हमारे सामने हैं—बड़े-बड़े तपस्वियों की लम्बी-लम्बी तपस्याएँ एक रम्भा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुस्कान पर स्खलित हो गईं।

आज भी देखिए। गांधी जी के तीस वर्ष के उपदेशों और आदेशों पर चलने वाले हम तपस्वी किस तरह दिन-दिन नीचे गिरते जा रहे हैं।

इसलिए उपाय एकमात्र है—वृत्तियों के उन्नयन का।

कामनाओं को स्थूल वासनाओं के क्षेत्र से ऊपर उठाकर सूक्ष्म भावनाओं की ओर प्रवृत्त कीजिए!

शरीर पर मानस की पूर्ण प्रभुता स्थापित हो—गेहूँ पर गुलाब की।

गेहूँ के बाद गुलाब—बीच में कोई दूसरा टिकाव नहीं, ठहराव नहीं।

× × ×

गेहूँ की दुनिया खत्म होने जा रही है—वह स्थूल दुनिया, जो आर्थिक और राजनीतिक रूप से हम पर छाई है!

जो आर्थिक रूप में रक्त पीती रही है; राजनीतिक रूप में रक्त की धारा बहाती रही है!

अब वह दुनिया आने वाली है जिसे हम गुलाब की दुनिया कहेंगे!

गुलाब की दुनिया—मानस का संसार—सांस्कृतिक जगत्।

अहा, कैसा वह शुभ दिन होगा जब हम स्थूल शारीरिक आवश्यकताओ की जजीर तोडकर सूक्ष्म मानस-जगत् का नया लोक बसायेंगे ।

जब गेहूँ से हमारा पिड छूट जायगा और हम गुलाब की दुनिया मे स्वच्छन्द विहार करेंगे ।

गुलाब की दुनिया—रगो की दुनिया, सुगन्धो की दुनिया ।

भौंरे नाच रहे, गूज रहे, फुलसुंघनी फुदक रही, चहक रही ।

नृत्य, गीत—आनन्द, उछाह ।

कही गन्दगी नही, कही कुरूपता नही । आँगन मे गुलाब, खेतो मे गुलाब । गालो पर गुलाब खिल रहे, आँखो से गुलाब झांक रहा ।

जब सारा मानव-जीवन रगमय, सुगन्धमय, नृत्यमय, गीतमय बन जायेगा ? वह दिन कब आयगा ?

वह आ रहा है—क्या आप देख नही रहे ? कैसी आँखें हैं आपकी ! शायद उन पर गेहूँ का मोटा पर्दा पडा हुआ है । पर्दे को हटाइए और देखिए कि वहाँ अलौकिक, स्वर्गिक दृश्य इसी लोक मे, अपनी इस मिट्टी की पृथ्वी पर हो !

शौके दीदार अगर है, तो नज़र पैदा कर !

हजारीप्रसाद द्विवेदी

एक पत्र

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
२२-१०-५१

प्रिय भाई बेनीपुरी जी,

हवा की पीठ पर बैठकर देश-विदेश घूम आए और मधुर क्षणों में धरती की पीठ पर ठिठके हुए मित्रों को याद करते रहे, इस द्विमुख कर्त्तव्य के लिए बधाई दूं या न दूं—यही सोच रहा हूँ। मछली को सफलतापूर्वक तैरने के लिए बधाई देनी चाहिए या नहीं ? शायद नहीं, क्योंकि उसे विधाता ने यह 'सहज' गुण दिया है—यह उसका स्वभाव है। और जो आदमी जनम भर तूफान पर सवारी करता रहा और फिर भी जिसने धरती को क्षण के लिए नहीं भुलाया उसे ही क्यों बधाई दी जाय ? पक्षी दिन भर आसमान में उड़े, मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है। मछली रात भर तैरे, बुरा क्या है; लेकिन वह संक्रामक व्याधि के रूप में तैरने और उड़ने को नगर-नगर, गाँव-गाँव में फैलाना चाहे तो मैं जरूर शिकायत करूँगा। आप भी करेंगे ही। या क्या पता आप करें न करें। संसार की सबसे बड़ी समस्या यही है कि लोग आराम करना भूल गए हैं। कोई रुकना नहीं चाहता। हँसिया और हथौड़ा भी, हल और चक्की भी, चरखा और करघा भी—सब एक ही बात सिखाते हैं—रुको नहीं, झुको नहीं, बढ़े चलो, बढ़े चलो। कोई पूछे—कहाँ ? कुछ पता नहीं। सभी मानते हैं कि संसार में अशान्ति है सभी मानते हैं कि 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की !' मानते नहीं तो सिर्फ इतना कि सारा झगड़ा इसलिए है कि लोग आराम करना नहीं जानते। पिसे हैं, पिस रहे हैं, और कस-कस आवाज दे रहे हैं—हइयो ! ! यह

काम करना नहीं है, काम करने के नशे का सेवन करना है। बोझ बढ़ता जा रहा है और बोझ के वेग से भागते हुए मजदूर की तरह मनुष्यता भागी जा रही है। गुरुदेव ने एक दिन घबडा कर कहा था—'मारेर वेगे ते ठेलिया चलेछि ए यात्रा मोर थामाओ, बन्धु ए यात्रा थामाओ।' अगर आज सचमुच ही बन्धु ने यात्रा नहीं रोक दी तो निश्चित समझिये कि गर्दन टूटने के पहले ही बोझा पटक दिया जायगा। मगर सुनता कौन है? सब 'मारेर वेगे ते' भागे जा रहे है। कठिनाई यह है कि ऐसे समय किसी से हित की बात कही जाय तो मार बैठेगा। मुझे तो आशका होती है कि पहली लकड़ी आप ही चला देंगे। ना बाबा, मैं 'हितोपदेश' के चक्कर में नहीं पड़ने का। सीधी-सी बात है। उसके लिए झगडा कौन मोल ले। जब कोई दूसरा सुनने वाला नहीं मिलता तो अपने मन को ही समझाया करता हूँ। लेकिन आप से छिपाऊँ भी तो क्या। सोचिए ठण्डे दिमाग से सोचिए और बात समझ में आ जाय तो और दस मित्रो को समझाइये। कहिये कि प्यारे दोस्तो, थोडा सुस्ता लो, थोडा सोचो। अच्छा हो कि (यदि खरीद सकने भर को पैसा हो तो) एक गडगडा ले लो, आराम से कश खीच मुगलई शान के साथ क्षण भर के लिए एक धुएँ की मेघशाला बनाओ और विचार कर देखो कि मलूकदास बुरे फिलासफर नहीं थे, अजगर की कोई अभिशप्त फिलासफी नहीं है। जीयो और जीने दो। मस्ती जब आती है तो मन को अचचल बना देती है, शिराओ को थोडा अलस कर डालती है। रस जब भरता है तो ललाई खुद आ जाती है।

अजगर धर्म कोई खास धर्म नहीं है। इतना जरूर है कि उस धर्म के पीछे कोई तगडी फिलासफी होनी चाहिए। तगडी अर्थात् जो सुनने मे धर्म और सस्कृति के धरातल की चीज हो, जिसे लिखने मे कलम को वजन महसूस होता हो, पर हलकी इतनी हो कि आसानी से पाठक या श्रोता तक उड जाती हो। उड़े और सुनने वालो के दिमाग को छूकर निकल जाय—वेगवती और डायनेमिक।

कहाँ मिलती है मनुष्य को ऐसी फिलासफी! और मिल भी जाय

तो उसको जीवन में रूपान्तरित करना क्या आसान है ? उसके लिए साधन चाहियें । साधन भी ऐसे नहीं जो आजकल यत्र-तत्र सर्वत्र मिल जाते हैं। साधन ऐसे हैं जो आजकल एकदम दुर्लभ हो गए हैं। मन-ही-मन अपने को शाहजहां या समुद्रगुप्त के रूप में सोचिए, फिर देखिये कि कितने साधनों की आवश्यकता होती है। प्रातःकाल वैतालिक गान से शुरू करके रात्रि काल के स्तुति वाक्यों तक की परम्परा को ढोने के लिये विश्वस्त परिचारकों की पूरी पल्टन चाहियें । परन्तु यह सब तो कल्पना द्वारा भी आप गढ़ लेंगे लेकिन ठोस तथ्य होगा गड़गड़ा । उसके लिए एक— कम-से-कम एक—भृत्य होना चाहिए जिस पर एक मात्र आपका ही सम्पूर्ण अधिकार हो । यह नहीं कि आप जब कश खींचकर कुछ साहित्य साधना का विचार कर रहे हैं तब तक श्रीमती जी ने उसे बाजार भेज दिया। ऐसा हुआ तो प्रेरणा का स्रोत ही सूख जायगा । लेकिन मजदूरों का जैसा घनघोर संगठन हो रहा है उसे देखते यह कह सकना कठिन है कि जीवन में किसी अच्छी फिलासफी को उतारने का भरपूर मौका मिलेगा भी या नहीं । कम-से-कम गड़गड़ा तो तब तक नहीं चल सकता जब तक चौबीस घण्टे की ताबेदारी के लिए तैयार, स्वस्थ, प्रसन्न और भयभीत नौकर न मिल जाय । लेकिन दुःख की कोई बात इसमें नहीं है । सभी फिलासफियाँ आज इस अभाव से त्रस्त हैं—होने दीजिए ।

मैं दूसरी बात कह रहा था । आपने जो शेर लिखा है वह बुरा 'शेर' है, सामने से आक्रमण नहीं करता । लगता है क्या मनमोहक है, कितना हृदयहारी है और क्षणभर बाद देखिए तो हृदय तर है। मेरे जैसा आलसी भी काफी बहानों के बावजूद (तीन दिनों से इन्फ्लुएँजा का साथ है !) लिखने के टेबुल पर आ जमा । अब बताइये, इन आक्रमणों के बाद फिलासफी कैसे जिये ? मैं कहता हूँ बेनीपुरी जी, उर्दू के इन रत्नों को कभी खोना नहीं चाहिए । पिछले इतिहास ने हमारे मन में ऐसा एक भाव भर दिया है कि उर्दू कोई अन्य भाषा है। मैंने इस भाषा के साहित्य को कभी-कभी हिन्दी पुस्तकों के सहारे ही पढ़ा है । कई अवसर आए हैं जब मेरा मन चकित होकर सोचने लगा है कि दूर से संयोगवश कभी

एकाध पक्ति सुनने पर जब मेरे जैसे सस्कृत-प्राकृत के रसिको को इतना आनन्द आता है तो जो लोग इसका नित्य अध्ययन-अध्यापन करते रहते हैं उनके मन मे इसके प्रति क्यो न गहरी ममता होगी—उसे 'मोह' भी कहे तो बुरा नही है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय मे पुरुरवा के मुँह से उर्वशी के प्रति यह कहलवाया था कि हे सुन्दरी, सयोगवश तुम एक बार भी जिस व्यक्ति की भाग्यशाली आँखो के सामने आ पडी वह भी तुम्हारे बिना तड़प उठता है, फिर दिन रात साथ खेलने वाली आर्द्रसौहृदा सखियो की तो बात ही क्या है—

यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्यो पथिस्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयो ।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुकोऽभवत् सखी जनस्ते किमुतार्द्रसौहृद ॥

उर्दू की लगने वाली कोई भी कविता पढ़ता हूँ तो यह श्लोक याद आ जाता है। कुछ ऐसा उद्योग होना चाहिए कि उर्दू कविता का सब महत्व-पूर्ण साहित्य नागरी अक्षरों मे सुलभ हो जाय। यह प्रयत्न योजना बनाकर होना चाहिए। जब पाकिस्तान के तने घूसे के पीछे छिपा हुआ कायर हृदय हर मौके-बे-मौके इस देश की शान्ति प्रिय जनता के हृदय मे क्षोभ उत्पन्न करता रहेगा तब ये कविताएँ स्मरण दिलाती रहेंगी कि मनुष्य एक है, हिन्दू और मुसलमान केवल आवरण मात्र हैं और तने घूसे केवल पागल की दयनीय गर्जना मात्र है। उर्दू के ये शायर दीर्घकाल तक इन दो भूखण्डो के निवासियो के बीच कटी हुई खाई को पाटते रहेगे।

खैर, अब प्रकृत विषय पर आऊँ। आप पूछते हैं कि मैं 'नई धारा' मे लिखता क्यो नही। कौन कहता है नही लिखता ? आप कहते होगे या आप ही जैसे कुछ और लोग पैरो मे हवा बाँधकर आसमान मे उडा करते हैं पर धरती की ठोस जमीन को कभी भूलते ही नही। उनसे पूछिए जो हवा मे उड़ते हैं, सिर्फ आसमान मे चक्कर काटते हैं, विशुद्ध साहित्य के उपासक हैं। कहते हैं, यह भी क्या कि साहित्य मे धरती की धूल लग जाय, यह भी क्या कि राजनीति और मनोविज्ञान और जीवविज्ञान और विदेशी रग-ढग और देशी धक्का-मुक्की साहित्य को छू जाय ? बात अच्छी है यह तो आपकी भी समझ मे आ गई होगी—न आई हो तो मैं

क्या करूँ?—अब इसे 'लाजिकल कंक्लूजन' तक घसीटिए तो साफ समझ में आ जाएगा कि विशुद्ध साहित्य को कागज पर भी नहीं उतारना चाहिए, मशीन की दबाई और डाकघर की पिटाई तो बहुत ही बेजा बातें हैं। मन-ही-मन मैं बहुत लिखा करता हूँ, पर यदि वह साहित्य आप तक नहीं पहुँचता तो दोष मेरा नहीं है, आपका है।

साहित्य के बारे में इतना ही कहना पर्याप्त है कि जो साहित्य धरती की धूल से मैला है, मिट्टी के आकर्षण से भारी-भारी है, वह जाने कैसा-कैसा है। इधर आप जानते ही हैं कि गेहूँ और गुलाब में लोग गेहूँ की वकालत करने लगे हैं—सिर्फ इसलिए कि उसमें धरती की धूल लगा करती है। जो इस धूल को पसंद नहीं करते उनसे बिहारी के पदों में कहते जाइये 'एहि आशा अँटके रहो'। लेकिन वसन्त ऋतु में देर है और लोगों को सन्देह होने लगा है कि अब भौरों का और मालियों का और फूलों का और रूपकों का और अन्योक्तियों का वसन्त आयेगा भी या नहीं। आना तो चाहिए। आ जाय तो अच्छा है। न भी आये तो धरती का सौन्दर्य बना ही रहेगा—जीवन लहरायेगा ही, केवल उसके उपभोग का ढंग बदल जाएगा। बिहारी की-सी आँखें तो अब क्या मिलेंगी पर दुनिया बिल्कुल खाली हाथ नहीं चलती रहेगी। नया स्वाद, नया गन्ध कुछ न कुछ ताज़गी लायेंगे ही। न रहें पुराने रूपक, न रहें पुरानी अन्योक्तियाँ, लेकिन मनुष्य का मस्ताना मन ठूंठ नहीं बना रहेगा। कवि-वर रवीन्द्रनाथ ने कालिदास की कविताओं को स्मरण करके कहा था—

आपातत एइ आनन्दे मेते आछि बेंचे।
कालिदास तो नामेइ आछेन आमि आछि बेंचे।

सो यही क्या कम है कि जीवन फिर भी बचा रहेगा।

आज इतना ही।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

रवीन्द्रनाथ त्यागी

एक जरूरी बयान

मैं आपका ध्यान खेती की समस्या के उस पहलू की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जो कि अभी तक पूरी तरह नही पकडा गया है। मुझे आपको यह बताते हुए हर्ष होता है कि समस्या के इस पहलू का सम्बन्ध चूहे से है।

चूहा जैसा कि शायद हम सभी जानते हैं, एक छोटा-सा जानवर होता है जो कि पैरो के सहारे चलता है। इस जानवर का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है जैसे स्त्री चूहा, पुरुष चूहा, जगली चूहा या घरेलू चूहा, छोटा चूहा या बडा चूहा, और जानवरो की तरह चूहा भी अपने बचपन मे छोटा होता है और धीरे-धीरे अपने पूरे कद को प्राप्त होता है।

चूहे के सही कद के बारे मे काफी कहा जा सकता है। आजकल जो चूहा हम देखते हैं वह प्राय. ज्यादा बडा नही होता। दूसरे शब्दो मे आजकल जो चूहा पाया जाता है उसका कद छोटा होता है। मगर इतिहास साक्षी है कि स्थिति हमेशा ऐसी नही थी। १८५७ के गदर मे जो अग्रेज स्त्रियां लखनऊ की रेजीडेन्सी मे बन्द थी उन्होंने सूअर के साइज के चूहे देखे थे। दूसरे शब्दो मे सौ साल पहले चूहे का कद कुछ और बड़ा था। हजारो साल पहले तो चूहा काफी बडा रहा होगा। और जाहिर है कि इसी कारण इसे गणेशजी ने अपनी सवारी मे रखा।

इस समय हमारे देश मे खाने की जो समस्या है उसका चूहे से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। सयानो का मत है कि देश में कुल मिलाकर दस मिलियन टन अन्न की कमी है और स्थिति यह है कि इस राशि से कुछ ज्यादा अन्न चूहा खा जाता है। चूहे से हमारा अर्थ यहाँ देश के सारे चूहो से है क्योकि जैसा कि जाहिर है, एक चूहे के लिए इतना अन्न खाना कठिन है। दूसरे शब्दो मे यदि हम किसी तरह चूहे का अन्न खाना बन्द कर सकें तो हमारा देश खाने के मामले मे आत्मनिर्भर हो सकता है।

जैसा कि हम जानते है, खाने के संकट के कारण हमें दूसरे देशों से अन्न लेना पड़ता है। अन्न की सहायता के साथ-साथ विदेशी सरकारें हमें और दिशाओं में प्रभावित करती हैं। संक्षेप में स्थिति यह है कि चूहे का क्षेत्र खाने तक ही सीमित नहीं है। वह रक्षा, साहित्य व तकनीकी शिक्षा की ओर भी जाता है। दूसरे शब्दों में चूहे की गति अनन्त है।

अब तक खेती के सन्दर्भ में जो कुछ किया गया है वह जमींदारी उन्मूलन, सिंचाई, बीज, खाद इत्यादि दकियानूसी क्षेत्रों में ही किया गया है। यदि उतना श्रम चूहे के ऊपर किया जाता तो खाने की समस्या कभी की हल हो गई होती। खैर, स्थिति यह नहीं है कि अब तक जो कुछ नहीं किया गया, उस पर शोक प्रस्ताव पास किया जाये बल्कि यह कि भविष्य में इस जन्तु विशेष से देश की रक्षा की जाये। इस बारे में हमें आंकड़े इकट्ठे करने होंगे और फिर क्रमबद्ध योजना बनानी होगी।

हमारे देश में चूहों की जितनी अधिकता है, आंकड़ों की उतनी ही कमी है। चूहों की वास्तविक जनसंख्या कितनी है, इस बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हां, अलबत्ता इतना जरूर निश्चित है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद चूहों की जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई है। चूहों की समस्या हल करने के लिए जरूरी है कि उनकी बढ़ती हुई जनसंख्या को रोका जाये।

चूहों की जनसंख्या-वृद्धि को रोकने के लिए अनेक प्रकार के कदम उठाए जा सकते हैं। उन्हें परिवार नियोजन की शिक्षा दी जा सकती है। उनका निर्यात किया जा सकता है, उनकी मृत्यु दर को बढ़ाया जा सकता है और उन्हें खाया जा सकता है। कुछ देश ऐसे हैं जो चूहे को कसरत के साथ खाते हैं।

जहां तक परिवार नियोजन का सम्बन्ध है, मेरे विचार से इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा सकता। जब तक चूहा शिक्षित न हो जाये तब तक उसके बीच नियोजन की किसी विधि को लोकप्रिय बनाना काफी कठिन होगा। चूहे को शिक्षित बनाना तो और भी भयंकर समस्या है क्योंकि वह पढ़ने की अपेक्षा.साहित्य को खाना अधिक पसन्द करता है।

चूहे को मारना अपेक्षाकृत काफी सरल काम है। चूहे को प्रत्यक्ष रूप से भी मार सकते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से भी। प्रत्यक्ष रूप से हमारा अर्थ है चूहे को पूछ से पकडकर पटक देने से या उसे पत्थर फेंककर मारने से। अप्रत्यक्ष रूप से भी मारने के लिए गोलियाँ खरीदनी पडेंगी या बिल्ली पालनी होगी।

यू हम लोग फुटकर तौर पर एकाध चूहा मार सकते है पर उससे समस्या का हल होना कठिन है। जाहिर है कि इस दिशा मे ठोस कदम सरकार को ही उठाने होगे। चूहो की समाप्ति के लिए एक नया महकमा खोलना होगा। शायद एक 'भारतीय चूहा मार सेवा' भी स्थापित करनी पडे। इस सेवा का मन्त्र होगा—'मूषक मुक्तिरेव मे वृत्ति'। इस सेवा के दो प्रभाग होगे—एक प्रशासनिक, दूसरा टैकनिकल। टेकनिकल लोग चूहे को मारने के उपाय निकालेंगे और मारेंगे भी। प्रशासनिक लोग आँकडे इकट्ठे करेंगे और टैकनिकल लोगो की तरक्की व तबादले करेंगे।

चूहो के मारने मे एक ही उपाय काम मे नही लाया जा सकता। पहाडी प्रान्तो के चूहे मैदानी चूहो की अपेक्षा ज्यादा फुर्तीले होते हैं और उन्हे मारने के लिए तकिए के स्थान पर पत्थर की मदद लेनी पडती है। इन तमाम परेशानियो के कारण, जाहिर है कि चूहा-मार महकमा केन्द्रीय सरकार के नीचे ही खोला जायेगा। इसकी यूनिटें जिला और तहसील के स्तर तक होंगी।

नागरिक विभाग के अतिरिक्त सेना व पुलिस को भी इस दिशा मे हाथ बँटाना होगा। चूहो को मारने के लिए बन्दूक और तोप का भी प्रयोग किया जा सकता है। वायुसेना इस दिशा मे क्या सहयोग दे सकती है इस पर अलग से विचार करना होगा। चूहा मारने के लिए नये किस्म का गोला-बारूद बनाना पडेगा। फायर ब्रिगेड, लोक-सहायक सेना और बालचर विभाग भी इस दिशा मे सरकार की भरसक सहायता करेंगे।

चूहों की संख्या घटाने के लिए हमें नैतिक कदमो पर भी जोर देना होगा। जो लोग अपने आयकर अधिकारी को दो चूहे मारकर रिटर्न के साथ भेजेंगे, उन्हे कर मे विशेष छूट दी जायेगी। इस प्रकार यदि चूहो

को मारते हुए यदि कोई संभ्रान्त व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसकी सम्पत्ति पर मृत्यु-कर नहीं लगेगा। कुछ लोगों को चूहा पकड़ने की शिक्षा भी दी जायेगी। हर घर में चूहेदान रखना लाजमी होगा और चूहेदान का कारखाना खोलने के लिए सरकार विशेष अनुदान देगी। चूहों को मारने के लिए रेल की यात्रा का प्रबन्ध किया जायेगा। इस काम के लिए बन्दूक रखने के लिए लाइसेन्स भी नहीं लेना पड़ेगा। जो लोग चूहे को मारने के लिए उन्हें शराब पिलाना चाहेंगे वे नशाबन्दी कानून की गिरफ्त से बाहर माने जायेंगे। जो लोग आवारा चूहों को आश्रय देंगे उन्हें दण्ड देना पड़ेगा।

जो लोग चूहा मारने से घबराते हैं वे उन्हें पकड़कर सरकारी क्षेत्रों तक पहुँचा सकते हैं। इस उद्देश्य से स्थान-स्थान पर चूहाघर खोले जा सकते हैं। चूहाघरों में यह भी कोशिश की जायेगी कि चूहा अपनी खाने की आदत बदल दें। मिसाल के तौर पर अगर कोई शरीफ चूहा बजाय गेहूँ के घास खाना शुरू कर दे तो उसे इस शर्त पर रिहा किया जा सकता है कि वह साल में एक बार आकर अपनी डाक्टरी करा लें। डाक्टरी मुआयना इस बात पर रिपोर्ट देगा कि चूहा घास ही खा रहा था कि कुछ और। जो चूहे अनाज खाने को ही मजबूर हैं उन्हें विदेश भेजा जा सकता है। चूहा छोड़ने के लिए हमारे अफसरों को भी विदेश जाना होगा। इस काम के लिए हमें हर तरह की जिम्मेदारी उठानी पड़ेगी।

जो लोग चूहामार-आन्दोलन में होनहार साबित होंगे उन्हें 'चूहा-बहादुर', वगैरह का खिताब दिया जा सकता है। मुर्दा चूहे की खाल या हड्डी से अगर कोई चीज बन सकती है तो उस पर गौर किया जा सकता है। यह उद्योग निजी क्षेत्र में होगा या कि सार्वजनिक क्षेत्र में—इस पर विचार करने के लिए एक कमेटी बिठाई जा सकती है।

चूहा हमारा दुश्मन है। हमें उससे हर हालत में लड़ना है।

नहीं तो वह हमें खा जायेगा।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

आपने मेरी रचना पढी ?

हमारे साहित्यिको की भारी विशेषता यह है कि जिसे देखो, वही गम्भीर बना है, गम्भीर तत्त्ववाद पर बहस कर रहा है और जो कुछ भी वह लिखता है, उसके विषय मे निश्चित धारणा बनाए बैठा है कि वह एक क्रान्तिकारी लेख है। जब आए दिन ऐसे ख्यात-अख्यात साहित्यिक मिल जाते हैं, जो छूटते ही पूछ बैठते हैं, 'आपने मेरी अमुक रचना तो पढी होगी ?' तो उनकी नीरस प्रवृत्ति या विनोद-प्रियता का अभाव बुरी तरह प्रकट हो जाता है। एक फिलासफर ने कहा है कि विनोद का प्रभाव कुछ रासायनिक-सा होता है। आप दुर्दान्त डाकू के दिल मे विनोदप्रियता भर दीजिए, वह लोकतन्त्र का लीडर हो जाएगा; आप समाज-सुधार के उत्साही कार्यकर्त्ता के हृदय मे किसी प्रकार विनोद का इजेक्शन दे दीजिए, वह अखबारनवीस हो जाएगा। और यद्यपि कठिन है, फिर भी किसी युक्ति से उदीयमान छायावादी कवि की नाड़ी मे थोडा विनोद भर दीजिए, वह किसी फिल्म कम्पनी का नामी अभिनेता हो जायगा।

एक आधुनिक चीनी फिलासफर को दिन-रात यह चिन्ता परेशान करती रहती है कि आखिर लोकतन्त्र के नेताओं और डिक्टेटरो मे अन्तर क्या है ? यदि आप सचमुच गम्भीरता पूर्वक छानबीन करें तो रूजवेल्ट और स्तालिन मे कोई मौलिक अन्तर नही मिलेगा। या दूर की बात छोडिए गाँधी और जिन्ना मे कोई अन्तर नही है—जहाँ तक शक्ति-प्रयोग का प्रश्न है। गाँधी की बात भी काग्रेस के लिए कानून है और जिन्ना की बात भी मुस्लिम लीग के लिए वेद-वाक्य है। फिर भी एक डेमोक्रेट है और दूसरा डिक्टेटर। क्यों ? चीनी फिलासफर ने चार वर्ष की निरन्तर साधना के बाद आविष्कार किया कि डेमोक्रेट हँसना और मुस्कराना जानता है, पर डिक्टेटर हँसने की बात सोचते भी नही। उनको आप

जहाँ भी देखें और जब देखें, उनकी भृकुटियाँ तनी हुई हैं, मुट्ठियाँ बँधी हुई हैं, ललाट कुंचित हैं, अधरोष्ठ दाँतों की उपांत रेखा के समानान्तर जमा हुआ है—मानो ये अभी दुनिया को भस्म कर देना चाहते हैं। अगर इन शक्तिशाली डिक्टेटरों में हँसने का थोड़ा-सा माद्दा होता तो दुनिया आज कुछ और हो गई होती।

जब-जब मैं कलकत्ते के चिड़ियाघर में गया हूँ, तब-तब मुझे ऐसा लगा है कि संसार के जीवों में सबसे अधिक गम्भीर और चिन्तामग्न चेहरा उस चिड़ियाघर में रखे हुए एक बनमानुष का है। उसको देखते ही जान पड़ता है कि संसार की समस्त वेदना को वह हस्तामलक की भाँति देख रहा है और अपनी सुदूरपातिनी दृष्टि से इन आने जाने वाले दर्शकों के करुण भविष्य को प्रत्यक्ष देख रहा है। मैंने बाद में पढ़ा है कि अफरीका के हब्शियों में यह विश्वास है कि बनमानुष मनुष्य की बोली बोल भी सकते हैं और संसार के रहस्य को भली-भाँति समझ भी सकते हैं; परन्तु इस डर से बोलते नहीं कि कहीं लोग पकड़कर उन्हें गुलाम न बना लें। यह बात जब तक मुझे नहीं मालूम थी, तब तक मैं समझता था कि यह कलकत्ते वाला बनमानुष ही बहुत गम्भीर और तत्त्वचिन्तक लगता है। अब मैंने अपनी राय में संशोधन कर लिया है। वस्तुतः संसार के सभी बनमानुष गम्भीर और तत्त्वदर्शी दिखाई देते हैं।

मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि आदिम युग का मनुष्य—जब कि वह वानरी योनि से मानवी योनि में नया-नया आया था—कुछ इस कलकतिये बनमानुष की ही भाँति गम्भीर रहा होगा। मगर यह भी कैसे कहूँ? जेब्रा और गैंडा भी मुझे कम गम्भीर नहीं लगते तथा गधे और ऊँट भी इस सूची से अलग नहीं किये जा सकते। फिर भी गधे की तुलना बनमानुष से नहीं की जा सकती। अन्ततः गधे और बनमानुष की गम्भीरता में मौलिक भेद है। गधा उदास होता है और इसलिए नकारात्मक है; पर बनमानुष सोचता हुआ सा रहता है और इसलिए उसकी गम्भीरता में कुछ तत्त्व है, कुछ सार है। गधे की गम्भीरता प्रोलितारियत की उदासी है और बनमानुष की गम्भीरता सर्गवादी मनीषी की। दोनों को

एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

परन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आदि-मानव कुछ गम्भीर, कुछ तत्त्वचिन्तक और कुछ उदास जरूर था और उसकी उदासी वर्गवादी विचारक की उदासी की जाति की ही रही हो, ऐसा भी हो सकता है। सच पूछिए तो शुरू-शुरू में मनुष्य कुछ साम्यवादी ही था। हँसना-हँसाना तब शुरू हुआ होगा जब उसने कुछ पूंजी इकट्ठी कर ली होगी और संचय के साधन जुटा लिये होंगे। मेरा निश्चित मत है कि हँसना-हँसाना पूंजीवादी मनोवृत्ति की उपज है। इस युग के हिन्दी साहित्यिक जो हँसना नापसन्द करते हैं, उसका कारण शायद यह है कि वे पूंजीवादी बुर्जुआ मनोवृत्ति को मन-ही-मन घृणा करने लगे हैं। उनकी युक्ति शायद इस प्रकार है—चूंकि संसार के सब लोग हँस नहीं सकते, इसलिए हँसी एक गुनाह है और चूंकि संसार के सभी लोग थोड़ा-बहुत रो सकते हैं, इसलिए रोना ही वास्तविक धर्म है। फिर भी अधिकांश साहित्यिक रोते नहीं, केवल रोनी सूरत बनाए रहते हैं। जिसे थोड़ा-सा भी गणित सिखाया गया हो, वह बहुत आसानी से इस आचरण की युक्त-युक्तता समझ सकता है। मैं समझ रहा हूँ।

यह तो स्वयंसिद्ध बात है कि दुनिया में दुःख सुख की अपेक्षा अधिक है, अर्थात् रोदन हास्य से अधिक है। अब सारी दुनिया के रोदन को बराबर-बराबर बाँट दीजिए और हँसी को भी बराबर-बराबर बाँट दीजिए। स्पष्ट है कि सबको रोदन हास्य से ज्यादा मिलेगा। अब रोदन में से हास्य घटा दीजिए। कुछ रोदन ही बचा रहेगा। इसका मतलब यह हुआ कि जो कुछ मिलेगा, उससे फूट-फूटकर तो नहीं रोया जा सकता, पर चेहरा जरूर रुआंसा बना रहेगा। यह युक्ति मुझे तो ठीक जँचती है।

लेकिन युक्ति का ठीक जँचना साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में सब समय प्रमाणस्वरूप ग्रहण नहीं किया जाता। रहस्यवादी आलोचक यह नहीं मानते कि युक्ति और तर्क में ही सब कुछ है। मैंने आलोचक शब्द के विशेषण के लिए रहस्यवादी शब्द का किसी को चोट देने की मंशा से व्यवहार नहीं किया है। बहुत परिश्रम के बाद मैंने यह निष्कर्ष निकाला

है कि हिन्दी मे वस्तुतः रहस्यवादी कवि हैं ही नहीं। यदि कोई रहस्यवादी कहा जा सकता है, तो वह निश्चय ही एक श्रेणी का आलोचक है। जहाँ तक हिन्दी बोलने वालों का सम्बन्ध है, रहस्यवादी साधु और फकीर तो बहुत हैं, पर वे सब साधना की दुनिया के जीव हैं, साहित्य की दुनिया में रहस्यवादी जीव यदि कोई है, तो वे निश्चय ही एक तरह के आलोचक हैं। और जब कभी मैं रहस्यवादी शब्द की बात सोचता हूँ तो काशी के भदैनी मुहल्ले की सड़क पर साधना करने वाला रहमतअली फकीर मेरे सामने जरूर आ जाता है। यह फकीर मन, वचन और कर्म तीनों से विशुद्ध रहस्यवादी था। 'अनिकेत' वह जरूर था; पर उसके बड़े-से-बड़े निन्दक को भी यह कहने में जरूर संकोच होगा कि वह 'स्थिरमति' भी था।

सो, मैंने एक दिन देखा कि यह रहमतअली शून्य की ओर आँखें उठाए हुए किसी अदृश्य वस्तु पर निरन्तर प्रहार कर रहा है। लात, मुक्के, घूंसे—एक, दो, तीन. . .लगातार। दर्शक तो वहाँ बहुत थे, कुछ सहमे हुए, कुछ भक्तियुक्त, कुछ 'यों ही से' और कुछ गम्भीर। एकाध मुस्करा भी रहे थे। इन्हें देखकर ही मुझे रहस्यवादी आलोचकों की याद आई। सारा कांड कुछ ऐसा अजीब था कि विनोद की एक हल्की रेखा के सिवा तत्त्वज्ञान तक पहुँचा देने का और साधन ही नहीं था। तब से जब देखता हूँ कि कोई शून्य की ओर आँखें उठाए हुए है और किसी अदृश्य वस्तु पर निरन्तर प्रहार कर रहा है, तब मुझे रहस्यवाद की याद आये बिना नहीं रहती। सो यह रहस्यवादी-दल युक्ति नहीं माना करता। 'युक्ति' शब्द में ही (युज्+ति) किसी वस्तु से योग का सम्बन्ध है। और यह मान लिया गया है कि योग दृश्य-वस्तु से ही स्थापित किया जा सकता है। अदृश्य के साथ योग कैसा ?

आसमान में निरन्तर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं है और मैं निश्चित जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हँसी-खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं, और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकंपित ! यह क्या कम साधना है ? आये दिन साहित्यिकों के विषय में विचार होता ही रहता है और इन विचारों पर विचार लिखने

वाले बुद्धिमान लोग गम्भीर भाव से सिर हिला कर कहते है—आखिर साहित्यकार कहें किसे ? बहसें होती हैं, अखबार रँगे जाते हैं, मेरे जैसे आलसी आदमी भी चिन्तित हो जाते हैं, और अन्त मे सोचता हूँ कि 'साहित्यिक' तो साहित्य के सम्बन्धी को ही कहते हैं न ? सो सम्बन्ध तो कई तरह के हैं ! बादरायण एक है। आपके घर अगर बेर के फल हैं, मेरे घर बेर के पेड तो इस सम्बन्ध को पुराने पण्डित 'बादरायण' सम्बन्ध कहेंगे। साहित्यिक से सम्बन्ध रखने वाले जीव पाँच प्रकार के हैं—लेखक, पाठक, सम्पादक, प्रकाशक और आलोचक। सबके क्षेत्र अलग-अलग हैं। पढने वाला आलोचना नही करता, आलोचना करने वाला पढता नही—यही तो उचित नाता है। एक ही आदमी पढे भी और लिखे भी, या पढे भी और आलोचना भी करे या लिखे भी इत्यादि-इत्यादि, तो साहित्य मे अराजकता फैल जाय। इसीलिए जब एक लेखक दूसरे लेखक से पूछता है, कि आपने मेरी अमुक रचना पढी है, तब जी मे आता है कि कह दू 'डाक्टर के पास जाओ। तुम्हारे दिमाग मे कुछ दोष हैं।' पर डाक्टर क्या करेगा ? विनोद का इजेक्शन किसी फैक्टरी ने अभी तक तैयार नहीं किया। इसलिए मुस्कुराकर चुप लगा जाता हूँ। मेरे एक होमियोपैथ मित्र का दृढ मत है कि विनोद की कमी दूर करने के लिए कोई इजेक्शन तैयार किया जा सकता है। वे इस बात का प्रयत्न भी कर रहे हैं कि किसी हँसोड की छाया किसी तरह अलकोहल मे घुलाकर उस पर से विनोद की दवा तैयार करें और चिकित्सा की और साहित्य की दुनिया मे एक-ही साथ क्रान्ति कर दें। पर वह अभी प्रयोगावस्था मे ही है। तब तक मुझे भी सब सहना पडेगा और सहे भी जा रहा हूँ।

रणवीर रांगा

'लेखक का काम देना है, लेना नहीं'

श्री सुदर्शन

ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है और ज़िन्दादिली का उम्र से कोई सम्बन्ध नहीं, इस बात को बड़ी खूबी से सार्थक किया है प्रेमचन्द-युग के प्रसिद्ध कहानीकार सुदर्शन जी ने जो सत्तर वर्ष की अवस्था में भी चुस्ती और ताज़गी में युवकों को मात देते थे। यही नहीं, उनके सम्पर्क में आते ही दूसरों पर से उम्र का बोझ हल्का हो जाता और उन्हें बुजुर्गी भूलने लगती। दिल्ली में हुई एक गोष्ठी में सुदर्शन जी का आत्मविस्मृतकारी भाषण सुनने के बाद कविवर बच्चन को भी अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में यह तथ्य स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने कहा, 'मैं साठ के निकट पहुँच रहा हूँ। सुदर्शनजी के व्यक्तित्व और वाणी में इतनी ताज़गी है कि मैं भी मन्त्र-मुग्ध होकर बाल-सुलभ उत्सुकता के साथ इनका भाषण सुनता रहा हूँ।'

साठ से अधिक कहानी, नाटक और उपन्यास की पुस्तकें लिख चुकने के बावजूद देखने में सुदर्शन जी साहित्यकार कतई नहीं लगते थे—सफेद बर्राक कमीज पर कसी चुस्त पैंट और पांव में तीखी नोक वाला चमचमाता जूता पहने वे प्रेमचन्द-युग को बहुत पीछे छोड़, अपनी ख्याति के प्रति तनिक भी सचेत हुए बिना, आधुनिकों के झुंड में बड़ी आसानी से खो सकते थे। धन और मान दोनों ही प्रचुर मात्रा में कमा चुकने पर भी वे बेहद मिलनसार और विनोदी प्रकृति के थे। सुदर्शन जी का जन्म विभाजन-पूर्व पंजाब के सियालकोट नगर में हुआ था। स्वामी रामतीर्थ का जन्म भी वहीं हुआ था। इसलिए जन्म-स्थान की बात छिड़ते ही वे बड़े गर्व से कहते, 'सियालकोट ने तीन महान् हस्तियां पैदा की हैं—पहली बाल-शहीद हकीकतराय, दूसरी स्वामी रामतीर्थ, तीसरी डाक्टर इकबाल।' और

फिर थोडा रुककर शरारत-भरी मुस्कान से जोड देते, 'ग्रौर चौथी हस्ती है सुदर्शन ।' यह कहते हुए उनकी ग्राँखो के सामने वह दृश्य ज्यो-का-त्यो नाच उठता जब स्वामी रामतीर्थ ने उन्हे गोद मे उठाकर बडे प्यार से दूध पिलाया था ।

लगभग डेढ वर्ष पहले जब सुदर्शनजी दिल्ली ग्राए तो साहित्य-जगत् मे धूम मच गई, विशेषत उनके ग्राकर्षक व्यक्तित्व ग्रौर प्रभावशाली वक्तृता के कारण । मै उन्ही दिनो (१९६६ मे) उनके सम्पर्क मे ग्राया ग्रौर उनसे एक विशद भेंट-वार्ता भी हुई। चर्चा का ग्रारम्भ करते हुए मैंने पूछा, 'ग्रापके जमाने मे तो पढे-लिखे समझदार लोग समाज-सुधार, राजनीति, पत्रकारिता ग्रादि की ग्रोर झुकते थे । ग्राप कैसे इन प्रलोभनो मे बचकर लेखक बन गए ?'

ग्रपने भीतर टटोलते हुए-से सुदर्शनजी बोले, 'जब मैं छोटा था उसी जमाने मे मुझे कहानियाँ पढने का बहुत शौक था । सबसे पहले मैंने ग्रलिफलैला पढी । उसके बाद हातिमताई वे ग्रौर फिर दूसरे किस्से पढे । वे किस्से-कहानियाँ ग्रौर उनकी घटनाएँ मेरे दिलो-दिमाग पर कुछ इस तरह छा गईं कि मुझे हर वक्त उन्ही की चीज दिखाई देने लगी । यह ठीक है कि उस जमाने मे सुधार का बहुत जोर था। सुधार के सामने लोग झुकते थे ग्रौर सुधार की बातें सुनते थे । मुझे भी लैक्चर सुनने की शुरू से ग्रादत रही है। मै लैक्चर मे जाता था ग्रौर उसे सुनता था। सुनने के बाद उस पर गौर करता था । जब मैंने लिखना शुरू किया उस जमाने मे एक स्वामीजी थे—स्वामी सत्यानन्द । उन्होने मुझसे कहा, 'सुदर्शन, लिखते हो तो लिखो, लेकिन लिखने समय सोच लिया करो कि उससे पढने वाले का कुछ भला भी होगा या सिर्फ नाटक की तरह वक्त ही बर-बाद होगा ।' उस समय नाटक बडे बेहूदा हुग्रा करते थे । उनकी बात मेरे दिल में बैठ गई ग्रौर मैंने इसे ग्रपने सीने पर लिख लिया कि मै वह चीज लिखूगा जिससे किसी का भला हो । ग्रौर मैंने देश ग्रौर समाज के लिए लिखना शुरू कर दिया ।'

मेरा ग्रगला प्रश्न था, 'प्रेमचन्द ने, ग्रौर ग्रापने भी, पहले उर्दू मे लिखना

शुरू किया और बाद में हिन्दी में आ गए। उर्दू से हिन्दी में आने का मुख्य कारण क्या था ?' वे बोले, 'प्रेमचन्द के बारे में तो मैं कुछ नहीं कह सकता कि उन्होंने हिन्दी में क्यों लिखना शुरू किया। हां, अपने बारे में कह सकता हूँ कि मेरी पहली ज़बान तो उर्दू ही थी। उर्दू ही उन दिनों पंजाब में चलती थी। मैं भी उसमें लिखता था, उसमें ही सब कुछ कहता था। जब मेरे विवाह की बात हुई तो मुझे पता चला कि मेरी पत्नी ने अपने पिता से कहकर उर्दू सीखना शुरू कर दिया है। मेरे ससुर ने मुझे जब यह बात बताई तो वे थोड़ा मुस्करा दिए। मैं समझ गया कि मेरे काम में मदद देने की इच्छा से ही मेरी धर्मपत्नी ने उर्दू सीखना शुरू किया है। मैंने सोचा, अगर उसने मेरी खातिर उर्दू सीखना शुरू कर दिया है तो वह महाविद्यालय जालंधर में पढ़ी है, हिन्दी जानती है। मुझे भी तो साथ देना चाहिए। मैंने भी हिन्दी में लिखना शुरू किया। फिर, मैं हिन्दी में लिखकर मसौदा उन्हें दे देता था और वे उसमें अ, ई, उ की गलतियां ठीक कर देती थीं। और इस प्रकार हिन्दी में कहानी छप जाती थी। इसी तरह मैं धीरे-धीरे हिन्दी में आ गया।'

सुदर्शनजी के आरम्भिक लेखन के बारे में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से मैंने पूछा, 'सुना है, आप बचपन से ही कहानियां लिखने लग गए थे। कृपया बताएँ, आपके लेखन की शुरूआत कैसे हुई और किस प्रकार लिखने में आपकी रुचि बढ़ती गई ?' मेरा प्रश्न सुनकर वह सहसा मौन हो, अपने में खो गए। उनके चेहरे के बदलते भाव को देखकर स्पष्ट लग रहा था कि लगभग साठ वर्ष पहले का युग उनके स्मृति पट पर चल-चित्र की तरह उभर आया है। थोड़ी ही देर में उनके होंठ फड़के और वे कहने लगे, 'मैं छठी क्लास में पढ़ता था। उस ज़माने में लाहौर से एक उर्दू मासिक निकलता था जिसका नाम था 'मार्तण्ड'। उसको निकालने वाले थे बाबू शिवव्रतलाल वर्मन। वह राधास्वामी मत का कुछ प्रचार किया करते थे। उनका पर्चा देखकर मेरे मन में ख़याल पैदा हुआ कि मैं भी कुछ लिखूं। उस वक्त मेरे मिलने वाले एक आदमी ने कहा कि आजकल के ज़माने में मशहूर होने का तरीका यह है कि आदमी के मुंह

पर, शरीर पर, प्रेस की स्याही खूब मली जाय। जितनी स्याही मली जाएगी, उतना ही वह मशहूर होता चला जाएगा।

'मैंने सोचा कि मैं भी लिखना शुरू करूँ। चुनाचे मैंने कुछ लतीफे जमा किए और उनका शीर्षक रख दिया 'केसर की क्यारी'। लतीफे सारे इधर-उधर के सुने-सुनाए थे। उनमे अपना कुछ भी नही था। अपना कुछ था तो केवल 'केसर की क्यारी'। मुझे किसी ने बता दिया था कि केसर की क्यारी मे से कोई गुजरे तो हँसता-हँसता दोहरा हो जाता है। इसलिए मैंने इसका नाम 'केसर की क्यारी' रखा। उसके बाद तो यह नाम खूब चला। खैर, लतीफे छपकर आ गए। उस समय आर्यसमाज मे एक सज्जन काम करते थे, जिनका नाम था लाला गनपतराय, नक्ल-नवीस। मैं उनके पास पहुँचा और उन्हे लतीफे दिखाए। उन्होने लतीफे देखे और कहने लगे, "अरे भाई, इसमे तुम्हारा क्या है? एक लतीफा मुझसे सुना, एक उससे सुना; एक माँ से सुना और एक बाप से सुना—उन्हें जमा करके लिख दिया। इसमें क्या बात हुई? अपनी चीज कोई हो तो लिखो।" मैंने कहा, "ठीक है।" भागा-भागा घर चला आया, बैठ गया और सोचता रहा। मुझे ठीक याद तो नही, पर मेरा खयाल है कि मैं शायद एक दिन स्कूल भी नही गया और सोचता रहा कि क्या लिखू जिसको पढ़कर लाला गनपतराय मान जाएँ कि यह मेरी चीज है।

'मुझे एक रास्ता मिल गया। मैंने लैक्चरो मे सुने हुए वाक्यात जमा करने शुरू कर दिए। कोई बुद्ध का वाकया, कोई रामचन्द्र का वाकया तो कोई भीष्म पितामह का वाकया। सब किस्से जमा कर दिए और नाम रख दिया, 'चन्द दिलचस्प किस्से और उनसे मुफीद सबक।' आज भी मुझे याद आता है कि मैंने 'मुफीद सबक' लिखा था, हालाँकि सबक हमेशा ही मुफीद होता है। खैर, वह छप गया 'मार्तण्ड' मे, और मैं उसे लेकर लाला गनपतराय के पास पहुँचा। उन्होंने देखा और बोले, "अरे भाई, ये लतीफे जमा किए थे, ये सुनी-सुनाई कहानियाँ जमा कर ली हैं। इनमे तुम्हारी कौन-सी कहानी है। महात्मा बुद्ध की कहानी तुम्हारी है? रामचन्द्र की कहानी तुम्हारी है?" मैं चुप रह गया और सिर लटकाकर चुपके से

वापस चला आया।

'दो-तीन दिन तक मैं सोचता रहा और सोच-सोचकर एक मजमून लिख डाला, जिसका शीर्षक था 'कुछ कर लो' उसके ऊपर मैंने मौलाना हाली का एक शेर लिख दिया। शेर यह था—

कुछ कर लो नौजवानो, उठती जवानियाँ हैं।
अब बह रही है गंगा, खेतों को दे लो पानी॥

हर एक पैरा दस-पन्द्रह पंक्तियों का था और उसके आखिर में होता था, 'कुछ कर लो'। आज तुम जवान हो। आज तुम्हारे हाथों में ताकत है। आज तुम्हारे पांवों में ताकत है। चन्द दिनों के बाद बीमार पड़ जाओगे, कमजोर हो जाओगे। तुम्हारे हाथों से वक्त निकल जाएगा। आज तुम्हारे पास पैसा है किसी को दे सकते हो। चन्द दिन के बाद हो सकता है कि तुम्हारा दिवाला निकल जाए, तुम्हारी जेब में पैसा न रहे। कौड़ी-कौड़ी के लिए दूसरों के आगे हाथ फैलाना पड़े। इसलिए वह वक्त आने से पहले कुछ कर लो। उस वक्त रावलपिंडी से एक अखबार निकलता था—'शान्ति'। उसमें यह मजमून छपा था। 'इंटर्वल' में छुट्टी होती थी। मैं गया, बाजार से पर्चा खरीदा। दो पैसे में यह पर्चा मिलता था। मैंने देखा, मेरा मजमून छपा हुआ है।

'मैं जल्दी-जल्दी स्कूल पहुँचा। लेकिन जब मैं कमरे में घुसा तो देखा कि क्लास लग चुकी है और हैडमास्टर साहब लड़कों को कुछ पढ़कर सुना रहे हैं। मैंने सोचा कि मैं खलल न डालूं। इसलिए मैं पीछे ही बैठ गया। पर मैंने सुना कि वह तो मेरा मजमून ही पढ़कर सुना रहे हैं और उनकी आँखों में आँसू हैं। जब मजमून खत्म हुआ, लड़कों ने ताली बजाई। हैडमास्टर साहब ने मुझे कहा, "आगे आओ।" मैं आगे बढ़ा तो उन्होंने लड़कों से पूछा, "तुम जानते हो, यह मजमून किसका लिखा हुआ है ?" उन्होंने मेरा मुँह पकड़कर लड़कों की तरफ घुमा दिया और कहा, "इसने लिखा है ?" और मुझे कहा, "तुम कोशिश करते रहो, मुमकिन है किसी दिन अच्छे लेखक बन जाओ।" मैं बहुत खुश हुआ और इन्तजार करने लगा कि कब छुट्टी की घंटी बजे और मैं लाला गनपतराय के पास पहुँचूं।

'जब छुट्टी हुई मैं भागा-भागा गया गनपतराय जी के पास। वे अभी दफ्तर से नहीं आए थे। मैं उनके दरवाज़े पर बैठकर इन्तज़ार करने लगा। वे आए, तो मैंने चार कदम आगे बढ़कर कहा, "लाला जी, यह देखिए, मेरा मज़मून छपा है।" उन्होंने कहा, "जा-जा, देख लूगा, मुझे साँस तो लेने दे।" मैं पीछे-पीछे चला गया। वे उपर चढ़ गए। वे एक तरफ बैठ गए और मैं दूसरी तरफ। पुरानी प्रथा थी। उनकी बीवी पानी लाई। उन्होंने हाथ-मुँह धोया। सिर पर हाथ फेरा। उनकी बीवी दूध का गिलास लाई। उन्होंने दूध पी लिया। मूछों पर हाथ फेरा, कपड़े से मुह पोछा, फिर बोले, "ला, क्या लिखा है।" मैंने मज़मून आगे कर दिया। उन्होंने पढ़ा, और पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखो से आँसू बहने लगे। मैं देख रहा था और हैरान हो रहा था—हैं, गनपतराय की आँखो में आँसू? वे पढ़कर उठे। मेरी पीठ पर थपकी दी और बोले, "भाई कमाल है, आज मैंने जान लिया कि तुम लेखक बन गए। इसी तरह लिखा करो तो अच्छे लेखक बन जाओगे।"

'मैं भागने लगा। घरवालो को भी तो दिखाना था, दोस्तो को भी तो बताना था। पर उन्होंने पकड़कर कहा, "बैठ जाओ।" अपनी बीवी को आवाज़ दी कि दूध का गिलास लाए। गिलास आया, उसमें खूब मलाई थी। मैंने पी लिया। वह पहली उजरत थी जो मुझे मिली। इस तरह मेरा लिखना शुरू हो गया।'

चर्चा को कहानी कला की ओर मोड़ते हुए मैंने पूछा, 'आपने बढ़िया से बढ़िया कहानियाँ लिखी हैं और खूब लिखी हैं। आपके विचार में सफल कहानी का सबसे बड़ा गुण क्या होना चाहिए।' सुदर्शन जो का दो टूक उत्तर था, 'सफल कहानी का सबसे बड़ा गुण, या कह लें सबसे छोटा गुण तो भी चलेगा, यह है कि वह कहानी हो। यानी कहानी पढ़ने वाले ऊब न जाएँ। कहानी पढ़ने वाले की दिलचस्पी अन्त तक बनी रहे। एक तो यह, और दूसरी बात यह कि कहानी को पढ़ने के बाद पाठक को मालूम हो कि वह कुछ ऊँचा उठा है। यदि कहानी पढ़ने के बाद उसे ऐसा महसूस नहीं होता तो मैं समझता हूँ कि कहानी लिखना बेकार गया।'

उन्हें आज के कहानीकार की धारणा से अवगत कराते हुए मैंने कहा, 'तो आप यह मानते हैं कि कहानी पढ़कर पाठक को उसमें से कुछ मिले यानी अपनी कहानी में कहानीकार पाठक को कुछ दे जरूर। लेकिन आजकल कोई कहानीकार अपनी कहानी में कुछ देने की कोशिश करे, कुछ सिखाने की चेष्टा करे, तो लोग उसे पिछड़ा हुआ लेखक मानते हैं। इस बारे में आपकी राय जानना चाहूँगा।' उत्तर में सुदर्शन जी ने थोड़ा चमत्कृत होकर मुझसे ही पूछ लिया, 'तो क्या कहानी ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें कहानीकार कुछ दे न, पर पाठक का समय ले ले? समय जो किसी और काम आ सकता था, जिसमें कुछ भला हो सकता था वह तो उसने ले लिया, पर दिया कुछ नहीं। मैं तो समझता हूँ, लेखक का काम देना है, लेना नहीं, बस।'

सुदर्शन जी की कहानी 'हार की जीत' के विषय में मैंने जिज्ञासा की: 'जितनी विख्यात आपकी कहानी 'हार की जीत' हुई है उतनी शायद ही कोई अन्य कहानी हुई हो। क्या आप भी उसे अपनी सर्वश्रेष्ठ कहानी मानते हैं?' वे बोले, 'यदि आपका मतलब बढ़िया कहानी से यह है कि वह बहुत ज्यादा बिके, बहुत ज्यादा पढ़ी जाए, तो यह ठीक है कि इस कहानी ने मुझे पैसा बहुत ही दिया। मुझे याद है कि जब मैं लाहौर में था, तब मैंने यह कहानी लिखी थी। तब इसका नाम था, 'बाबा भारती का घोड़ा'। यह मैंने 'मिलाप' अखबार के सम्पादक लाला खुशहालचन्द 'खुरसंद' को जो अब महात्मा आनन्द स्वामी हैं, भेज दी। उन्होंने कहानी छाप दी। कहानी छपने के तीन-चार दिन बाद जब मैं उनसे मिलने गया तो उन्होंने पांच रुपए का एक नोट मेरी जेब में डाल दिया। मैंने उनके सामने नोट निकाल कर देखा और कहा, 'बस, इतना ही'! वे बोले, 'अरे सुदर्शन, मैंने तुम्हें सबसे ज्यादा उजरत दी है। डेढ़ कालम की कहानी और पाँच रुपये। ढाई कालम होता तो भी कुछ बात थी।' उसके बाद वह पाठ्य-क्रम में आ गई 'हार की जीत' के नाम से। कुछ दिन हुए मैंने हिसाब लगाकर देखा कि उससे मुझे कुल मिलाकर ज्यादह नहीं तो कम से कम साढ़े बारह हजार रुपये मिले हैं। जो उसे लेना चाहता

है, जो मुझसे कहानी छापने की आज्ञा माँगता है, मैं उससे एक सौ पच्चीस रुपये माँगता हूँ। मुझे एक सौ पच्चीस रुपये मिल जाते हैं और उनका काम चल जाता है।

'इस कहानी ने मुझे पैसा तो खूब दिया है। पर मैं मानता हूँ कि यह मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी नहीं है। सर्वश्रेष्ठ कहानी का अगर यह मतलब है कि पाठक को अपने में उलझा ले, उसके दिमाग पर कब्जा कर ले, उसे सोचने पर मजबूर कर दे, पाठक अपने अन्दर घुलता रहे और सोचता रहे कि उसने ऐसा क्यों कर दिया, वैसा क्यों कर दिया, तब तो यह सफल कहानी नहीं है। पर एक बात है कि इस कहानी को पढ़ने के बाद शिक्षा जरूर मिलती है और वह यह कि अगर कोई वैसा काम करे जैसा कि डाकू खड़कसिंह ने किया था तो फिर गरीब पर कोई विश्वास नहीं करेगा। उससे यही शिक्षा आजकल भी ली जाती है। जो लोग उसे लेते हैं, वे इसीलिए लेते हैं।'

चर्चा को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, 'आपके उत्तर से लगता है कि *'हार की जीत' के अलावा आपकी और भी कई कहानियाँ हैं जो आपको* बहुत प्यारी हैं और जिन्हें आप बढ़िया मानते हैं। उनमें सबसे बढ़िया आप किसे मानते हैं?' सुदर्शन जी का उत्तर बड़ा प्यारा था, 'कहानियाँ लेकर कोई मुझसे यह सवाल करे कि मेरी कौन-सी कहानी सबसे अच्छी है, सबसे प्यारी है तो मुझे लगता है कि मुझसे यह पूछा जा रहा है कि तुम्हारी कौन सी उँगली सबसे अच्छी है; तुम्हें अपना कौन सा बेटा सबसे प्यारा है। बेटे सब प्यारे होते हैं और किसी भी उँगली में कुछ चुभे तो दर्द जरूर होता है। लेकिन अब आपने पूछा है तो मैं सोचता हूँ कि मैं कौन-सी कहानी आपके सामने यह कहकर रखूँ कि यह मेरी सबसे अच्छी कहानी है।'

'हाँ, एकाएक मुझे खयाल आया है, मेरी एक कहानी है 'तीर्थयात्रा'। वह मुझे काफी अच्छी लगती है। एक और मेरी किताब है 'झरोखे' जो खलील जिब्रान के रंग में रँगी हुई है। उसमें छोटी-छोटी कहानियाँ हैं। इसमें एक वाक्य बयान कर दिया जाता है, कहा कुछ नहीं जाता, छोड़

दिया जाता है। पर भाषा उसकी अरबी 'स्टाइल' पर है, वे कहानियां मुझे बहुत पसन्द हैं। आपके सवाल का मैंने बड़े अजीब ढंग से उत्तर दिया है। आपने सबसे अच्छी कहानी पूछी है और मैं अच्छी कहानियां बता रहा हूं। मैंने एक और पुस्तक लिखी है 'मीठा पेड़ और कड़वा फल'; यह नावल भी है और कहानी भी। मैं समझता हूं कि आज तक मैंने जो कहानियां लिखी हैं उनमें शायद वह सबसे अच्छी है। वैसे, मेरी सबसे अच्छी कहानी अभी लिखी जाने वाली है।'

सुदर्शनजी की बीसियों कहानियां निकली हैं, पर उनका उपन्यास मेरे देखने में एक ही आया है—'प्रेम पुजारिन'। इसलिए मैंने कहा, 'आपने कहानियां तो खूब लिखी हैं और बढ़िया लिखी हैं, पर उपन्यास आपका केवल एक है—'प्रेम पुजारिन'। कृपया बताएं, आपने यह उपन्यास कब लिखा और उसके बाद आप उपन्यास लिखने में क्यों प्रवृत्त नहीं हुए।' कहानी-लेखन की ओर अपने अधिक झुकने का कारण बताते हुए वे बोले, 'उस समय मैंने सोचा था कि लोगों के पास ज्यादा समय नहीं है। एक उपन्यास पढ़ने के लिए कई दिन चाहिएं। मैंने सोचा ऐसी चीज लिखूं जो घंटे आध घंटे में पढ़ी जा सके और उसका मतलब पूरा हो। जब मैं स्वयं उपन्यास पढ़ता था तो मुझे लगता था कि जब तक वह पूरा न हो जाए, मैं खाना न खाऊं, कुछ और काम न करूं। औरों के साथ भी ऐसा होता होगा। इसलिए मैंने लोगों का समय बचाने के लिए कहानियां लिखीं।

'पर यह कहना गलत है कि मैंने एक ही उपन्यास लिखा है। मैंने अभी आपको बताया है कि मैंने एक उपन्यास लिखा है 'मीठा पेड़ कड़वा फल'। एक और उपन्यास लिखा है—'परिवर्तन'। और भी लिखे हैं—पर वे सब लम्बी कहानी का रूप धारण कर जाते हैं। हां, सन् १९३१ में मैंने एक और उपन्यास लिखना शुरू किया था—उसका नाम था 'गुलाम'। वह वहां से शुरू किया था जब जवाहरलाल नेहरू रावी के किनारे आते हैं और ऐलान करते हैं कि पूर्ण स्वतन्त्रता हमारा ध्येय है। उसके अस्सी पृष्ठ मेरे पास लिखे पड़े हैं। पर उसके बाद कुछ ऐसे हालात हो गए कि

मैं उसे फिर पकड़ न सका। अब जब कई चीजें दिमाग में उभर रही हैं कि कुछ लिखूं, जो पुरानी चीजें पड़ी हैं, उनको भी पूरा करूं, तो तब लगता है 'गुलाम' को भी पूरा कर दूंगा।'

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द से सुदर्शनजी का बड़ा निकट का सम्बन्ध रहा है, यह जानकर मैंने जिज्ञासा व्यक्त की, 'प्रेमचन्द जी से आपकी घनिष्ठता रही है। कृपया बताएँ आप पहले-पहल कब उनके सम्पर्क में आए और वह घनिष्ठता कैसे बढ़ी ?'

प्रश्न का स्वागत करते हुए सुदर्शनजी बोले, 'सन् १९१५ या १६ की बात है। मैं लाइब्रेरी जाया करता था और वहाँ अखबार पढ़ा करता था। वहाँ एक पर्चा आया करता था जिसका नाम था 'जमाना'। वह कानपुर से निकलता था। मुंशी दयानारायण निगम उसके सम्पादक थे। उसमें एक कहानी छपी—'विक्रमादित्य का तेगा'। वह कहानी प्रेमचन्द की थी। उसे पढ़कर मुझपर इतना असर हुआ कि मैं मन ही मन उनका शिष्य बन गया। उसके बाद मैंने एक कहानी लिखी। वह कहानी 'जमाना' में छप गई। उसे पढ़कर प्रेमचन्द जी ने 'जमाना' की मार्फत मुझे चिट्ठी लिखी। उसमें उन्होंने लिखा —"भाई सुदर्शन, तुम्हारी कहानी मैंने पढ़ी है। उसे पढ़कर मुझे शुबह हुआ है कि यह कहानी मैंने लिखी है। सारा का सारा 'स्टाइल', सारा रंग मेरा है। मुझे समझ में नहीं आता कि आपने यह कहानी कैसे लिखी। बहरहाल, मैं आपको मुबारकबाद देता हूँ।"

'इसके बाद उनसे खतोकिताबत शुरू हो गई। मैं लिखता, वे तारीफ करते। मैंने पर्चा निकाला, उन्होंने मेरी मदद की। उसके बाद सन् १९२५ में मैं बनारस गया और सोचा कि प्रेमचन्द जी से मिलना चाहिए। मैं उनके गाँव गया तो पता चला कि वे बनारस गए हुए हैं। मैंने किसी से कागज पेंसिल ली और एक चिट्ठी लिखकर छोड़ आया—चिट्ठी क्या बस एक शेर था—

> नसीब हो न सकी, दौलते कदम बोसी,
> अदब से चूम कर हजरत का आस्ताना चले।

'अपना नाम लिखा और उस होटल का पता लिख दिया जहाँ मैं ठहरा हुआ था। दूसरे दिन प्रेमचन्दजी आए। मैं गंगा नहाने गया था। वे आए और मेरे दरवाजे पर बैठ गए। जब मैं नहाकर लौटा तो मैंने उनसे कहा, "एक तरफ हट जाइए।" वे हट गए। मैं दरवाज़ा खोलकर अन्दर चला गया। मैंने कहा, "अन्दर आ जाइए।" वे अन्दर आ गए। उन्होंने नहीं बताया कि वे प्रेमचन्द हैं। मैंने पूछा, "आपका शुभ नाम?" उन्होंने कहा, "मुझे धनपतराय कहते हैं।" मैंने कहा, "यानी?" वे कहने लगे, "यानी प्रेमचन्द।" मैं एकदम उनके पाँव छूने को हुआ। उन्होंने बीच में ही पकड़ लिया। फिर खूब बातचीत हुई। सुबह के आए थे रात हो आई। खाना भी वहीं खाया।

'एक बार ऐसा हुआ कि प्रेमचन्द लाहौर में आए हुए थे और वहाँ 'हज़ारा' होटल में ठहरे हुए थे। वे उसे हज़ारा होटल न कहकर 'लाखा' होटल कहा करते थे। वे कहते थे, "कोई सुनेगा तो क्या कहेगा—प्रेमचन्द बस हज़ारा होटल में ठहरे हैं। इसलिए भाई हज़ारा नहीं, लाखा होटल कहो।" उसी ज़माने में वे एक दिन मेरे मकान में बैठे थे। शाम का वक्त था। मैंने उन्हें बताया, "गाँधी जी ने कहा है कि सुराज के बाद किसी की तनख्वाह ५०० रुपए से ज्यादा नहीं होगी। भला सोचिए, ५०० रुपए में कौन मिनिस्टर बनना चाहेगा।" प्रेमचन्द हँसे और कहने लगे, "अरे भाई, यह भी कोई सोचने की बात है। दो तो हैं ही—एक तुम और दूसरा मैं। मेरे और तुम्हारे सिवा और कौन इस मैदान में उतरेगा?" उसके बाद खूब ठहाके लगे।

'एक घटना मुझे और याद आ गई प्रेमचन्द जी के बारे में। एक दिन एक साहब हमारे यहाँ चाय पर आए कानपुर में। वे शायर थे। हम कमरे में बैठे थे। बाहर अँधेरा था। अँधेरे में मेरी पत्नी बैठी थीं। उसके हाथ में एक छड़ी थी। कुछ काम तो उस समय उसे था नहीं। छड़ी से ज़मीन कुरेद रही थी। अन्दर हमारी बातचीत होने लगी। इतने में उस शायर ने एक वाक्य कह दिया स्वामी दयानन्द की शान के खिलाफ, "दयानन्द में तो इतना ज्ञान भी नहीं था जितना मेरे टूटे हुए जूते के टूटे हुए तलुए में।" मैंने

टालने की कोशिश की, पर वे उस वाक्य को दुहराते ही गए। यह सुनकर मेरी धर्मपत्नी को गुस्सा आ गया। वे छड़ी लेकर कमरे में आ गईं और उस पर गरजती हुई गुस्से से बोली, "उठ, चल, निकल यहाँ से। नहीं तो अभी मरम्मत कर दूंगी। हमारे मकान में आकर हमारी छत के नीचे बैठकर, हमारी चाय पीकर, तू ऐसी बेजा बात करता है। शर्म कर।" वे शायर साहब चौंक उठे, बहुत शर्मिन्दा हुए और कहने लगे, "मुझे माफ करें। गलती हो गई। मुझे पता नहीं था कि आप सुन रही हैं।" मेरे कहने पर मेरी पत्नी बाहर चली गईं। मैंने कहा, "आपने भी गजब कर दिया।" उन्होंने कहा, "मुझे पता ही कब था कि कोई सुन रहा है, मैं तो मजाक कर रहा था। मैं सीरियस ही कब होता हूँ?" बाद में उन्होंने खुद ही आवाज दी—"भाभी जी, पान मँगवाइएगा। मैं पान खाकर जाऊँगा।" पान आ गया। पान खाकर वे बाहर चल दिए। मैं भी उन्हें छोड़ने साथ गया। मैंने कहा, "भाई, आज तो जो कुछ हुआ है, उसके लिए मैं माफी माँगता हूँ। अजीब वाकया हो गया।" उन्होंने कहा, "इसमें क्या बात है, भाई! मेरी बड़ी बहन भी तो जब मैं कोई बेहूदा बात करता हूँ मेरे कान ऐंठ देती है। यह भी तो मेरी बड़ी बहन के बराबर हैं।"

'दूसरे-तीसरे दिन यह बात मुंशी दयानारायण निगम ने सुन ली। उसके एक दिन बाद ही प्रेमचन्द वहाँ आ गए। और उन्होंने भी यह बात सुनी। वे हमारे यहाँ चाय पर आए। उधर से वे शायर साहब भी आ गए। बातचीत शुरू हुई। जो बात मेरी पत्नी कहें शायर साहब उसकी हाँ-में-हाँ मिलाएँ। वह गलत बात कहें, तो उसका भी समर्थन कर दें। एक तरफ मैं और प्रेमचन्द थे और दूसरी तरफ मेरी धर्मपत्नी और वे शायर साहब। एक बार मैंने प्रेमचन्द की तरफ देखकर इशारा किया। वे ठहाका मारकर हंस पड़े। मैंने पूछा, "हँसते क्यों हैं?" उन्होंने कहा, "भाई, हँसता इसलिए हूँ कि जिस घटना की वजह से ये हिमायत कर रहे हैं, वह मैंने सुन ली है।" उसके बाद शायर साहब बहुत शर्मिन्दा हो गए और बात आई-गई हो गई। इस प्रकार प्रेमचन्द जी के साथ घनिष्ठता बढ़ती गई। जब भी मिलते रात-रात भर बातें होती।' जब सुदर्शनजी

अपने कवि मित्र का यह किस्सा मुझे सुना रहे थे, श्रीमती गुदर्शन पास बैठी मुस्करा रही थीं। गुदर्शनजी ने बात समाप्त की तो वे बोलीं, 'अब तो यह पुरानी बात सुनकर हँसी आती है, पर उस समय मेरा खून खौल रहा था। उनके वे मित्र क्षमा न मांगते तो न जाने उस दिन मैं क्या कर बैठती ?'

गुदर्शनजी फिल्मी दुनिया में भी रहे थे। उनके वहां के अनुभव जानने की इच्छा से मैंने पूछा, 'आपने अपना नाटक 'सिकन्दर' प्रसिद्ध फिल्म निर्माता और निर्देशक सोहराब मोदी को समर्पित किया है इससे लगता है कि फिल्म-जगत् से आपकी खूब पटती थी, जबकि फिल्म जगत् हिन्दी के अधिकांश लेखकों को रास नहीं आया और वे शीघ्र ही उससे पिंड छुड़ाकर साहित्य जगत् में लौट आए। प्रेमचन्द का उदाहरण हमारे सामने है। फिल्मी दुनिया के अपने खट्टे-मीठे अनुभवों के आधार पर बताने की कृपा करें कि आपकी उन लोगों से कैसे निभ जाती थी।'

अपने अनुभव बताते हुए गुदर्शनजी बोले, 'फिल्मी नाटक के लिए इस बात की बहुत जरूरत होती है कि डायरेक्टरों और प्रोड्यूसरों की बात सुनी जाए। लेखक के पास ऐसी आंख होनी चाहिए कि वह जो कुछ लिखे उसे पर्दे पर उतारा जा सके। मेरे ख्याल में प्रेमचन्द जी बहुत अच्छे फिल्मकार बन सकते थे यदि वे प्रोड्यूसरों और डायरेक्टरों की बात सुनते। लेकिन उन्होंने प्रोड्यूसरों की बात सुनी और टाल दी। नतीजा यह हुआ कि उन लोगों को लगा यह आदमी हमारा हाथ नहीं बँटा सकता है - मेरे साथ कई बार ऐसा हुआ कि मेरे पास पचास-पचास पृष्ठ लिखे हुए हैं। प्रोड्यूसरों और डायरेक्टरों ने कहा, 'भाई, यह नहीं चलेगा, कुछ और लिखो।' मैं उनसे बिना पूछे कि क्या करूँ, क्या न करूँ, लौट आया और खुद सोचकर उसे फिर से लिख दिया। लेकिन मैंने उनका सुझाव कि यह करो या यह न करो, कभी नहीं माना। सुझाव मेरा हमेशा अपना ही होता था। उन्हें लगता था कि यह आदमी हमारी मदद कर सकता है। दूसरे, उस वक्त या आज से दस साल पहले की फिल्में 'डायलॉग' पर बहुत निर्भर करती थीं। मेरे डायलॉग जो मैंने 'सिकन्दर', 'भाग्य चक्र' और दूसरी फिल्मों के लिए लिखे पर्दे पर खूब उतरे थे।

ग्रौर मुझे ग्रादमी वे मिल गए जो उन्हे उधार देते थे। इसलिए वे चीज़ें चल निकलीं।'

ग्राज की कहानी के बारे मे सुदर्शन जी की प्रतिक्रिया जानने की दृष्टि से मैंने पूछा, 'ग्राज का पाठक ग्रापकी कहानियाँ पढता है तो ग्राप भी ग्राज की कहानियाँ पढते होगे—बहुत नही तो थोडी ही सही। उन्हे पढकर ग्रापकी क्या प्रतिक्रिया होती है? उस प्रतिक्रिया के ग्राधार पर ग्राप ग्राज के कहानीकार को क्या सन्देशा देना चाहेगे?' वे होठो पर शरारत-भरी मुस्कान लिए बोले, 'मैं ग्रब भी कहानियाँ पढता हूँ, पर पढता हूँ कभी-कभी। बस, यह जानने के लिए कि कलम की दुनिया किधर जा रही है। लेकिन कुछ कहानियाँ पढने के बाद मुझे लगा है कि मैं इस कलम की दुनिया मे ग्रजनबी हूँ। मालूम होता है कि इसमे मेरा कही कोई स्थान नही है। इसलिए चुप हो जाता हूँ। ग्रभी कल मैंने एक नई कहानी पढी। मेरी समझ मे नही ग्राई। मैंने ग्रपने लडके से कहा, पत्नी से कहा कि उसे पढकर बताएँ कि उसमे क्या था? सबने पढी ग्रौर कहा कि वह उनकी भी समझ मे नही ग्राई।

'यह सुनकर मुझे बचपन की एक घटना याद ग्रा गई। मैं ग्रार्यकुमार सभा का मन्त्री था। हर सप्ताह समाज के सत्सग मे ग्रच्छे वक्ता ग्राया करते थे ग्रौर हम लोग नियमपूर्वक उनके भाषण सुना करते थे। एक बार कोई जरूरी काम ग्रा पड़ा ग्रौर मैं सत्सग मे न जा सका। शाम को कुमार सभा का सहायक मत्री, जो मेरा मित्र भी था, मेरे पास ग्राया ग्रौर बोला, "ग्ररे, सुदर्शन! ग्राज तुम कहाँ रहे! ग्राज का लेक्चर बहुत बढिया था, बस मजा ग्रा गया। इतना ग्रच्छा लेक्चर हमने कभी सुना ही नही।" मुझे उस दिन सत्सग मे न जा सकने का बडा ग्रफसोस हुग्रा ग्रौर मैंने पूछा, "भाई, यह तो बता दो कि भाषण मे वह क्या था जो तुम्हे बहुत ग्रच्छा लगा।" उसने कहा, "यार, भाषण इतना बढिया था, इतना ऊँचा था कि हमारी समझ मे तो कुछ नही ग्राया, पर सब लोग उसकी तारीफ कर रहे थे।" यही बात ग्राज की कहानी की है। ग्राजकल उसी कहानी को ग्रच्छा माना जाता है जो समझ मे न ग्राए। ग्राज की कहानी जो

है—मैं सबके बारे में नहीं कहता—वह एक पहेली है। उस पहेली को जो समझ सके वह समझ ले। जो न समझ सके वह अपना सिर फोड़कर बैठ जाए।

'अब रही सन्देश की बात। कई वर्ष पहले मैंने एक नये लेखक से कहा था, "भाई, सोचकर लिखो कि तुम क्या लिख रहे हो। अगर पाठक उसमें से कुछ ले सकता है तो मुबारकबाद है। अगर नहीं लेता तो तुम्हारा लिखना, प्रेस का छापना, डाकिए का वहाँ ले जाना—सब कुछ बेकार गया।" उस लेखक ने मेरी बात मान ली। पुराना होते हुए भी उसकी गिनती आज के नए लेखकों में होती है। लेखकों से तो मैं यही कहूँगा कि हर लेखक लिखते वक्त यह सोच लिया करे कि उसके लिखने से किसी को कुछ फायदा होता है या नहीं। उसके लिखने से देश का भला होता हो, राष्ट्र का उत्थान होता हो तो उसका लिखना सार्थक है, वरना उसे कोई और धन्धा कर लेना चाहिए; और यह लिखने का काम औरों के लिए छोड़ देना चाहिए।'

राहुल सांकृत्यायन

अथातो घुमक्कड - जिज्ञासा

संस्कृत से ग्रंथ को शुरू करने के लिए पाठकों को रोष नहीं होना चाहिए। आखिर हम शास्त्र लिखने जा रहे हैं, फिर शास्त्र की परिपाटी को मानना ही पड़ेगा। शास्त्रों में जिज्ञासा ऐसी चीज के लिए होती बतलायी गयी है जो कि श्रेष्ठ तथा व्यक्ति और समाज के लिए परम हितकारी हो। व्यास ने अपने शास्त्र में ब्रह्म को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसे जिज्ञासा का विषय बनाया। व्यास-शिष्य जैमिनी ने धर्म को श्रेष्ठ माना। पुराने ऋषियों से मतभेद रखना हमारे लिए पाप की वस्तु नहीं है, आखिर छ शास्त्रों के रचयिता छ आस्तिक ऋषियों में भी आधों ने ब्रह्म को धता बता दी है। मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कडी। घुमक्कड से बढकर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता। कहा जाता है, ब्रह्मा को सृष्टि करने के लिए न प्रत्यक्ष प्रमाण सहायक हो सकता है, न अनुमान ही। हाँ, दुनिया के धारण की बात तो निश्चय ही न ब्रह्मा के ऊपर है, न विष्णु के और न शकर के ही ऊपर। दुनिया दुख में हो चाहे सुख में सभी समय यदि सहारा पाती है तो घुमक्कडो की ही ओर से। प्राकृतिक आदिम मनुष्य परम घुमक्कड था। खेती, बागवानी तथा घरद्वार से मुक्त वह आकाश के पक्षियों की भाँति पृथ्वी पर सदा विचरण करता था, जाडे में यदि इस जगह था तो गर्मियों में वहाँ से दो सौ कोस दूर।

आधुनिक काल में घुमक्कडों के काम की बात कहने की आवश्यकता है, क्योंकि लोगो ने घुमक्कडो की कृतियों को चुरा के उन्हें गला फाड-फाड़कर अपने नाम से प्रकाशित किया है, जिससे दुनिया जानने लगी कि वस्तुत तेली के कोल्हू के बैल ही दुनिया में सब कुछ करते हैं। आधुनिक विज्ञान में चार्ल्स डारविन का स्थान बहुत ऊचा है। उसने प्राणियों की उत्पत्ति

और मानव-वंश के विकास पर ही अद्वितीय खोज नहीं की, बल्कि कहना चाहिए कि सभी विज्ञानों को डारविन के प्रकाश में दिशा बदलनी पड़ी। लेकिन, क्या डारविन अपने महान् आविष्कारों को कर सकता था, यदि उसने घुमक्कड़ी का व्रत न लिया होता ?

मैं मानता हूँ, पुस्तकें भी कुछ-कुछ घुमक्कड़ी का रस प्रदान करती हैं, लेकिन जिस तरह फोटो देखकर आप हिमालय के देवदारु के गहन वनों और श्वेत हिम-मुकुटित शिखरों के सौन्दर्य, उनके रूप, उनकी गन्ध का, अनुभव नहीं कर सकते, उसी तरह यात्रा-कथाओं से आपको उस बूँद से भेंट नहीं हो सकती जो कि एक घुमक्कड़ को प्राप्त होती है। अधिक से अधिक यात्रा-पाठकों के लिए यही कहा जा सकता है कि दूसरे धन्धों की अपेक्षा उन्हें थोड़ा आलोक मिल जाता है और साथ ही ऐसी प्रेरणा भी मिल सकती है जो स्थायी नहीं तो कुछ दिनों के लिए तो उन्हें घुमक्कड़ बना ही सकती है। घुमक्कड़ क्यों दुनिया की सर्वश्रेष्ठ विभूति है ? इसीलिए कि उसी ने आज की दुनिया को बनाया है। यदि आदिम पुरुष एक जगह नदी या तालाब के किनारे गर्म मुल्क में पड़े रहते, तो वह दुनिया को आगे नहीं ले जा सकते थे। आदमी की घुमक्कड़ी ने बहुत बार खून की नदियाँ बहायी हैं, इसमें सन्देह नहीं, और घुमक्कड़ों से हम हरगिज नहीं चाहेंगे कि वे खून के रास्ते को पकड़ें, किन्तु घुमक्कड़ों के काफले न आते-जाते, तो सुस्त मानव जातियाँ सो जातीं और पशु से ऊपर नहीं उठ पातीं। आदिम घुमक्कड़ों में से आर्यों, शकों, हूणों ने क्या-क्या किया, अपनी खूनी पंथों द्वारा मानवता के पथ को किस तरह प्रशस्त किया, इसे इतिहास में हम उतना स्पष्ट वर्णित नहीं पाते, किन्तु मंगोल घुमक्कड़ों की करामातों को तो हम अच्छी तरह जानते हैं। बारूद, तोप, कागज, छापाखाना, दिग्दर्शक चश्मा यही चीजें थीं, जिन्होंने पश्चिम में विज्ञान-युग का आरम्भ कराया और इन चीजों को वहाँ ले जाने वाले मंगोल घुमक्कड़ थे।

कोलम्बस और वास्को डि गामा दो घुमक्कड़ ही थे, जिन्होंने पश्चिमी देशों के आगे बढ़ने का रास्ता खोला। अमेरिका अधिकतर निर्जन-सा पड़ा था। एशिया के कूप-मंडूकों को घुमक्कड़ धर्म की महिमा भूल गयी,

इसलिए उन्होने अमेरिका पर अपनी झडी नही गाडी। दो शताब्दियो पहले तक आस्ट्रेलिया खाली पडा था। चीन और भारत की सभ्यता का बडा गर्व है, लेकिन इनको इतनी अक्ल नही आई कि जाकर वहाँ अपना झडा गाड आते। आज अपने ४०-५० करोड की जनसख्या के भार से *भारत और चीन की भूमि दबी जा रही है, और आस्ट्रेलिया मे एक करोड* भी आदमी नही हैं। आज एशियाइयो के लिए आस्ट्रेलिया का द्वार बन्द है, लेकिन दो शती पहले वह हमारे हाथ की चीज थी। क्यो भारत और चीन, आस्ट्रेलिया की अपार सम्पत्ति और अमित भूमि से वचित रह गए? इसीलिए कि घुमक्कड धर्म से विमुख थे, उसे भूल चुके थे।

हाँ, मैं इसे भूलना ही कहूँगा, क्योकि किसी समय भारत और चीन ने बडे-बडे नामी घुमक्कड पैदा किये ये भारतीय घुमक्कड ही थे, जिन्होने *दक्षिण पूरब मे लका, वर्मा, मलाया, यवद्वीप, स्याम, कम्बोज, चम्पा, बोर्नियो* और सैलीबीज ही नही, फिलीपाइन तक का धावा मारा था, और एक समय तो जान पडा कि न्यूजीलैण्ड और आस्ट्रेलिया भी वृहत्तर भारत के अग बनने वाले हैं। लेकिन कूप-मडूकता तेरा सत्यानाश हो। इस देश के बुद्धुओ ने उपदेश करना शुरू किया कि समुन्दर के खारे पानी और हिन्दू धर्म मे बड़ा बैर है, उसे छूने मात्र से वह नमक की पुतली की तरह गल जायगा। इतना बतला देने पर क्या कहने की आवश्यकता है कि समाज *के कल्याण के लिए घुमक्कड धर्म कितनी आवश्यक चीज है? जिस जाति* या देश ने इस धर्म को अपनाया, वह चारो फलो का भागी हुआ, और जिसने इसे दुराया, उसको नरक मे भी ठिकाना नही। आखिर घुमक्कड धर्म को भूलने के कारण ही हम सात शताब्दियो तक धक्का खाते रहे, ऐरे-गैरे जो भी आये हमे चार लात लगाते रहे।

शायद किसी को सन्देह हो कि मैंने इस शास्त्र मे जो युक्तियाँ दी है वे सभी तो लौकिक तथा शास्त्र-अग्राह्य हैं। अच्छा तो धर्म से प्रमाण लीजिए। दुनिया के अधिकाश धर्मनायक घुमक्कड रहे। धर्माचार्यों मे आचार-विचार, बुद्धि और तर्क तथा सहृदयता मे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध घुमक्कड-राज थे। यद्यपि वह भारत से बाहर नही गये लेकिन वर्ष के तीन मासो को

छोड़कर एक जगह रहना वह पाप समझते थे; वह अपने आप ही घुमक्कड़ नहीं थे, बल्कि आरम्भ में ही अपने शिष्यों से उन्होंने कहा था—'चरथ भिक्खवे ! चारिकं' जिसका अर्थ है—'भिक्षुओ ! घुमक्कड़ी करो।' बुद्ध के भिक्षुओं ने अपने गुरु की शिक्षा को कितना माना, क्या इसे बताने की आवश्यकता है ? क्या उन्होंने पश्चिम में मकदूनियाँ तथा मिश्र से पूरब में जापान तक, उत्तर में मंगोलिया से लेकर दक्षिण में बाली और बांका के द्वीपों तक को रौंदकर रख नहीं दिया ? जिस वृहत्तर भारत के लिए हरेक भारतीय को उचित अभिमान है, क्या उसका निर्माण इन्हीं घुमक्कड़ों की चरण धूलि ने नहीं किया ? केवल बुद्ध ने ही अपनी घुमक्कड़ी से प्रेरणा नहीं दी, बल्कि घुमक्कड़ों का इतना जोर बुद्ध से एक-दो शताब्दियों पूर्व भी था, जिसके कारण ही बुद्ध जैसे घुमक्कड़-राज इस देश में पैदा हो सके। उस वक्त पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ तक जम्बू-वृक्ष की शाखा ले, अपनी प्रखर प्रतिभा का जौहर दिखाती, बाद में कूप-मंडूकों को पराजित करतीं सारे भारत में मुक्त होकर विचरण करती थीं।

कई-कई महिलाएँ पूछती हैं—क्या स्त्रियाँ भी घूमक्कड़ी कर सकती हैं, क्या उनको भी इस महाव्रत की दीक्षा लेनी चाहिए ? इसके बारे में तो अलग अध्याय ही लिखा जाने वाला है, किन्तु यहाँ इतना कह देना है कि घुमक्कड़ धर्म ब्राह्मण-धर्म जैसा संकुचित धर्म नहीं है, जिसमें स्त्रियों के लिए स्थान न हो। स्त्रियाँ इसमें उतना ही अधिकार रखती हैं, जितना पुरुष। यदि वे जन्म सफल करके व्यक्ति और समाज के लिए कुछ करना चाहती हैं, तो उन्हें भी दोनों हाथों इस धर्म को स्वीकार करना चाहिए। घुमक्कड़ी धर्म छुड़ाने के लिए ही पुरुष ने बहुत से बन्धन नारी के रास्ते में लगाये हैं। बुद्ध ने सिर्फ पुरुषों के लिए घुमक्कड़ी करने का आदेश नहीं दिया, बल्कि स्त्रियों के लिए भी उनका यही उपदेश था।

भारत के प्राचीन धर्मों में जैन धर्म भी है। जैन धर्म के प्रतिष्ठापक श्रमण महावीर कौन थे ? वह भी घुमक्कड़-राज थे। घुमक्कड़ धर्म के आचरण में छोटी से बड़ी तक सभी बाधाओं और उपाधियों को उन्होंने

त्याग दिया था—घर-द्वार और नारी सन्तान ही नही, वस्त्र का भी वर्जन कर दिया था।' करतल भिक्षा, तरुतल वास' तथा दिग्-अम्बर को उन्होंने इसीलिए अपनाया था कि निर्द्वन्द्व विचरण मे कोई बाधा न रहे। श्वेताम्बर-बन्धु दिगम्बर कहने के लिए नाराज न हों। वस्तुत हमारे वैज्ञानिक महान् घुमक्कड़ कुछ बातो मे दिगम्बरो की कल्पना के अनुसार थे और कुछ बातो मे श्वेताम्बरो के उल्लेख के अनुसार। लेकिन इसमे तो दोना सम्प्रदायो के और बाहर के मर्मज्ञ भी सहमत हैं कि भगवान महावीर दूसरी, तीसरी नही, प्रथम श्रेणी के घुमक्कड थे। वह आजीवन घूमते ही रहे। वैशाली मे जन्म लेकर विचरण करते ही पावा मे उन्होंने अपना शरीर छोडा। बुद्ध और महावीर से बढकर यदि कोई त्याग, तपस्या और सहृदयता का दावा करता है, तो मैं उसे केवल दम्भी कहूँगा। आजकल कुटिया का आश्रम बनाकर तेली के बैल की तरह कोल्हू से बँधे कितने ही लोग अपने को अद्वितीय महात्मा कहते हैं या चेलो से कहलवाते हैं, लेकिन मैं तो कहूँगा, घुमक्कडी को त्यागकर यदि महापुरुष बना जाता, तो फिर ऐसे लोग गली-गली मे देखे जाते। मैं तो जिज्ञासुओ को खबरदार कर देना चाहता हूँ कि वे ऐसे मुलम्मे वाले महात्माओ और महापुरुषो के फेर से बचे रहें। वे स्वय तेली के बैल तो हैं ही, दूसरो को भी अपने जैसा ही बना रखेंगे।

बुद्ध और महावीर जसे महापुरुषो की घुमक्कडी की बात से यह नही मान लेना होगा कि दूसरे लोग ईश्वर के भरोसे गुफा या कोठरी मे बैठकर सारी सिद्धियाँ पा गये या पा जाते हैं। यदि ऐसा होता तो शकराचार्य, जो साक्षात् ब्रह्मस्वरूप थे, क्यो भारत के चारो कोनो की खाक छानते फिरे ? शकर को शकर किसी ब्रह्मा ने नही बनाया, उन्हें बडा बनाने वाला था यही घुमक्कडी धर्म। शकर बराबर घूमते रहे—आज केरल देश मे थे तो कुछ ही महीने बाद मिथिला मे और अगले साल काश्मीर या हिमालय के किसी दूसरे भाग मे। शकर तरुणाई मे ही परलोक सिधार गए, किन्तु थोड़े से जीवन मे उन्होंने सिर्फ तीन भाष्य ही नही लिखे, बल्कि अपने आचरण से अनुयायियो को वह घुमक्कड़ी का पाठ पढा गये कि आज भी

उसके पालन करने वाले सैकड़ों मिलते हैं। वास्को डि गामा के भारत पहुँचने से बहुत पहले शंकर के शिष्य मास्को और यूरोप तक पहुँचे थे। उनके साहसी शिष्य सिर्फ भारत के चार धामों से ही सन्तुष्ट नहीं थे, बल्कि उनमें से कितनों ने जाकर बाकू (रूस) में धूनी रमायी। एक ने पर्यटन करते हुए वोल्गा तट पर निज्जी नोवोग्राद के महामेले को देखा।

रामानुज, मध्वाचार्य और वैष्णवाचार्यों के अनुयायी मुझे क्षमा करें यदि मैं कहूँ कि उन्होंने भारत में कूप-मंडूकता के प्रचार में बड़ी सरगर्मी दिखायी। भला हो, रामानन्द और चैतन्य का, जिन्होंने कि पंक के पंकज बनकर आदिकाल से चले आते महान् घुमक्कड़ धर्म की फिर से प्रतिष्ठापना की, जिसके फलस्वरूप प्रथम श्रेणी के तो नहीं, किन्तु द्वितीय श्रेणी के बहुत से घुमक्कड़ उनमें पैदा हुए। ये बेचारे बाकू की बड़ी ज्वालामाई तक कैसे जाते, उनके लिए तो मानसरोवर तक पहुँचना भी मुश्किल था, अपने हाथ से खाना बनाना, मांस-अंडे से छू जाने पर भी धर्म का चला जाना, हाड़-तोड़ सर्दी के कारण हर लघुशंका के बाद बर्फीले पानी से हाथ धोना और हर महाशंका के बाद स्नान करना तो यमराज को निमंत्रण देना होता, इसीलिए बेचारे फूंक-फूंककर ही घुमक्कड़ी कर सकते थे। इसमें किसे उज्र हो सकता है कि शैव हो या वैष्णव, वेदान्ती हो या सैद्धान्ती, सभी को आगे बढ़ाया केवल घुमक्कड़ धर्म ने।

महान् घुमक्कड़-धर्म बौद्ध धर्म का भारत से लुप्त होना क्या था कि तब कूप-मंडूकता का हमारे देश में बोलबाला हो गया। सात शताब्दियाँ बीत गयीं और इन सातों शताब्दियों में दासता और परतन्त्रता हमारे देश में पैर तोड़कर बैठ गयी। यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी, समाज के अगुओं ने चाहे कितना ही कूप-मंडूक बनाना चाहा, लेकिन इस देश में ऐसे माई के लाल जब-तब पैदा होते रहे, जिन्होंने कर्म-पथ की ओर संकेत किया। हमारे इतिहास में गुरु नानक का समय दूर का नहीं है, लेकिन अपने समय के ये महान् घुमक्कड़ थे। उन्होंने भारत भ्रमण को ही पर्याप्त नहीं समझा, ईरान और अरब तक का धावा मारा। घुमक्कड़ी किसी बड़े योग से कम सिद्धिदायिनी नहीं है और निर्भीक तो वह एक नम्बर का बना

देती है।

दूर शताब्दियो की बात छोडिए, अभी शताब्दी भी नही बीती, इस देश से स्वामी दयानन्द को विदा हुए। स्वामी दयानन्द को ऋषि दयानन्द किसने बनाया? घुमक्कडी धर्म ने। उन्होने भारत के अधिक भागो का भ्रमण किया, पुस्तक लिखते, शास्त्रार्थ करते वह बराबर भ्रमण करते रहे। शास्त्रों को पढकर काशी के बडे-बडे पडित महामडूक बनने मे ही सफल होते रहे, इसलिए दयानन्द को मुक्त बुद्धि और तर्क प्रधान बनाने का कारण शास्त्रों से अलग कही ढूढना होगा, और वह है उनका निरन्तर घुमक्कडी धर्म का सेवन। उन्होंने समुद्र-यात्रा करने, द्वीप-द्वीपान्तरो मे जाने के विरुद्ध जितनी थोथी दलीलें दी जाती थीं सबको चिंदी-चिंदी करके उडा दिया और बताया कि मनुष्य स्थावर वृक्ष नही है, वह जगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है, जिसने इसे छोडा वह मनुष्य होने का अधिकारी नही है।

बीसवी शताब्दी के भारतीय घुमक्कडो की चर्चा करने की आवश्यकता नही। इतना लिखने से मालूम हो गया होगा कि ससार मे अनादि सनातन धर्म है तो वह घुमक्कड धर्म है। लेकिन वह सकुचित सम्प्रदाय नही है, वह आकाश की तरह महान् है, समुद्र की तरह विशाल है। जिन धर्मों ने अधिक यश और महिमा प्राप्त की है, केवल घुमक्कड धर्म ही के कारण। प्रभु ईसा घुमक्कड थे, उनके अनुयायी भी ऐसे घुमक्कड थे, जिन्होने ईसा के सन्देश को दुनिया के कोने-कोने मे पहुँचाया।

इतना कहने के बाद कोई सन्देह नही रह गया कि घुमक्कड धर्म से बढ़कर दुनिया मे धर्म नही है। धर्म भी छोटी बात है, उसे घुमक्कड के साथ लगाना 'महिमा घटी समुद्र की रावण बसा पडोस' वाली बात होगी। घुमक्कड होना आदमी के लिए परम सौभाग्य की बात है। यह पथ अपने अनुयायी को मरने के बाद किसी काल्पनिक स्वर्ग का प्रलोभन नही देता, इसके लिए तो कह सकते हैं, 'क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ ले उस हाथ दे'। घुमक्कडी वही कर सकता है, जो निश्चिन्त है। किन साधनो से सम्पन्न होकर आदमी घुमक्कड बनने का अधिकारी

हो सकता है, यह आगे बतलाया जायगा। किन्तु घुमक्कड़ी के लिए चिन्ता-हीन होना आवश्यक है, और चिन्ताहीन होने के लिए घुमक्कड़ी भी आवश्यक है। दोनों का अन्योन्याश्रय होना दूषण नहीं भूषण है। घुमक्कड़ी से बढ़कर सुख कहाँ मिल सकता है! आखिर चिन्ताहीनता तो सुख का सबसे स्पष्ट रूप है। घुमक्कड़ी में कष्ट भी होते हैं लेकिन उसे उसी तरह समझिए, जैसे भोजन में मिर्च। मिर्च में यदि कड़वाहट न हो, तो क्या कोई मिर्च-प्रेमी उसमें हाथ भी लगाएगा? वस्तुतः घुमक्कड़ी में कभी-कभी होने वाले कड़वे अनुभव उसके रस को और बढ़ा देते हैं--उसी तरह जैसे काली पृष्ठ-भूमि में चित्र अधिक खिल उठता है।

व्यक्ति के लिए घुमक्कड़ी से बढ़कर कोई नकद धर्म नहीं है। जाति का भविष्य घुमक्कड़ी पर निर्भर करता है। इसलिए मैं कहूँगा कि हरेक तरुण और तरुणी को घुमक्कड़ व्रत ग्रहण करना चाहिए, इसके विरुद्ध दिये जाने वाले सारे प्रमाणों को झूठ और व्यर्थ का समझना चाहिए। यदि माता-पिता विरोध करते हैं तो समझना चाहिए कि वह भी प्रह्लाद के माता-पिता के नवीन संस्करण हैं। यदि हितु-बान्धव बाधा उपस्थित करते हैं तो समझना चाहिए कि वे दिवांध हैं। यदि धर्माचार्य कुछ उल्टा-सीधा तर्क देते हैं तो समझ लेना चाहिए कि इन्हीं ढोंगियों ने संसार को कभी सरल और सच्चे पथ पर चलने नहीं दिया। यदि राज्य और राजसी नेता अपनी कानूनी रुकावटें डालते हैं तो हजारों बार की तजुर्बा की हुई बात है कि महानदी के वेग की तरह घुमक्कड़ की गति को रोकने वाला दुनिया में कोई पैदा नहीं हुआ। बड़े-बड़े कठोर पहरे वाली राज्य सीमाओं को घुमक्कड़ों ने आँखों में धूल झोंककर पार कर लिया। मैंने स्वयं ऐसा एक से अधिक बार किया है। पहली तिब्बत यात्रा में अँग्रेजों, नेपाल राज्य और तिब्बत के सीमा-रक्षकों की आँख में धूल झोंककर जाना पड़ा था।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि यदि कोई तरुणी-तरुण घुमक्कड़-धर्म की दीक्षा लेता है—यह मैं अवश्य कहूँगा कि यह दीक्षा वही ले सकता है जिसमें बहुत भारी मात्रा में हर तरह का साहस है—तो उसे किसी की बात नहीं सुननी चाहिए, न माता के आँसू बहने की बात करनी चाहिए,

न पिता के भय व उदास होने की, न भूल से विवाह कर लायी अपनी पत्नी के रोने-धोने की और न किसी तरुणी को अभागे पति के कलपने की। बस, शंकराचार्य के शब्दों में यही समझना चाहिए—'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः' और मेरे गुरु कपोतराज के वचन को अपना पथ प्रदर्शक बनाना चाहिए—

सैर कर दुनिया की गाफिल, ज़िन्दगानी फिर कहाँ ?
ज़िन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ?
—इस्माइल मेरठी

दुनिया में मनुष्य जन्म एक ही बार होता है और जवानी भी केवल एक ही बार आती है। साहसी और मनस्वी तरुण-तरुणियों को इस अवसर से हाथ नहीं खोना चाहिए। कमर बाँध लो भावी घुमक्कड़ो! संसार तुम्हारे स्वागत के लिए बेकरार है।

भारतभूषण अग्रवाल

महाभारत की साँझ

(सारंगी पर आलाप उठता है)

धृतराष्ट्र—(ठण्डी साँस लेकर) कह नहीं सकता संजय ! किसके पापों का यह परिणाम है, किसकी भूल थी जिसका यह भीषण विपफल हमें मिला । ओह ! क्या पुत्र-स्नेह अपराध है, पाप है ? क्या मैंने कभी भी. . .कभी भी. . . .

संजय—शान्त हों महाराज ! जो हो चुका उस पर शोक करना व्यर्थ है !

धृतराष्ट्र—(साँस लेकर) फिर क्या हुआ संजय ?

संजय—आत्मरक्षा का और कोई उपाय न देखकर महाबली सुयोधन द्वैतवन के सरोवर में घुस गये, और उसके जल-स्तम्भ में छिपकर बैठे रहे । पर न जाने कैसे पाण्डवों को इसकी सूचना मिल गयी और वे तत्काल रथ पर चढ़कर वहाँ पहुँच गये. . . .

(रथ की गड़गड़ाहट)

भीम—लीजिए महाराज ! यही है द्वैतवन का सरोवर। ये अहेरी कहते थे कि उन्होंने दुर्योधन को इसी के जल में छिपते हुए देखा।

युधिष्ठिर—(पुकार कर) ओ पापी ! अरे ओ कपटी, दुरात्मा दुर्योधन ! क्या स्त्रियों की भाँति यहाँ जल में छिपा बैठा है ! बाहर निकल कर आ ! देख, तेरा काल तुझे ललकार रहा है !

भीम—कोई उत्तर नहीं। (ज़ोर से) दुर्योधन ! दुर्योधन !! अरे अपने सारे सहयोगियों की हत्या का कलंक अपने माथे पर लगाकर तू कायरों की भाँति अपने प्राण बचाता फिरता है ! तुझे लज्जा नहीं आती ?

युधिष्ठिर—लज्जा ! उस पापी को लज्जा !!—भीमसेन ! ऐसी अनहोनी बात की तुमने कल्पना भी कैसे की। जो अपने सगे-सम्बन्धियों

को गाजर-मूली की भाँति कटवा सकता है, जो अपने भाइयों को जीवित जलवा देने मे भी नही हिचकिचाता, जो अपनी भाभी को भरी सभा मे अपमानित कराने मे आनन्द ले सकता है, उसका लज्जा से क्या परिचय ! (सव्यंग्य हँसी)

दुर्योधन—(दूर जल में से) हँस लो, हँस लो दुष्टो !—जितना जी चाहे हँस लो, पर यह न भूलना कि मैं अभी जीवित हूँ, मेरी भुजाओं का बल अभी नष्ट नही हुआ है !

युधिष्ठिर—(ज़ोर से) अरे नीच ! अब भी तेरा गर्व चूर नही हुआ ? यदि बल है तो फिर आ न बाहर, और हमको पराजित करके राज्य प्राप्त कर ! यहाँ बैठा-बैठा क्या वीरता बघारता है । तू क्या समझता है हम तेरी थोथी बातो से डर जाएँगे ?

दुर्योधन—अपने स्वार्थ के लिए अपने गुरुजनो, बन्धु-बान्धवो का निर्भयता से वध करने वाले महात्मा पाण्डवो के रक्त की प्यास अभी बुझी नहीं है, यह मैं जानता हूँ । पर युधिष्ठिर ! सुयोधन कायर नहीं है, वह प्राण रहते तुम्हारी सत्ता स्वीकार नही कर सकता ।

भीम—तो फिर आ न बाहर और दिखा अपना पराक्रम ! जिस कालाग्नि को तूने वर्षों घृत देकर उभारा है उसकी लपटो मे तेरे साथी तो स्वाहा हो गए—उसके घेरे से अब तू क्यो बचना चाहता है ? अच्छी तरह समझ ले, ये तेरी आहुति लिए बिना शान्त न होगी ।

दुर्योधन—जानता हूँ युधिष्ठिर ! भली भाँति जानता हूँ । किन्तु सोच लो मैं थक कर चूर हो गया हूँ, मेरी सारी सेना तितर-बितर हो गयी है, मेरा कवच फट गया है, मेरे शस्त्रास्त्र चुक गये हैं । मुझे समय दो युधिष्ठिर ! क्या भूल गये, मैंने तुम्हे तेरह वर्ष का समय दिया था ?

युधिष्ठिर—(हँसकर) तेरह वर्ष का समय दिया था ! दुर्योधन ! तुमने तो हमे बनवास दिया था, यह सोचकर कि तेरह वर्ष बन मे रह कर हमारा उत्साह ठण्डा पड जायेगा, हमारी शक्ति क्षीण हो जायेगी, हमारे सहायक बिखर जायेंगे, और तुम अनायास हम पर विजय

पा सकोगे। इतनी आत्म-प्रवंचना न करो।

दुर्योधन—युधिष्ठिर ! तुम तो धर्मराज कहलाते हो। तुम्हारा दम्भ है कि तुम अधर्म नहीं करते। फिर तुम्हारे रहते, तुम्हारी आँखों के आगे ऐसा अधर्म हो, सोचो तो।

भीम—(हँसी) अच्छा, तो अब तुझे धर्म का स्मरण हुआ। सच है, कायर और पराजित ही अन्त में धर्म की शरण लेते हैं।

युधिष्ठिर—अरे पामर ! तेरा धर्म तब कहाँ चला गया था जब एक निहत्ये बालक को सात-सात महारथियों ने मिलकर मारा था, जब आधा राज्य तो दूर, सूई की नोक बराबर भी भूमि देना तुझे अनुचित लगा था। अपने अधर्म से इस पुण्य लोक भारत भूमि में द्वेष की ज्वाला धधका कर अब तू धर्म की दुहाई देता है। धिक्कार है तेरे ज्ञान को ! धिक्कार है तेरी वीरता को !

दुर्योधन—एक निहत्थे, थके हुए व्यक्ति को घेर कर वीरता का उपदेश देना सहज है युधिष्ठिर ! मुझे खेद है, मैं इसके लिए तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकता। पर मैं सच कहता हूँ तुमसे, इस नर-हत्या-काण्ड से मुझे विरक्ति हो गयी है। इस रक्त-रंजित सिंहासन पर बैठकर राज्य करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। तुम निश्चिन्त मन से जाओ और राज्य भोगो। सुयोधन तो वन में जाकर भगवद्-भक्ति में दिन बितायेगा।

भीम—व्यर्थ है दुर्योधन ! तेरी यह सारी कूटनीति व्यर्थ है ! अपने पापों के परिणाम से अब तू किसी भी प्रकार नहीं बच सकता। बाहर निकलकर युद्ध कर, बस यही एक मार्ग है।

दुर्योधन—अप्रस्तुत को मारने से यदि तुम्हें सन्तोष मिलता हो, तो लो मैं बाहर आता हूँ। (जल से बाहर निकलकर पास आने तक की आवाज) पर मैं पूछता हूँ युधिष्ठिर ! मेरे प्राणों का नाश कर तुम्हें क्या मिल जायेगा ?

युधिष्ठिर—अरे पापी ! यदि प्राणों का इतना ही मोह था तो फिर यह महाभारत क्यों मचाया ? न्याय को ठोकर मारकर अन्याय का पथ

क्यों ग्रहण किया ?

दुर्योधन—युधिष्ठिर ! मैंने जो कुछ किया, अपनी रक्षा के लिए ! मैं जीना चाहता था, शान्ति और मेल से रहना चाहता था। मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे रहते मेरी यह कामना, यह सामान्य-सी इच्छा भी पूरी न हो सकेगी।

भीम—पाखंडी ! तुझे झूठ बोलते लज्जा नहीं आती ?

दुर्योधन—ले लो राक्षसो ! यदि तुम्हारी हिंसा इसी से तृप्त होती है तो ले लो, मेरे प्राण भी ले लो ! जब मैं जीवन भर प्रयास करके भी अपनी एक भी घड़ी शान्ति से न बिता सका, जब मैं अपनी एक भी कामना को फलते न देख सका, तो अब इन प्राणों को रखकर भी क्या करूँगा ! लो, उठाओ शस्त्र और उड़ा दो मेरा शीश !—अब देखते क्या हो ? मैं निहत्था तुम्हारे सम्मुख खड़ा हूँ ? ऐसा सुअवसर कब मिलेगा, मेरे जीवन-शत्रुओ !

युधिष्ठिर—पहले वीरता का दम्भ और अन्त में करुणा की भीख !—कायरों का यही नियम है। परन्तु दुर्योधन ! कान खोलकर सुन लो। हम तुम्हें दया करके छोड़ेंगे भी नहीं, और तुम्हारी भाँति अधर्म से हत्या कर बधिक भी न कहलायेंगे। हम तुम्हें कवच और अस्त्र देंगे। तुम जिस अस्त्र से लड़ना चाहो, बता दो। हम में से केवल एक व्यक्ति ही तुम से लड़ेगा। और यदि तुम जीत गये तो सारा राज्य तुम्हारा ! कहो, यह तो अधर्म नहीं है ?—स्वीकार है ?

भीम—इस दुराचारी के साथ ऐसा व्यवहार बिल्कुल अनावश्यक है।

दुर्योधन—मैं तो कह चुका हूँ युधिष्ठिर ! मुझे विरक्ति हो गयी है। मेरी समझ में आ गया है कि अब प्राणों की तृप्ति की चेष्टा व्यर्थ है। विफलता के इस मरुस्थल में अब एक बूँद आवेगी भी तो सूखकर खो जायगी। यदि तुम्हें इसी में सन्तोष हो कि तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा मेरी मृत देह पर ही अपना जय-स्तम्भ उठाये तो फिर यही सही। (साँस लेकर) चलो, यह भी एक प्रकार से अच्छा ही होगा। जिन्होंने मेरे लिए अपने प्राणों की बलि दी, उन्हें मुँह तो दिखा सकूँगा। (रुक-

कार) अच्छी बात है युधिष्ठिर ! मुझे एक गदा दे दो, फिर देखो मेरा पौरुष !

(लघु विराम)

संजय—इस प्रकार महाराज ! पाण्डवों ने विरक्त सुयोधन को युद्ध के लिए विवश किया। पाण्डवों की ओर से भीम गदा लेकर रण में उतरे। दोनों वीरों में घमासान युद्ध होने लगा। सुयोधन का पराक्रम सबको चकित कर देता था। ऐसा लगता था कि मानो विजय-श्री अन्त में उन्हीं का वरण करेगी। पर तभी श्री कृष्ण के संकेत पर भीम ने सुयोधन की जंघा में गदा का भीषण प्रहार किया। कुरुराज आहत होकर चीत्कार करते हुए गिर पड़े।

धृतराष्ट्र—हा पुत्र ! इन हत्यारों ने अधर्म से तुम्हें परास्त किया ! संजय ! मेरे इतने उत्कट स्नेह का ऐसा अन्त ! ! ओह ! मैं नहीं सह सकता ! मैं नहीं सह सकता . . . . . .

संजय—धैर्य, महाराज, धैर्य ! कुरुकुल के इस डगमगाते पोत के अब आप ही कर्णधार हैं।

धृतराष्ट्र—संजय ! बहलाने की चेष्टा न करो। (रुक कर) पर ठीक कहा तुमने ! कुरुकुल का कर्णधार अन्धा है, उसे दिखाई नहीं देता !

संजय—महाराज ! ठीक यही बात सुयोधन ने कही थी।

धृतराष्ट्र—क्या ? क्या कहा था सुयोधन ने ? कब ?

संजय—जब सुयोधन आहत होकर निस्सहाय भूमि पर गिर पड़े तो पाण्डव जय ध्वनि करते और हर्ष मनाते अपने शिविर को लौट गये। सन्ध्या होने पर पहले अश्वत्थामा आये और कुरुराज की यह दशा देखकर बदला लेने का प्रण करते हुए चले गये। फिर युधिष्ठिर आये। सुयोधन के पास आकर वह झुके, और शान्त स्वर में बोले. . . .

(दुर्योधन की कराह, जो बीच-बीच में निरन्तर चलती रहती है)

युधिष्ठिर—दुर्योधन ! दुर्योधन ! ! आँखें खोलो भाई !

दुर्योधन—(कराहते हुए) कौन ? कौन ? युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर तुम ! तुम

आये हो ? क्यो आये हो ? अब क्या चाहते हो ? तुम राज्य चाहते थे वह मैंने दे दिया, मेरे प्राण चाहते थे, वे भी मैंने दे दिये। अब क्या लेने आये हो मेरे पास ? अब मेरे पास ऐसा कौन-सा धन है जिसके प्रति तुम्हे ईर्ष्या हो ? जाओ, जाओ, दूर हो मेरी आँखो से ! —जीवन मे तुमने मुझे चैन नही लेने दिया, अब कम-से-कम मुझे शान्ति से मर तो लेने दो युधिष्ठिर ! जाओ ! चले जाओ !

युधिष्ठिर—तुमने ठीक नही समझा दुर्योधन ! मैं कुछ लेने नही आया ! मैं तो देखने आया था कि .

दुर्योधन—कि अन्तिम समय मे मैं किस तरह निस्सहाय निर्बल पशु की भाँति तडप-तडप कर अपना दम तोडता हूँ। मेरी मृत्यु का पर्व मनाने आये हो न ! मेरी आहो का आलाप सुनने आये हो न !—अरे निर्दयी ! तुम्हे किसने धर्मराज की सज्ञा दी। जो सुख से मरने भी नही देता वही धर्म का ढोल पीटे, कैसा अन्याय है।

युधिष्ठिर—अर्थ का अनर्थ न करो दुर्योधन ! मैं तो तुम्हे शान्ति देने आया था। मैंने सोचा, हो सकता है तुम्हे पश्चात्ताप हो रहा हो। यदि ऐसा हो, तो तुम्हारी व्यथा हल्की कर सकूँ, इसी उद्देश्य से मैं आया था।

दुर्योधन—हाय रे मिथ्याभिमानी ! अब भी यह दया का ढोग नही छोडा ? —पर युधिष्ठिर ! तनिक अपनी ओर तो देखो ! पश्चात्ताप तो तुम्हे होना चाहिए ! मैं क्यो पश्चात्ताप करूँगा ? मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है ? मैंने अपने मन के भावो को गुप्त नही रखा, मैंने षड्यन्त्र नही किया, मैंने गुरुजनो का वध नही किया !

युधिष्ठिर—यह तुम क्या कह रहे हो दुर्योधन !

दुर्योधन—(किटकिटाकर) दुर्योधन नही, सुयोधन कहो धर्मराज ! सुयोधन। क्या अब भी तुम्हारी छाती ठण्डी नही हुई ! क्या मुझे मार कर भी तुम्हे सन्तोष नही हुआ जो मेरी अन्तिम घडी मे मेरे मुँह पर मेरे नाम की खिल्ली उडा रहे हो। निर्दयी ! क्या ईर्ष्या मे अपनी मानवता भी भस्म कर दी।

युधिष्ठिर—क्षमा करो भाई ! अब तुम्हे और अधिक कष्ट नही पहुँचाना

चाहता। पर मेरे कहने न कहने से क्या, आने वाली पीढ़ियाँ तुम्हें दुर्योधन के नाम से ही सम्बोधित करेंगी, तुम्हारे कृत्यों का साक्षी इतिहास पुकार-पुकार कर.........

दुर्योधन—मुझे दुर्योधन कहेगा, यही न ? जानता हूँ युधिष्ठिर ! मैं जानता हूँ। मुझे मार कर ही तुम चुप नहीं बैठोगे। तुम विजेता हो, अपने गुरुजनों और सगे-सम्बन्धियों के शोणित की गंगा में नहाकर तुमने राजमुकुट धारण किया है। तुम अपनी देख-रेख में इतिहास लिखवाओगे और उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने से क्यों चूकोगे ? सुयोधन को सदा के लिए दुर्योधन बना कर छोड़ोगे। (कराह कर) उसकी देह को ही नहीं, उसका नाम तक मिटा दोगे। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। (रुककर) मेरे मरने पर तुम जो चाहो करना, मैं तुम्हारा हाथ पकड़ने नहीं आऊँगा। पर इस समय, इस समय जब तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु मर रहा है, उसे इतना न्याय तो दो कि उसका मिथ्या अपमान न करो।

युधिष्ठिर—युधिष्ठिर ने सदा ही न्याय दिया है सुयोधन ! न्याय के लिए वह बड़े-बड़े दुःख उठाने पर भी नहीं चूका है। सगे-सम्बन्धियों के तड़प-तड़प कर प्राण त्यागने का यह भीषण दृश्य ! अबलाओं-अनाथों का यह करुण चीत्कार किसी भी हृदय को दहलाने के लिए पर्याप्त था। पर सुयोधन ! मैं इन संहार के दृश्यों को भी शान्त भाव से सह गया, क्योंकि न्याय के पथ पर जो मिले, सब स्वीकार है।

दुर्योधन—यह दम्भ है युधिष्ठिर ! यह मिथ्या अहंकार है। मैं तुम्हारी यह आत्म-प्रशंसा नहीं सुन सकता, इसे तुम अपने भक्तों के ही लिए रहने दो ! तुम विजय की डींग मारते हो, पर न्याय-धर्म की दुहाई तुम मत दो ! स्वार्थ को न्याय का रूप देकर धर्मराज की उपाधि धारण करने में तुम्हें सन्तोष मिलता है तो मिले, मेरे लिए यह आत्म-प्रवंचना है, मैं उससे घृणा करता हूँ।

युधिष्ठिर—स्वार्थ ! दुर्योधन, स्वार्थ !!

दुर्योधन—और नहीं तो क्या ? जिस राज्य पर तुम्हारा रत्ती-भर अधिकार

नही था, उसी को पाने के लिए तुमने युद्ध ठाना, यह स्वार्थ का ताण्डव नृत्य नही तो और क्या है ? भला किस न्याय से तुम राज्याधिकार की माँग करते थे ?

युधिष्ठिर—सुयोधन ! मन को टटोलकर देखो। क्या वह तुम्हारे कथन का समर्थक है ? क्या तुम नही जानते कि पिता के राज्य पर पुत्र का अधिकार सर्व-सम्मत है ? फिर महाराज पाण्डु का राज्य मेरा हुआ या नही ?

दुर्योधन—बस, तुम्हारे पास एक यही तर्क है न ! परन्तु युधिष्ठिर ! क्या तुमने कभी भी यह सोचा कि जिस राज्य का तुम अधिकार चाहते थे वह तुम्हारे पिता के पास कैसे आया ? क्या जन्माधिकार से ? नही। तुम्हारे पिता को राज्य की देखभाल का कार्य केवल इसलिए मिला कि मेरे पिता अन्धे थे। राज्य-सचालन मे उन्हे असुविधा होती। अन्यथा उस पर तुम्हारे पिता का कोई अधिकार न था, वह मेरे पिता का था।

युधिष्ठिर—यह तो ठीक है। पर एक बार चाहे किसी भी कारण से हो जब मेरे पिता को राज्य मिल गया, तब उनके पश्चात् उस पर मेरा अधिकार हुआ या नही ? क्या राज नियम यह नही कहता ?

दुर्योधन—राज नियम की चिन्ता कब की तुमने ? अन्यथा इस बात के समझने मे क्या कठिनाई थी कि तुम्हारे पिता के उपरान्त राज्य पर मूल अधिकार मेरे पिता का ही था। वह जिसे चाहते, व्यवस्था के लिए उसे सौप सकते थे।

युधिष्ठिर—यह केवल तुम्हारा निजी मत है। आज तक किसी ने भी इस प्रकार का कोई सन्देह प्रकट नही किया। पितामह भीष्म, महात्मा विदुर, कृपाचार्य अथवा स्वय महाराज धृतराष्ट्र ने भी कभी कोई ऐसी बात नही कही।

दुर्योधन—यही तो मुझे दुख है युधिष्ठिर ! कि तथ्य तक पहुँचने की किसी ने भी चेष्टा नहीं की। एक अन्याय की प्रतिष्ठा के लिए इतना ध्वस किया गया और सब अन्धो की भाँति उसे स्वीकार करते गये।

सबने मेरा हठ ही देखा, मेरे पक्ष का न्याय किसी ने नहीं देखा ! और जानते हो इसका क्या कारण था ?

युधिष्ठिर—क्या ?

दुर्योधन—सब तुम्हारे गुणों से प्रभावित थे, सब तुम्हारी वीरता से डरते थे। कायरों की भाँति रक्त-पात से बचने के प्रयत्न में वे न्याय और सत्य का बलिदान कर बैठे। वे यह नहीं समझ पाये कि भय जिसका आधार हो, वह शान्ति टिकाऊ नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर—गुरुजनों पर तुम व्यर्थ ही कायरता का आरोप कर रहे हो। यदि मेरे पक्ष में न्याय न होता तो कोई भी मुझको न्याय देने की माँग क्यों करता ?

दुर्योधन—तभी तो कहता हूँ युधिष्ठिर ! कि स्वार्थ ने तुम्हें अन्धा बना दिया। अन्यथा इतनी छोटी-सी बात क्या तुम्हें दिखाई न पड़ जाती कि जितने धार्मिक और न्यायी व्यक्ति थे, सबने इस युद्ध में मेरा साथ दिया है। यदि न्याय तुम्हारी ओर था तो फिर भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा—सब मेरी ओर से क्यों लड़े ? क्या वे जानबूझकर अन्याय का साथ दे रहे थे ? यहाँ तक कि कृष्ण जैसे तुम्हारे परम मित्र ने भी मेरी सहायता के लिए अपनी सेना दी। वह चतुर थे, दोनों पक्षों से मैत्री रखना ही उन्होंने अच्छा समझा। ऐसा क्यों हुआ ? बोलो ? इसीलिए न, कि न्याय वास्तव में मेरी ओर था।

युधिष्ठिर—सुयोधन ! मैं तुम्हें सान्त्वना देने आया था, विवाद करने नहीं। मैं तो तुम्हारी पीड़ा बँटा लेने आया था क्योंकि तुम चाहे कुछ समझो, मेरी इस बात का तुम विश्वास करो कि मैं इस रक्तपात के लिए तैयार न था, यह मेरी कदापि इच्छा न थी।

दुर्योधन—मैं इसका कैसे विश्वास करूँ, क्या तुम्हारे कह देने से ही ? पर तुम्हारे वचनों से भी सशक्त स्वर है तुम्हारे कार्यों का, तुम्हारे जीवन की गतिविधि का, और वह पुकार-पुकार कर कह रही है कि युधिष्ठिर शोणित-तर्पण चाहता था, युधिष्ठिर खून की होली खेलने के लिए ही सारे अवसर जुटा रहा था। भविष्य को भी तुम

चाहो तो बहका सकते हो युधिष्ठिर ! पर सुयोधन को नहीं बहका सकते क्योंकि उसने अपने बचपन से लेकर अब तक की एक-एक घड़ी तुम्हारी ईर्ष्या के रथ की गडगडाहट सुनते हुए बितायी है, तुम्हारी तैयारियो ने उसे एक रात भी चैन से नहीं सोने दिया ।

युधिष्ठिर—सुयोधन ! मुझे लगता है, तुम सुध-बुध खो बैठे हो, तुम प्रलाप कर रहे हो । भला ज्ञान मे भी कोई ऐसी असम्भाव्य बातें कहता है । जो पाण्डव तुमसे तिरस्कृत होकर घर-घर भीख माँगते फिरे, वन-जगलो की धूल छानते फिरे, उनके सम्बन्ध मे भला कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे इस कथन का विश्वास करेगा ?

दुर्योधन—मैं जानता हूँ युधिष्ठिर ! कोई विश्वास नहीं करेगा । और करना चाहे तो तुम उसे विश्वास न करने दोगे । पर इससे क्या, सत्य को दवाकर उसे मिथ्या नहीं किया जा सकता । बचपन से, जब हम लोगो ने एक साथ शिक्षा पायी, तब से आज तक के सारे चिह्न मेरी दृष्टि मे हरे हैं । पुरोचन को कपट से मार कर तुम पाचाल गये, और वहाँ द्रुपद को अपनी ओर मिलाया । तभी तो तुम्हारा बल बढ़ता देखकर पिताजी ने तुम्हे आधा राज्य दिया ।

युधिष्ठिर—मैं तो यही जानता हूँ कि आधे राज्य पर मेरा अधिकार था ।

दुर्योधन—सत्य को ढँकने का प्रयत्न न करो युधिष्ठिर ! उसे निष्पक्ष होकर जाँचो । मेरे पास प्रमाणों की कमी नहीं है । आधा राज्य पाकर भी तुमने चैन न लिया, तुमने अर्जुन को चारो ओर दिग्विजय के लिए भेजा । राजसूय यज्ञ के बहाने तुमने जरासन्ध और शिशुपाल को समाप्त किया । यहाँ तक कि जुए मे खेल-खेल मे भी तुम अपनी ईर्ष्या नहीं भूले, और तुमने चट से अपना राज्य दाँव पर लगा दिया कि यदि तुम जीते तो तुम्हे मेरा राज्य अनायास ही मिल जाय । वनवास उसी महत्वाकाक्षा का परिणाम था, मेरा उसमे कोई हाथ न था ।

युधिष्ठिर—तुमने जिस तरह भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया.

दुर्योधन—मेरा अपमान भी द्रौपदी ने भरी सभा मे ही किया था । तब

तुम्हारी यह न्याय-भावना क्या सो रही थी ? फिर द्रौपदी को दाँव पर लगाकर क्या तुमने उसका सम्मान करने की चेष्टा की थी ? जिस समय द्रौपदी सभा में आयी, उस समय वह द्रौपदी नहीं थी, वह जुए में जीती हुई दासी थी।

युधिष्ठिर—यह तुम कैसी विचित्र बात कह रहे हो ?

दुर्योधन—सत्य को विचित्र मानकर उड़ा नहीं सकते युधिष्ठिर ! अपने कृत्य से वनवास पाकर भी उसका दोष मेरे ही माथे मढ़ा गया, और फिर उस वनवास का एक-एक क्षण युद्ध की तैयारी में लगाया गया। अर्जुन ने तपस्या द्वारा नये-नये शस्त्र प्राप्त किये; विराट-राज से मैत्री कर नये सम्बन्ध बनाये गये, और अवधि पूर्ण होते ही अभिमन्यु के विवाह के बहाने राजाओं को निमन्त्रण भेजकर एकत्रित किया गया। युधिष्ठिर ! क्या इस कटु सत्य को तुम मिटा सकते हो ?

युधिष्ठिर—यदि जो कुछ तुम कह रहे हो वह सत्य है तो सुयोधन तुम मेरा विश्वास करो कि तुमने प्रत्येक घटना के उल्टे अर्थ लगाये हैं। जो नहीं है उसे तुमने कल्पना के आरोप द्वारा देखा है। यह सब मिथ्या है।

दुर्योधन—किन्तु यही बात मैं तुम्हारे लिए कह सकता हूँ युधिष्ठिर ! क्योंकि अन्तर्यामी जानते हैं कि मैंने कोई बुरा आचरण नहीं करना चाहा। मैंने एकमात्र अपनी रक्षा की। जब तक तुमने आक्रमण नहीं किया, मैं चुप रहा। जब मैंने देखा कि युद्ध अनिवार्य है तो फिर मुझे विवश होकर वीरोचित कर्त्तव्य करना पड़ा।

युधिष्ठिर—अभिमन्यु-वध भी क्या वीरोचित था ?

दुर्योधन—एक-एक बात पर कहाँ तक विचार करोगे, युधिष्ठिर ! जब भीष्म, द्रोण, और कर्ण का वध वीरोचित हो सकता है, तो फिर अभिमन्यु-वध में ऐसी क्या विशेषता थी ? और आज भीमसेन ने मुझे जिस प्रकार पराजित किया है वही क्या वीरोचित कहलाएगा ? पर युधिष्ठिर ! मेरे पास अब इतना समय नहीं है कि इन सबकी

विवेचना करूँ। मैं तो सबकी सार बात जानता हूँ कि तुम्हारी महत्त्वाकाक्षा ही नर-सहार का, इस भीषण रक्तपात का मूल कारण है। मैं तो एक निस्सहाय, विवश व्यक्ति की भाँति केवल जूझ मरा हूँ। तुम्हारे चक्रान्त मे मेरे लिए यही पुरस्कार निर्धारित किया गया था।

युधिष्ठिर—सुयोधन ! तुम्हे भ्रान्ति हो गयी है, तुम सत्य और मिथ्या का भेद करने मे असमर्थ हो। तुम्हारे मस्तिष्क की यह दशा सचमुच दयनीय है।

दुर्योधन—बडे निष्ठुर हो युधिष्ठिर ! मरणोन्मुख भाई से दुराव करते तुम्हारा जी नही पसीजता। कुछ क्षणो मे ही मैं इस लोक की सीमाओ के परे पहुँच जाऊँगा। मेरे सम्मुख यदि तुम सत्य स्वीकार कर भी लोगे तो तुम्हारे राजत्व को कोई हानि नही पहुँचेगी। (कराहता है) पर नही, मैं भूल गया। तुम तो अपने इस शत्रु की इस विकल मृत्यु पर प्रसन्न हो रहे होगे। आज वह हुआ जो तुम चाहते थे, और जो मैं नही चाहता था। मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन का एक-एक पल तुम्हारी महत्त्वाकाक्षा की टकराहट से बचने मे लगाया। परन्तु तुम्हारे सम्मुख मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हुए। वह देखो, अब अन्धेरा बढा आ रहा है। साँझ हो रही है, मेरे जीवन की अन्तिम साँझ। (पृष्ठभूमि मे सारगी पर करुण आलाप, जो बढ़ता जाता है) और उधर वे मेघ घिर आ रहे हैं, द्रौपदी के बिखरे केशो की भाँति ! वे मुझे निगल लेंगे युधिष्ठिर ! जाओ, जाओ, मुझे मरने दो ! तुम अपनी महत्त्वाकाक्षा को फलते-फूलते देखो ! जाओ, गुरुजनो और बन्धु-बान्धवो के रक्त से अभिषेक कर राज्य सिंहासन पर विराजो। तुम्हारे चरणो से रौंदे हुए काँटो की भाँति तुम्हारे मार्ग से हट जाता हूँ।

युधिष्ठिर—इतने उत्तेजित न हो सुयोधन ! वीरो की भाँति धैर्य रक्खो। शान्त होओ !

दुर्योधन—घबराओ नही युधिष्ठिर ! मेरी शान्ति के लिए तुम जो उपाय

कर चुके हो, वह अचूक है। दो क्षण और, फिर मैं सदा को शान्त हो जाऊँगा। पर अन्तिम साँस निकलने के पहले युधिष्ठिर ! एक बात कहे जाता हूँ। तुम पश्चात्ताप की बात पूछने आये थे न ? मेरे मन में कोई पश्चात्ताप नहीं है। मैंने कोई भूल नहीं की। मैंने भय से तुम्हारी शरण नहीं माँगी। अन्त तक तुम से टक्कर ली, और अब वीरगति पाकर स्वर्ग को जाता हूँ। समझे युधिष्ठिर ! मुझे कोई ग्लानि नहीं है, कोई पश्चात्ताप नहीं है। केवल एक. . . केवल एक दुःख मेरे साथ जायेगा।

युधिष्ठिर—क्या ?

दुर्योधन—यही . . . यही कि मेरे पिता अन्धे क्यों हुए। नहीं तो, नहीं तो. . .

(करुण आलाप उठकर धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है)

जैनेन्द्र

मेरे साहित्य का श्रेय और प्रेय

रेडियो की यह मांग कि मैं अपने साहित्य का श्रेय बताऊँ और प्रेय बताऊँ, मुझे कुछ हैरान करती है। इसलिए पहले यह खयाल था कि इस सवाल का जवाब देने का जिम्मा न उठाऊँगा और बात टाल छोड़ूँगा। कह दूंगा कि जो मेरे नाम पर छपा हुआ मिलता है उस पर पढ़ने वालों का पूरा हक है, मेरा हक नहीं है, और इस तरह के सवाल मुझे छोड़कर पाठकों से करने चाहिएँ। लिखकर मैं तो उससे बरी हो गया हूँ और वह माल दूसरों के कब्जे का है, यानी मेरे सिवा सबका है।

लेकिन सच यह है कि उस सवाल ने मुझे खींचा भी है। इसलिए नहीं कि सचमुच अपनी तरफ से कोई खास श्रेय डालकर लिखाई का काम मैंने किया है, बल्कि इसलिए कि उससे मेरे लिए अपने को टटोलने की जरूरत पैदा होती है।

जवाब देते वक्त सवाल के प्रेय शब्द को मैं टाले दे रहा हूँ। आँखों को अच्छा लगे वह प्रेय, इस तरह प्रेय रूप होता है। लेकिन विवेक रूप को नहीं देखता, गुण को देखता है। या कहे कि गुण की अपेक्षा मे रूप को देखता है। इस तरह लिखने के मामले मे प्रेय का मैं अविश्वासी हूँ। यह नहीं कि आँखें रूप पर नहीं जाती, पर साथ ही चाहता हूँ कि मन रूप पर न जाए। लेखक की हैसियत से, इसलिए, मैंने रूप पर जाने वाली आँखों को जहाँ तक बस चला है, बहकने नहीं दिया है। यानी मेरी रचनाओं मे सुन्दरता नहीं है। आकृति और रूप का वर्णन मेरी कलम मे नहीं उतरा है। कहीं भूले-भटके यदि वह मिल जाता है तो मेरी ओर से साथ-साथ व्यंग का इशारा भी वहाँ गया है। रूप मुसीबत है—उसके लिए तो पहले कि जिसमें है, फिर उसके लिए भी जो उस पर रीझता है। रूप इस तरह छल है। एक ओर मान के साथ मिला हुआ है तो दूसरी

ओर कामना के साथ। अपने अन्दर की कामना बाहर रूप की सृष्टि कर दिखाती है। अध्यापक के लिए जो लड़की निकम्मी है, प्रेमी के लिए वही अप्सरा है। इसे आंखों का ही फर्क कहना चाहिए। इसलिए रूप तो देखने वाले की आंखों में है, वैसे वह कहीं नहीं है। इस तरह प्रेय को तो मैं छोड़कर ही चलना चाहता हूँ।

छोड़ने का मतलब कुछ और आप न ले जाएं। शरीर, इन्द्रिय और मन समेत हम चलते और चल सकते हैं, तो प्रेय के ही पीछे। भगवान् या आदर्श या सत्य कितना भी कुछ हो, हमारी लगन ही उससे नहीं लग गई है, यानी प्रियतम भी अगर वह हमारे लिए नहीं हो गया है तो वह हमारे अन्दर किसी भूले कोने में ही पड़ा रहेगा। तब देखेंगे कि नाम जब हम राम का ले रहे हैं, तब ध्यान रूपसी का कर रहे हैं। राम की ओट में काम अन्दर से झांक रहा है। इसलिए और किसी को चाहे छुट्टी रहे, जीवन से प्रेय को तो छुट्टी मिल नहीं सकती। फिर भी प्रेय है छल। आंख के आगे की तस्वीर हर घड़ी अदलती-बदलती है, तभी आंख अपना काम करती है। चंचल न हो, वह आंख नहीं। यों ही रूप का हाल है।

इस उलझन का एक ही उपाय है। वह यह कि प्रेय तो रहे, पर श्रेय से दूर न रहे अर्थात् बाहर की बन्द कर, अन्दर की आंख से, जिसे विवेक कहते हैं, हम देखें और बाहर की आंख को कहें, यानी बराबर इसके लिए साधते रहें, कि दीखने वाले रूप को भी वह उससे अन्यत्र कहीं न देखे।

आखिर निर्गुण भगवान को इसीसे तो मनुष्य के निकट आकर सगुण बनना होता है। यह मैं नहीं मान सकता कि यथार्थ में राम और कृष्ण कामदेव से कुछ भी न्यून न रहे होंगे। फिर भी भगवान् को जब राम और कृष्ण में हमने देखा, तो क्या अपने बस का सुन्दर-से-सुन्दर रूप हमने उन प्रतीकों में नहीं ला उतारा। इस तरह वे परम-पुरुष रूप की ओर से भी भुवन-मोहन बन गए।

इसी से कहना होगा कि सत्य से सुन्दर कुछ है ही नहीं। सूरज से धूप मिलती है, धूप में क्या रूप है? जो है, वह आंख के बस का नहीं है, इतना धौला है। पर क्या उसी की कुछ किरणों में से सतरंगी इन्द्रधनुष हमको

नही प्राप्त होता ? बालक धूप या ग्रादी है, लेकिन ग्रासमान मे सतरगी धनुप को खिचा देखकर वह एकाएक किलकारी मार उठता है । देखते-देखते वह धनुप मिट जाता है ग्रौर वह बिचारा ग्रास लगाता है कि कब वही बाँकी सतरगी कमान फिर देखने को मिलेगी । मानो, उसके ग्रानन्द के निकट दुनिया उस धनुप के कारण ही सच हो, ग्रन्यथा सब फीका हो ग्रौर व्यर्थ ।

मानना होगा कि हमारी ग्राँखें क्योकि रूप पर खुलती हैं, इसलिए, ग्रगर कोई सत्य हो तो उसे हमारे सामने रूपवान् होकर ही ग्राने का साहस करना चाहिए । ग्रौर सचमुच साहित्य इसका ध्यान रखता है । ग्रादमी की इस पहली ग्रसमर्थता का ध्यान न रखकर चलने वाले दार्शनिक जीवन-भर सत्य तत्त्व खोजते ग्रौर शब्दो मे उन्हे गूथकर बखेर जाते हैं । पर कोई उन्हे लूटने नही लपकता । सुन्दर नही है, सच पूछिए तो, उपयोगी सत्य वही है । पर सत्य के उपयोग से बिरलो को काम । पहली ग्रावश्यकता लोगो की है, प्रेम । ग्रौर, रूप के ग्रन्धे होकर प्रेम कैसे हो। मैं मानता हूँ कि साहित्य सत्य के प्रति मनुष्य मे वही ग्रनन्य प्रेम उत्पन्न करता है, ग्रौर वह ग्रनजाने तौर पर क्योकि जिस प्रेय को वह पाठक की रागात्मक वृत्तियो के ग्रागे प्रत्यक्ष कर उठता है, वह फिर उत्तरोत्तर शिव ग्रौर सत्य के सिवा कुछ दूसरा है ही नही ।

इस जगह ग्राकर मान लेता हूँ कि प्रेय से मेरी छुट्टी हुई, क्योकि वह सरक कर श्रेय मे मिल गया ग्रौर स्वय से खो गया ।

तो, श्रेय की जहाँ तक बात है, मैं स्वार्थ से चलना चाहता हूँ । तब मेरे साहित्य मे क्या श्रेय है, जो पाठक को देने का कष्ट मैं करता हूँ, यह प्रश्न ही इस रूप मे नही रहता । जरूर ग्रगर साहित्य मे श्रेय होगा तो पहले लिखने वाले को होगा । पढने वाले को इस मामले मे ग्रनिवार्य पीछे रहना होगा । ग्रपने लिखने का पहला लाभ मुझे मिलेगा ग्रौर मैं लूगा । उसके बाद पाठक को भी ग्रगर कुछ मिलता होगा तो उसकी कैंफियत वह देगा । मैं तो उसे यही कहूँगा कि वह मेरा कृतज्ञ न हो । इस तरह मेरी रचना से उसे मिलने वाला लाभ तो उच्छिष्ट ही है । इसमे पूछिए

तो कृतज्ञ होने के कारण मेरे ही पास हैं।

सारांश, मैं स्वान्तःसुखाय पर अटकने को तैयार हूँ। लोकहिताय तक न भी जाऊँ तो भी कोई हानि नहीं देखता।

तो, अपने श्रेय के लिए मैं अपनी आपबीती पर जाऊँगा। लिखना शुरू हुआ तब मेरी बुरी हालत थी। अन्दर से बुरी, पर बाहर से और भी बुरी। उमर काफी, करने को कुछ नहीं, पूछने को कोई नहीं, अकेला, अविश्वस्त और असमर्थ। अकेला मैं, अकेली माँ। वय में वृद्धा होती जाती हुई माँ को लेकर अपनी असमर्थता और अपात्रता पर मैं बेहद अपने में डूबता जाता था। इस हालत में सोच होता कि दुनिया में तू एकदम अनावश्यक है। फिर धरती का बोझ क्यों बढ़ाता है? हर पल को बोझ के मानिंद तुझे ढोना पड़ रहा है। चल, काल से छुटकारा ले और दुनिया को छुटकारा दे। पर यह ख़याल पूरा नहीं हो सका। क्योंकि माँ की ओर से ऐसा लग आता था कि शायद मेरी भी आवश्यकता है, माँ के लिए मुझे मरना नहीं है। पर जीना कैसे है, यह भी सोच न मिलता था। ऐसी बेबसी में मैंने लिखा और उस लिखने ने मुझे जीता रखा।

जानता हूँ, तरह-तरह की थियरीज़ हैं। एक अरुचि और व्यंग्य का शब्द है एसकेपिज़्म। अनुवाद से हिन्दी में उसे बनाया गया है—पलायनवाद। मेरे अपने सामने में लिखना मेरे लिए शुद्ध एस्केप और पलायन था।

इसलिए पहला श्रेय मेरे साहित्य का यह हुआ कि उसने मेरी रक्षा की। मैं बचकर उसमें शरण ले सका, उसने मुझे जिलाया। अपने भीतर की आत्म-ग्लानि, हीन-भावनाएँ और उनमें लिपटी हुई स्वप्नाकांक्षाएँ—इन सबको कागज पर निकाल कर जैसे मैंने स्वास्थ्य का लाभ किया। जो मेरे अन्दर घुट रहा और मुझे घोट रहा था, उसी को बाहर निकालने की पद्धति से देखा कि मैं उससे मुक्ति पा रहा हूँ। उसके नीचे न रह कर उसके ऊपर आ रहा हूँ। जो कमजोरी थी और मुझे कमजोर कर रही थी उसी को स्वीकार कर लेकर, और रूप और आकार पहना देकर, मैं अ-कमजोर—क्या मजबूत?—बन रहा हूँ।

इस अनुभव से मैं कहूँगा कि साहित्य का पहला श्रेय है जीवन का

लाभ। अपनी अतरगता की स्वीकृति और प्राप्ति, अपने भीतर के विग्रह, की शाति, उलझन की समाप्ति और व्यक्तित्व की उत्तरोत्तर एकत्रितता।

शुरू में जो लिखा वह उन दबी हुई भावनाओ का रूपक था जो स्थिति की हीनता से कल्पना की सुरक्षितता मे अपना बसेरा बसा-फैलाकर फलती-फूलती है। कुछ कहानियाँ बनी जिनमे मैं जो खुद न बन सकता था वह कहानियो के नायको के जरिये बन गया। मैं भीरु था, लेकिन कहानी लिखी गई जिसका डाकू सरदार बडा दिलेर था। और उसका शीर्षक हुआ, परीक्षा, मानो परीक्षा मेरी थी। फिर पीछे तो शायद प्रकाशक ने बेचने की तदबीर मे उस परीक्षा को फाँसी बना दिया। देश-प्रेम के शब्द से हवा उन दिनो भरी थी और मैं घर मे बैठा किक्तर्व्यविमूढता मे ऊँघा करता था। सो, कहानी लिखी गई देश-प्रेम और उसमे दो प्रतापी पुरुष मूर्त हुए। एक उनमे वाक्शूर थे, दूसरे कर्मवीर। इसी सपाटे मे मुझ अकर्मण्य ने स्पर्धा करके एक कहानी लिख डाली जो सचमुच ही स्पर्धा बन गई। जैनी होकर यहाँ चीटी न मरती थी, वहाँ कहानी मे बम और तमचे वाले एक से एक बढकर लोग खडे हो आए।

बगाल ने क्रान्ति का मन्त्र फूका था। मुल्ला की दौड मस्जिद तक तो होगी, मेरी तो घर से आगे तक न थी। शायद इसी से घर बैठे-बैठे मुझे बगाल लाँघकर इटली तक जाना पडा। वहाँ के मेज़िनी को बख्श दिया, यह बहुत समझिए। नही तो गेरीबॉल्डी को मेरी कलम की नोक पर आना पडा और कहानी मे वही करना पडा जो मैंने चाहा।

इन कहानियो के लिखने ने मुझे साँस तोडते को साँस दी। अब सुनता हूँ, एक यथार्थवाद होता है, जिसके मुकाबले मे दूसरा आदर्शवाद होता है। यथार्थ से मैं क्या सीख सकता था ? तीस रुपये की नौकरी भी मैं उसमे से नही खीच सका था। तब जहाँ से यह तीन कहानी खीच लाया और खीचकर उनके जोर से थोडा कुछ जी पाया, उस जगह का नाम जो भी कोई दे, पर उससे उऋण मैं कैसे हो सकता हूँ। उससे टूट भी कैसे सकता हूँ। यथार्थ अगर वह नही है तो मेरे लिए यथार्थ की आवश्यक्ता भी नही है। इसी तरह आदर्श को भी उससे अलग मैं लेना या जानना नही चाहता।

हमारे अन्दर अनन्त अव्यक्त है। मैला उसमें है, धौला उसमें है। उस सबको स्वीकार करके शनैः-शनैः उसे बाहर निकालकर अपने को रिक्त करते जाना—मेरे ख़याल में वह बड़ा काम है। इसमें अलग सर्जन क्या होता होगा, वह मैं जानता नहीं हूँ।

यह तो कहानी लिखने में से आया। फिर उस कहानी के छपने में से आया, वह भी श्रेय के जमा खाते में है। अपनी दर्पण में तस्वीर देखते हैं, तब अपनापन हम पर खुलता है। छपने से यह हुआ। लिखा हुआ मेरा अंग था, छपा हुआ सबका हो गया। इसलिए वह एक स्वत्व और सम्पत्ति बन गया। करिश्मा यह हुआ कि मेरी तरफ़ से कहानी गई और दूसरी तरफ़ से एक मनीआर्डर चला आया। मानता हूँ कि तीन में से दो कहानियाँ पहली बार द्रव्य की भाषा में कुछ लौटाकर नहीं लाईं। पर तीसरी ने जाकर वहाँ से जो मनीआर्डर चला दिया, सो एक बहुत ही विलक्षण बात हुई। इससे आत्मिक से अलग कुछ शारीरिक, या कि कहना चाहिए, ऐन्द्रियिक स्वास्थ्य मिला।

इसी पहले दौर में एक कहानी जो लेकर बैठा कि अटक गया। देखा कि मन में काफ़ी विकल्प उपज रहे हैं और ताना-बाना फैलता जा रहा है। इससे तो मैं डर गया। छापे में छः-सात-आठ पृष्ठों में चीज आ जाए तो ठीक है, पर यह बला तो उतने में समाने वाली नहीं दीखती। इस उलझन में पड़कर तीन-चार सफ़े लिखे हुए दूर हटा फेंके। पर कुछ और करने को न था और लिखने से मिली ताजगी तीन-चार दिन में चुक कर ख़तम हो गई थी। फिर वही मुर्झाहट। सोचूं कि लिखूं तो वही पुरानी उधेड़-बुन के तार दिमाग में जाग जाएँ। आख़िर टालता कब तक? इस तरह उस कहानी को लिखे चला गया, तो बन गई परख।

परख में क्या श्रेय है और क्या प्रेय है—इसके उत्तर में मुझे निश्चय है कि साहित्य का अध्यापक और विद्यार्थी अत्यन्त प्रामाणिक रूप में बहुत कुछ कह सकेगा। पर मैं इतना जानता हूँ कि उसके सत्यधन की व्यर्थता मेरी है और बिहारी की सफलता मेरी भावनाओं की है। और कट्टो वह है जिसने मुझे व्यर्थ किया और जिसे मैं अपनी समस्त भावनाओं का वर-

दान देना चाहता था। यानी यथार्थता की धरती से उठकर, उन सब चित्रों मे जिन्होंने मिलकर परख की कथा को रूप दिया, मेरी भावनाएँ और धारणाएँ ही अनायास भाव से बुनती गई हैं।

इस ऊपर की बात से मेरा यह मतलब है कि व्यक्ति को सीधे अपने जीवन मे मिलने वाला जो लाभ है वह साहित्य का पहला श्रेय है। शायद उसको व्यक्तित्व लाभ ही कहना चाहिए। यानी लिखने के द्वारा मैंने क्या श्रेय देना चाहा है, यह दूसरे नम्बर की और गौण बात है। उस लेखन द्वारा, नाना चरित्रों की अवतारणाओं मे से, मैंने अपनी निजता मे किन परिणतियों का उपभोग किया है, वही प्रथम और प्रमुख बात है।

लेखक देने के लिए कुछ दे सकता है, यह मेरी समझ म नही आता। पड़ोस का हलवाई तय कर सकता है कि आज मुझे यह इतना और वह उतना बनाना है, पर कोई दरख्त भी क्या यह सोच सकता है कि सेव नही उसे अपने ऊपर अनार उगाना है? जो स्वय मे है उसके सिवा फल मे कुछ और होगा ही कैसे? इसलिए सेव यह भी नही सोच सकता कि उसे सेव का फल देना है।

यह नही कि लेखक पेड़ है। पर निश्चय लेखक हलवाई नही है। यानी अपने साहित्य द्वारा वह कुछ इष्ट, कुछ श्रेय या आदर्श की प्रतिष्ठा करना चाहता हो तो यह उसके कर्म से असगत बात नही है, लेकिन फिर वह इष्ट या उद्दिष्ट उसके लिए बौद्धिक प्रतिपादन का विषय नही रह जाएगा। अर्थात् भावना से अलग धारणा मे, या वासना से अलग भावना मे उसकी स्थिति नही है। समूची मानसिकता मे उसको रमा और समाया हुआ होना चाहिए।

अपने साहित्य मे कुछ मैंने शब्द के द्वारा कहा है, कुछ चित्र के द्वारा व्यक्त किया है; चित्रात्मक यानी कथा साहित्य। वहाँ आप तो कुछ कहते नही, कथा के पात्र ही कहते-सुनते हैं। फिर उनकी बातें उनकी अपनी प्रकृति और कथा की परिस्थिति से बनती है। कोई परस्पर की अनुकूलता होना उनमे जरूरी नही है, बल्कि प्रतिकूलता और अन्तर्विरोध भी उनमे हो सकते हैं। मुझे यह भी लगता है कि एक कथा की, पात्र की,

या व्यक्तित्व की निजता में जितना गहरा और गम्भीर विरोध समा सकता है उतना ही उसका महत्त्व है। फिर कथा के किस पात्र या पात्र के किस वाक्य और समूची वस्तु के किस पहलू में उस मन्तव्य को देखा जाए जिसको श्रेय समझकर लेखक ने कलम उठाई है?—स्पष्ट ही इस निर्धारण का काम मुश्किल है और जोखिम से भरा है।

असल में तो एक कहानी से या पुस्तक से कुल मिलाकर एक प्रभाव पड़ना चाहिए। उस प्रभाव की एकता में नाना तत्त्वों की अनेकता तो रहेगी ही। किन्तु उन तत्त्वों के नानात्व में रचना के श्रेय को भी नानाविध नहीं देखना होगा।

सीधा शब्दों द्वारा जो कहा गया वह निबन्ध साहित्य तो, मैं मानता हूँ, मुझे पाठक के हाथों पकड़ाई में दे ही देता है। कथा में लक्षणा, व्यंजना और व्यंग का सहारा हो और उसके बारे में द्विविधा भी होती हो, पर निबन्धों में तो काफी प्रत्यक्ष और स्थूल रूप से मैंने अपनी धारणा के श्रेय को खोला और बताया है।

यहाँ याद आता है कि मैंने एक बार स्वर्गीय प्रेमचन्द से पूछा था कि बताइए अपने सारे लिखने में आपने क्या कहा और क्या चाहा? उन्होंने बिना देर लगाए उत्तर दिया, 'धन की दुश्मनी।'

मैं अपने से वही पूछूं तो उत्तर मिले, 'बुद्धि की दुश्मनी।'

जानता हूँ प्रेमचन्द को धन प्यारा था, और बुद्धि को किसी मोल मैं नहीं छोड़ सकता हूँ। लेकिन मेरे अन्दर सबसे गहरे में यह प्रतीत होता है कि बुद्धि भरमाती है। अक्सर वह श्रद्धा को खाती है। इन्द्रियों की तरह बुद्धि भी पदार्थ के लिए है। जगत् के और पदार्थ के साथ निपटना ही उसका क्षेत्र है। शेष में उसे पूरी तरह श्रद्धा के अंकुश में रहकर चलना होगा।

तो, एक तरह से, या दूसरी तरह से, सीधे या टेढ़े, उघड़ी कि लिपटी, वही-वही बात मैंने कहनी और देनी चाही है।

बुद्धि द्वैत पर चलती है। इसीलिए मेरे साहित्य का परम श्रेय तो हो रहता है अखंड और अद्वैत सत्य। उसी का व्यावहारिक रूप है समस्त चराचर जगत् के प्रति प्रेम, अनुकंपा : यानी अहिंसा।

विद्यानिवास मिश्र

अभी-अभी हूँ, अभी नहीं

महीनो से मन मे बड़ी उमड-घुमड हो रही है। कभी हिन्दू धर्म के उदार और विश्वजनीन स्वरूप पर लिखने को जी करता है, कभी देश मे निष्ठा के तेजी से अवमूल्यन पर, कभी अपने देश के बुद्धिवादी मन मे पैठे विलायती चोर पर और कभी दिग्विहीन नयी पीढ़ी के दिग्विहीन आक्रोश पर। सैकडो यादे ताख पर पडे-पडे ऊब चले हैं, कोई जोरदार हुआ तो खीच कर बुलाता है, चौंक पडता हूँ, स्वधर्म अलग दबाव देता है, जडता की प्राचीर तोड़ो। पर कही निषेध का ऐसा शिलाखण्ड आकर पड गया है कि सारी उमड-घुमड इससे टकरा कर पीछे की ओर मुड जाती है, कही निकलने का रास्ता नही पाती, कही कोई ऐसी प्रतिघातिनी प्रभा है, जो देखने नही देती, कही कोई ऐसी खौफनाक आवाज है, जो घिग्घी बाँध देती है, कही कोई ऐसा देवता है जो बने-अधबने चित्रों की कौन कहे, मन मे बैठे चित्रो को भी अपने स्याही पुते हाथ से मेटने पर उतारू है।

किसके लिए लिखा जाय, किससे कुछ कहा जाय, कौन पढ़ता है, कौन सुनता है और पढ़े भी, सुने भी तो फर्क क्या पडता है? जड-चिन्तन को नकारने वाला चिन्तन भी तो कोई खाती उकसा नही पाता। हर साधना आत्मवञ्चना लगती है, क्योकि हर वञ्चना साधना बनकर बहुत जल्दी पुजने लगती है। हर लडाई बेमानी लगती है, क्योकि वह बूमरैंग की तरह अपने ऊपर ही उलट जाने की जबर्दस्त सम्भावना रखती है। हर मन्थन जहर उगलकर थक जाता है, अमृत तो अनमथे राजबावडियों मे उतरा रहा है, हाँ उन बावडियों पर श्वेत फणियो का पहरा है। हर खोज सत्य की चर्खी मे घुमरी खाने की लम्बी यातना है, क्योकि सत्य की टाँग टूट गई है, वह चर्खी पर फिट कर दिया गया है और उसे नचानेवाला एक मिस्त्री है, वह मिस्त्री इसको मेले मे घुमाकर पैसा पैदा कर रहा है,

पर वह मिस्त्री भी एक संगठन का चाकर है, पैसे का मालिक संगठन है, मिस्त्री को बस पगार मिलती है, कभी-कभी बोनस भी। हर अनुष्ठान फीका लगता है, क्योंकि अनुष्ठान पर पड़ी फ्लैश बल्ब की तेज रोशनी उसकी सिलवटों को सपाट कर देती हैं। पूजा का हर बोल खोखला लगता है, क्योंकि उसका शब्द मरे चाम की तरह मढ़ा हुआ है, अर्थ से उसका कोई दैहिक नाता नहीं रह गया है। सही बात कहने का साहस मखौल बन गया है, क्योंकि कायरता सिंहासन पर खड्गहस्त विराजमान है। कहीं कोई चीज़ छूती भी है तो वह छुअन बड़ी घबराहट पैदा कर देती है, मानो वह किसी ज़हरीले कीटाणु की छुअन हो। कहीं कुछ दर्द होता भी है तो वह बहुत पराया लगता है, अपना अंग तो दर्द के संवेदन से संन्यास ले चुका है।

आदर्शों के गुफामन्दिर में पैठता हूँ तो हर मूर्त्ति, हर शिल्पपट्टिका, हर चँदोवा, हर खंभ, हर वार्जा, हर मेहराब पर एक तख्ती लगी पाता हूँ 'बिकाऊ है'। देश की संस्कृति का प्रत्येक उपादान निर्यात के लिए रेशम की डोरियों में बँध रहा है। गँवई-देहात पर भी निर्यात की सुदृष्टि हो चुकी है। कुछ चीजें देसी खपत के लिए हैं, उनमें मन्दी आ गई है, गाँधीवाद, अहिंसा, पंचशील, मातृभूमि, हिमालय, भागीरथी, बलिदान, आहुति, मानवतावाद, इनका स्टाक बहुत पड़ा हुआ है, इसलिए इनकी क़ीमत औनी-पौनी करके 'बिक्री पर छूट' की मुनादी कर दी गयी है, देश में खरीदार तो गिने-गिनाये हैं, जो हैं, वे सरकार के ही अंग हैं, बिचारे कहाँ तक खरीदें। जड़ता का जीवन-दर्शन अब शासन ने पूरी तरह नियामक नीति के रूप में स्वीकार कर लिया है, हिंसा का जवाब सरकार क्यों दे, जनता देगी। गरज सरकार की है या जनता की। सरकार जनता की है, पर जनता सरकार की तो है नहीं। सरकार की तो बस सरकार है, सरकार यानी कुर्सी की दौड़, जहाँ जीत लपककर बैठने वाले की है, दौड़नेवाले की नहीं। सत्यों का सत्य महासत्य कुर्सी है, चाहे वह आराम-कुर्सी हो या कामकुर्सी हो, वस्तुतः कुर्सी बैठने और बैठकर ऊँघने या सोने के लिए है, काम के लिए नहीं। कुर्सी के साथ एक ही सक्रिय क्रिया का जुड़

बैठता है, वह है तोडना, पालथी मारकर बैठे-बैठे 'कुर्सी तोडना' यही सच्चा सक्रिय व्यापार है। देखता हूँ आदर्शों का गुफागेह इस महासत्य के प्रकाश से चुँधिया सा पड़ा है। देखता हूँ आत्मा-परमात्मा को चीरकर एक अन्तरात्मा का नृसिंहावतार हुआ है और लक्ष्मी हाथ जोडे विनती कर रही है, प्रभु, अब कोप निवेरो।

दिन ऐसे ही ऊहापोह मे दुःस्वप्नो की रील से नाचते चले जा रहे हैं। ऐसे मे क्या नीद आयेगी, आयेगी तो भी तो सपनो की दूसरी रील उधेडती आयेगी।

ऐसे मे ही दिन दुपहर एक सपना देखा। टेसू के फूलो की एक सभा हो रही है, सभापति के आसन पर आँकी-बाँकी गुलाबी पाग बाँधे एक बदहवास किस्म का लफगा बैठा है, गले मे चैती गुलाबो का गजरा, कान मे आम का नन्हा-सा तामई कर्ला, हाथो मे दहकते टेसू के फूलो से ऊपर सजा डडा और पैरो मे कचनार के फूलो की बेडी डाले कुछ बडा उन्मन-सा है। आँखो मे नशा चढा होने के बावजूद एक आतक की छाया साफ दिख रही है। उसके बायें बाजू मे एक पीला-सा औंधाया गब्बारा है, उसमे दो पिचपिची आँखें बनी हुई हैं और उसके चाँद पर 'चाँद' ये दो बडे-बडे अक्षर चमकीली काली स्याही मे अकित हैं। बायें बाजू पर एक बौना-सा बूढा खडा है या ठीक-ठीक कहे एक तिकोने पुराने तरकश पर टिका हुआ है, इस तरकश मे तीर नही है, उसके कधे मे एक टूटा हुआ धनुष लटक रहा है, धनुष कागज के फूलो से बना है, फूलो के रग एक से एक शोख और चटकीले हैं, पर ये कागजी फूल जगह-जगह से गोद के उचकने से गूथनेवाले तार मे लटककर अलग से हो गए हैं और तार नगा हो गया है। सभापति के आसन के नीचे मुरझायी-सी एक चन्दन-वल्लरी ढही पडी है।

एक टेसू उठता है और सभापति को चुनौती देता है, कुर्सी से उतर जाओ, तुम्हें हम लोग सभापति नही मानते। बायें बाजू वाला गुब्बारा सिर हिलाता है, आँख मिचमिचाता है, फिर, जैसे के तैसे फिर हो जाता है। दायें बाजू वाला बौना एक बार काँपते हुए तनकर खडा होना चाहता

है, किन्तु लड़खड़ा कर गिर पड़ता है। सभापति के आसन पर बैठा हुआ बांका आँखें तरेरना चाहता है पर आँखें और झप जाती हैं, उसके हाथ से फूलछड़ी छूटकर ज़मीन पर आ रहती है। और दूसरा टेसू मुट्ठी बांधे खड़ा हो जाता है—हम वसन्त को अपना नेता नहीं मानते; हम इस बौने की कमान से छूटने के लिए तीर बनने को राजी नहीं; हम इस गुब्बारे के जादू को अब तोड़ चुके हैं, यह हमें अब नचा नहीं सकता, चन्दन के स्पर्श से बहलाने वाली गोरी-गोरी फगुनैया चुड़ैल हमें अब बहका नहीं सकती; हम जंगल में आग बनकर धधकते हैं, अपने बूते पर, न किसी चाँद का जादू है, न किसी बहार का करिश्मा। हम नहीं चाहते हमें कोई सौन्दर्य का प्रतीक माने, हम नहीं चाहते हमारी ओट में कोई अपने जी की कचोट निकाले, हम अपने को इस्तेमाल होने देने के लिए अब कतई तैयार नहीं। हम टेसू हैं, किसी की चोली रँगने के लिए नहीं, हम टेसू हैं अपने लिए, सिर्फ अपने लिए। इतने में बड़ा शोर होता है, 'नहीं चलेगी नहीं चलेगी, बुर्जुवा वसन्त सरकार नहीं चलेगी', 'हमसे जो टकराएगा, चूर-चूर हो जायेगा', 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद'। कुर्सियाँ इधर से उधर फेंकी जाती हैं, एक टेसू के हाथ की मशाल बौने के कागजी कमान पर टूट पड़ती है और कमान भभक उठती है।

सभा भंग हो जाती है, निद्रा भंग हो जाती है।

हड़बड़ाकर उठता हूँ तो कहीं कुछ नहीं, पानी से तर खस की टट्टियों से छनकर बड़ी स्निग्ध और शीतल रोशनी आ रही है, ऊपर मद्धिम गति से पंखा चल रहा है, सिरहाने कुछ पीले कोरे कागज़ हैं, कलम है, बगल में सुराही है, फर्श पर शीतलपाटी बिछी हुई है। एक गिलास में ठंडा पानी उड़ेलकर पी जाता हूँ, थोड़ी तस्कीन होती है। इतने में फोन की घंटी घनघनाती है—'कहिए, कैसे हैं, बहुत दिनों से मिले नहीं।...आजकल तो शिद्दत की गर्मी पड़ रही है...बस यों ही फोन किया था... हाँ, अब किताब पूरी ही कर डालिए, जुलाई तक छाप दूंगा।' सपना भी कैसा होता है! इतना शोर, इतना धुआँ, इतनी आग और फिर कुछ नहीं, एक ठंडा-सा खालीपन, मौन नहीं, मौन में आदमी साँस लेता है पर मह-

सूस नही करता कि साँस ली जा रही है, खालीपन मे साँस लेना एक दहशत बन जाता है, लगता है साँस खीचने या निकालने का व्यापार अपने निजी अस्तित्व का अंग न होकर कोई आरोपित या पराया व्यापार हो।

इस सपने और इस खालीपन मे क्या सम्बन्ध है ? सपना तो झूठा है, खामखयाली है और खालीपन क्या उतना ही झूठा और उतना ही खामखयाली नही है ? सपनो के नारे तो रटे-रटाये नारे हैं, और खालीपन क्या खुद एक पढा-पढाया नारा नही है ? सपना अनजान भीतरी भय का ही एक प्रक्षेप था, और खालीपन भी तो अकारण भय का ही परिणाम है ? नही, नही, खालीपन अगर झूठा हो गया तो जीना मुहाल हो जायगा, तब तो साँस भी नही लिया जा सकेगा ? तो क्या सपना भी उतना ही सच नही। आसपास दरोदीवार पर जो लाल-लाल शब्दानुमा शब्द रातोरात उग आये हैं, वे क्या झूठ है ? हत्या, आगजनी, लूटपाट, विध्वंस क्या झूठ है ? आज भी क्या जवानी जीवन मे छन्द की खोज का पर्याय है, आज भी क्या तरुण रक्त सौष्ठव पाने के लिए व्याकुल है, आज भी क्या यौवन रचनात्मक प्रकाश का सचार है ? क्या लयहीनता, असामजस्य और विध्वंस ये हमारी तरुणाई के नये पर्याय होकर नही आ गये ? तो सपना झूठा कैसे ?

सपना अपनी जगह पर सच है, खालीपन अपनी जगह पर। खालीपन का कवच धारण कर ले, सपना झूठा हो, सच्चा हो, असर नही करता। पर एक बात है, आग का सपना होता है बुरा। कुछ शान्ति-वान्ति करा देनी चाहिए, जाने क्या हो ? खालीपन का कवच यह बार भी खाली कर देता है—कौन अकेला मेरा सिरदर्द है, मुझे तो सेमिनारों के न्यौते मिलते ही रहेंगे, बहुतो के भाग्य-निर्णय के लिए मुझे बुलाया जायेगा ही। और जब चारो ओर आग लगेगी तो फिर अकेले मैं कर ही क्या पाऊँगा ?

मेरी ननिहाल जिस गाँव में है, उसका सवेरे-सवेरे कोई नाम नही लेता, जाने क्या महाभारत घर मे मच जाय, इसलिए उसकी चर्चा अगर नितान्त आवश्यक ही हुई तो उसे 'सुरतिहवा गाँव' कहकर स्मरण किया जाता है। 'सुरतिहवा गाँव' की एक कथा है, कभी गाँव मे आग लगी,

हथेली पर नस्य रखकर ठोंकते हुए एक बाबाजी बोले—भाई, लगता है, किसी गँवार ने छप्पर के नीचे दाल बघारी है और घी बहुत खर हो गया था, बटलोई ढँकी नहीं गई, घी में लपट उठी और उसने छप्पर छू लिया, कुछ करना चाहिए। दूसरे बाबा जी ने नस्य लेते हुए तत्परता दिखलाई—कुम्हार के यहाँ से घड़े मँगाने चाहिएँ और उन्हें भर-भरकर रख लेना चाहिए, जिधर लपट जा रही हो, वहाँ पानी उँडेल कर आगे बढ़ने से उसे रोक देना चाहिए। तीसरे बाबाजी ने धड़ाम्-धड़ाम् छींकते हुए गुहार मचायी—दौड़ो, दौड़ो, आग नजदीक आ गयी, पानी ले आओ, खपड़ा उखाड़ कर नीचे की ठाट काट डालो, आग रुक जाय, आगे न बढ़े। चौथे बाबाजी ने टेंट से सुंघनी की डिबिया निकाली और दार्शनिक मुद्रा में बोले,—यह गाँव बचेगा नहीं, इतनी घनी बस्ती है, ऐसी तेज़ हवा है और ऐसे नालायक बाशिंदे हैं, पूरा गाँव भस्म हो जाएगा। और 'वृथा न जाइ देव रिसि बानी', पूरा गाँव भस्म हो गया। तभी से गाँव का नाम पड़ा—'सुरतिहवा गाँव' (सुरती सूंघने वाला गांव)।

ऐसा लगता है हमारे प्यारे भारतवर्ष का औसत बुद्धिजीवी इसी 'सुरतिहवा गाँव' के एक विस्तृत रूपान्तर में निवास करता है और वह हर आसन्न संकट के बारे में काफ़ी जागरूक है, कारण—मीमांसा में बड़ा पटु है, बड़ा त्रिकालदर्शी है, पर यह सब होते हुए वह निरुपाय है, क्योंकि वह पंगु है। यह तो विज्ञान की सुंघनी है जो उसे जिलाये रखे है। यह सुंघनी की डिबिया उसका सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है, जिस दिन गोल वाली डिबिया वह कक्षा में लाता है, उस दिन पृथ्वी गोल रहती है और जिस दिन चौकोर चाँदी की डिबिया लाता है, उस दिन पृथ्वी चौकोर हो जाती है।

ऐसे में दरवाज़े पर कुआँ खोदने की बात क्या करूँ? पानी की बात जरूर करता, क्योंकि आग पानी से ही बुझती है, पर इस देश का तो पानी जैसे मर गया है। हाँ, मेघदूत, इन्द्र और सीता के देश का। आग बरसे तो बरसे, पर पानी कैसे बरसे? मैं आग को सत्य मानता हूँ, पर पानी पर भी भरोसा रखना चाहता हूँ। कैसे रखूं, खालीपन रखने नहीं देता और सपने का डर ऐसा है कि लगता है अभी-अभी हूँ, अभी नहीं। किसी से चर्चा

करने की भी हिम्मत नहीं होती, खालीपन का एक प्रतिष्ठात्मक मूल्य जो है, चर्चा करते ही गाँठ कट जाने का डर रहता है। पत्नी से सपने की बात शुरू करता हूँ तो वह कहती है—छोड़िए, आप तो सपने में भी निबन्ध लिखते हैं। तो *निबन्धकार क्या इतना सपना है ?*

महादेवी वर्मा

बदलू

बदलू अपने बेडौल घड़ों का निर्विकार निर्माता भी था और अष्टावक्र-जैसी रूप-रेखा वाले बच्चों का निश्चिन्त विधाता भी। न कभी निर्जीव मिट्टी की सजीव विषमता ही उसका ध्यान आकर्षित कर सकी और न सजीव रक्त-मांस की निर्जीव कुरूपता ही उसकी समाधि भंग करने का सामर्थ्य पा सकी।

मैंने उसे सदा एक ओर कच्चे, पक्के, टूटे, पूरे बर्तनों के ढेर से और दूसरी ओर मैले-कुचैले, नंगे, दुबले बच्चों की भीड़ से घिरा हुआ ही देखा। जैसे मिट्टी के बर्तन कुछ सुखाने, कुछ पकाने और कुछ उठाने-रखने में टूटते रहते थे, उसी प्रकार बच्चे भी कुछ जन्म लेते ही, कुछ घुटनों के बल चलते हुए और कुछ टेढ़े-मेढ़े पैरों पर डगमगा कर माता-पिता के काम में सहायता देते हुए चल बसते थे। पर कभी उनके जन्म या मृत्यु के सम्बन्ध में बदलू को सुखी या दुःखी देखना सम्भव न हो सका। बदलू का चित्र खींच देना, किसी भी चित्रकार के लिए सहज नहीं; क्योंकि वह ऐसी परम्परा विरोधी रेखाओं में बँधा था कि एक को स्पष्ट करने में दूसरी लुप्त होने लगती थी।

उसकी मुखाकृति साँवली और सौम्य थी; पर पिचके गालों से विद्रोह करके नाक के दोनों ओर उभरी हुई हड्डियाँ उसे कंकाल-सहोदर बनाए बिना नहीं रहतीं। लम्बा इकहरा शरीर भी कभी सुडौल रहा होगा; पर निश्चित आकाशवृत्ति के कारण असमय वृद्धावस्था के भार से झुक आया था। उजली छोटी आँखें स्त्री की आँखों के समान सलज्ज थीं; पर एकरस उत्साह-हीनता से भरी होने के कारण चिकनी काली मिट्टी से गढ़ी मूर्ति में कौड़ियों से बनी आँखों का स्मरण दिलाती रहती थीं। काँपते होंठों में से निकलती हुई गले की खरखराहट सुनने वाले को वैसे ही

चौंका देती थी, जैसे बाँसुरी मे से निकलता हुआ शख का स्वर।

बदलू एक तो स्वभाव से ही मितभाषी था, दूसरे मेरे जैसे नागरिक की श्रवण-शक्ति की सीमा से अनभिज्ञ, अत उससे कुछ कहने-सुनने के अवसर कम ही आ सके।

जब कभी आते-जाते मैं, उसके घूमते हुए चाक पर स्थिर-सी उँगलियो का निर्माण-क्रम देखने के लिए रुक जाती, तब वह एक बारगी अस्थिर हो उठता। अपनी घबराहट छिपाने के लिए वह बार-बार खाँसकर गला साफ करता हुआ खरखराते स्वर मे खेदन, दुखिया, नत्थू आदि को मचिया निकाल लाने के लिए पुकारने लगता। जब एक चलनी जैसी झरझरी और साढ़े तीन् पायो पर प्रतिष्ठित मचिया का अँधेरी कोठरी से उद्धार करने के लिए वे बच्चे प्रतियोगिता आरम्भ कर देते, तब मैं वहाँ से विदा हो जाने ही मे भलाई समझती थी। मेरे बैठने से मचिया की कुशलता तो सदिग्ध हो ही जाती थी, साथ ही मटके-मटकियों का भविष्य भी खतरे मे पड सकता था।

बदलू का घर मेरे आने-जाने के रास्ते मे पडता था, अत या तो मुझे लौटने की जल्दी रहती थी या पहुँचने की। ऐसा अवकाश निकालना कठिन था, जिसे वहाँ बिता देने से दूसरो के काम मे व्याघात न पडता हो।

हाँ, जिस दिन रधिया अपने द्वार पर मिट्टी छानती या घर का कोई और काम करते मिल जाती, उस दिन कुछ देर रुकना आवश्यक ही नही, अनिवार्य हो उठता। उसे कभी बरसाती आँखो और कभी हँसते होठो से अपने एकरस जीवन की गाथा सुनाना अच्छा लगता था। उसकी आँखें, उसके होंठ, उसके हाथ-पैर सब मानो अपनी-अपनी कथा सुनाने को आतुर थे, इसी से शब्दो मे उसे थोडा ही कहना पडता था; पर वह थोडा इतना मार्मिक रहता कि सुनने वाला शीघ्र ही अपने आपको प्रकृतिस्थ नही कर पाता। किसी करुण रागिनी के समान उसकी कथा जितना उसके हृदय का मन्थन करती, उतना ही दूसरे के हृदय का, अत अनेक बार उस कुम्हार-वधू से अपने आवेग को छिपा लेना मेरे लिए भी कठिन हो जाता था।

रधिया को मूर्तिमती दीनता कहना चाहिए। किसी पुरानी धोती की मैली कोर फाड़कर कसे हुए रूखे उलझे बाल पर्व-त्यौहार पर काली मिट्टी से धो भले ही लिए जाएँ, पर उन्हें कड़ुवे तेल की चिकनाहट से भी अपरिचित रहना पड़ता था। धोती और उसके किनारे को धूल एकाकार कर देती थी, उस पर उसकी जर्जरता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि घूँघट खींचने पर किनारी ही उँगलियों के साथ नाक तक खिंची चली आती थी।

दुःख एक प्रकार शृंगार भी बन जाता है, इसी कारण दुःखी व्यक्तियों के मुख, देखने वाले की दृष्टि को बाँधे बिना नहीं रहते।

रधिया के मुख का आकर्षण भी उसकी व्यथा ही जान पड़ती थी—वैसे एक-एक करके देखने से, मुख कुछ विशेष चौड़ा था। नाक आँखों के बीच में एक तीखी रेखा खींचती हुई ओंठ के ऊपर गोल हो गई थी। गहरे काले घेरे से घिरी हुई आँखें ऐसी लगती थीं, जैसे किसी ने उँगली से दबाकर उन्हें काजल में गाड़ दिया हो। ओठों पर पड़ी हुई सिकुड़न ऐसी जान पड़ती थी, मानो किसी तिक्त दवा की प्याली से निरन्तर स्पर्श का चिह्न हो। इन सब विषमताओं की समष्टि में जो एक सामञ्जस्यपूर्ण आकर्षण मिलता था, वह अवश्य ही रधिया के दुःख-विगलित हृदय से उत्पन्न हुआ होगा। वह जीवन रस से जितनी निचुड़ी हुई थी, दुःख में उतनी ही भीगकर भारी हो उठी, इसी कारण उसमें न वह शून्यता थी, जो दृष्टि को रोक नहीं पाती और न वह हल्कापन, जो हृदय को स्पर्श करने की शक्ति नहीं रखता।

घिसकर गोल से चपटे हो जाने वाले काँसे के कड़े और मैल-से रूप-रेखाहीन लाख की चूड़ियों के अतिरिक्त और किसी आभूषण से रधिया का परिचय नहीं; पर वह इस परिचयहीनता पर खिन्न होती नहीं देखी गई। गठे हुए शरीर और भरे अंगों वाली वह स्त्री, सन्तान की अटूट शृंखला और दरिद्रता की अघट छाया के कारण ऐसा ढांचा-मात्र रह गई थी, जिसे चलता-फिरता देखना भी विस्मय का कारण हो सकता था।

इस वर्ग की स्त्रियों में जो एक प्रकार की कर्कश प्रगल्भता मिलती है, उसका रधिया में सर्वथा अभाव रहा। सम्भवतः इसी कारण मेरी उदा-

सीनता का कुतूहल में और कुतूहल का सम्मान में रूपान्तरित होना अनिवार्य हो गया। बदलू के प्रति उसका स्नेह गम्भीर और इसी से कोलाहल-हीन था। न वह कभी घर की, बच्चों की और स्वयं उसकी चिन्ता करता देखा गया और न रधिया के मुख से उसके गोबरगणेश पति की निन्दा सुनने का किसी को सौभाग्य प्राप्त हो सका। रधिया को विश्वास था कि उसका पति कुम्भकार शिरोमणि और अच्छा कलावन्त है केवल लोग उसकी महानता से परिचित नहीं।

सवेरे उठकर कभी मक्का, कभी जुन्हरी, कभी बाजरा और कभी जौ-चना पीसकर रधिया जिस कठोर कर्त्तव्य का आरम्भ करती, उसका उपसंहार तब तक होता था, जब टिमटिमाते दिये के धुधले प्रकाश में या फुलझड़ी के समान पल भर जलकर बुझ जाने वाली सिरकियों के उजाले के सहारे, कुछ उनींदे और कुछ रोते बच्चों में सवेरे की रोटी बँट चुकती।

बच्चे जीवित थे पाँच, पर उनकी संख्या बताते समय रधिया उन्हें भी गिनाये बिना न रहती, जो स्मृतिशेष रह गये थे। मृत तीन बच्चों की चर्चा जीवितों के साथ इस प्रकार घुली-मिली रहती थी कि सुनने वाला उन्हें जीवित मानने के लिए बाध्य हो जाता। अन्तर केवल इतना ही था कि मृत तो कहानी के नायकों के समान केवल कहने-सुनने योग्य वायवी स्थिति में जीवित थे और जीवित, अपने कलावन्त पिता और मजदूरिन माँ के काम में सहायता देते-देते मर जाते थे। मिट्टी खोदने से लेकर हाट में बर्तन पहुँचाने तक वे अपने दुर्बल नग्न शरीरों का उतना ही उपयोग करते थे जितने से उनके प्राणों को शरीर से सम्बन्ध विच्छेद न करने का बहाना मिलता रहे। सबसे छोटा चार-पाँच वर्ष का नत्थू भी जब अपने बड़े पेट से दसगुनी बड़ी मटकी को सर पर लादकर टेढ़े-मेढ़े सूखे पैरों पर अकड़ता हुआ हटिया जाने का उत्साह दिखाता, तब न उसके पुरुषार्थ पर हँसी आती थी न रोना।

बर्तनों के बेचने से पूरा नहीं पड़ता, अतः अपने जन्मजात व्यवसाय से जीविका की समस्या हल न होती देख, रधिया आस-पास के खेतों में काम

करने चली जाती थी। कभी-कभी उसके खेत से बदलू के हाट से लौटने तक छोटे-छोटे जीव बाहर के कच्चे चबूतरे पर या उसके नीचे धूल में जहाँ-तहाँ लेटकर बेसुध हो जाते। रधिया जब लौटती, तब उन्हें भीतर पुरानी मैली धोती के बिछौने पर एक पंक्ति में सुला देती। उस परिवर्तन क्रम में जो जाग उठता था, उसे छींके पर धरी हँडिया में से निकालकर मोटी रोटी का टुकड़ा भेंट किया जाता था और जो सोता रहता था, उसे स्नेह-भरी थपकियों पर ही रात बितानी पड़ती।

बदलू भी उस हँडिया के प्रसाद का अधिकारी था; पर इस सीमित अन्नकोष की अन्नपूर्णा को, कब नींद से अपने एकादशी व्रत का पारायण नहीं करना पड़ता, यह जान लेना कठिन होगा।

विचित्र ही थे वे दोनों। पति भोजन नहीं जुटा पाता, वस्त्र का प्रबन्ध नहीं कर सकता और बच्चों के भविष्य या वर्तमान की चिन्ता नहीं करता; पर पत्नी को उसके दुर्गुण ही नहीं जान पड़ते, असन्तोष का कोई कारण ही नहीं मिलता।

रधिया के किसी बच्चे के जन्म के समय कोई कोलाहल नहीं होता। छोटे लक्खी का जिस रात को जन्म हुआ, उसकी सन्ध्या तक मैंने रधिया को बड़ा घड़ा भरकर लाते देखा। घड़ा रखकर उसने मेरे लिए वही चिर-परिचित साढ़े तीन पायों वाली मचिया निकाल दी। उस पर बहुत सतर्कता से अपना सन्तुलन करती हुई मैं जब बच्चों से इधर-उधर की बातें करने लगी, तब रधिया ने अपने धारहीन हँसिये को चबूतरे के नीचे पड़े पत्थर के टुकड़े पर घिस-घिस कर धोना आरम्भ किया। मैंने कुछ हँसी और कुछ विस्मय भरे स्वर में पूछा, 'रात में इसका क्या काम है। क्या किसी का गला काटेगी?' उत्तर में रधिया बहुत मलिन भाव से मुस्करा दी।

दूसरे दिन सोमवती अमावस्या होने के कारण मुझे अवकाश था, इसीसे वहाँ पहुँचना सम्भव हो सका। बदलू का चाक सदा के समान उदासीनता में गतिशील था; पर बच्चे घर के द्वार को घेरकर कोलाहल मचा रहे थे। मैंने सकुचाए हुए बदलू की ओर न देखकर दुखिया से

उसकी माँ के सम्बन्ध मे प्रश्न किया। वह अपने भाई-बहिनो मे सब से अधिक बातूनी होने के कारण एक-एक साँस मे अनेक कथाएँ कह चली। उसके नया भइया हुआ है। माई ने चमारिन काकी को नही बुलाने दिया —एक रुपया माँगती थी। दराँती से अपने-आप नार काट दिया—उसारे के कोने मे गडा है। भइया टिटहरी की तरह पाँव सिकोडे, आँखें मूदे पडा है। बप्पा ने माई को बाजरे की रोटी दी है, इत्यादि महत्त्वपूर्ण समाचार मुझे कुछ क्षणो मे ही मिल गये। तब भीतर झाँककर देखने का निष्फल प्रयत्न किया, क्योकि मलिन वस्त्रो मे लिपटी श्यामांगिनी रधिया तो मिट्टी की धूमिल दीवारो से अन्धकार मे धूमिल-सी हो गई थी। अपने भावी कुम्भकार को निकट आकर देखने का आमन्त्रण पाकर मैंने भीतर पाँव रखा।

कोठरी मे व्याप्त धुएँ और तम्बाकू की गन्ध हर साँस को एक विचित्र रूप से बोझिल किये दे रही थी। पिंडोर से पुती, पर दीमको से चेचक रूप दीवारें, खडे-खडे भारी छप्पर सँभालने मे असमर्थ होकर मानो अब बैठकर थकावट दूर कर लेना चाहती थी। चूल्हे के निकटवर्ती कोने म नाज रखने की मटमैली और काली मटकियो के साथ चमकते हुए लोटा-थाली आदि, जेल की कठिन प्राचीर के भीतर एकत्र बी० क्लास और ए० क्लास के बन्दी हो रहे थे। घर के बीच मे गृहस्वामी के लिए पडी हुई झले जैसी खटिया की लम्बाई सोने वाले के पैरो को स्थान देना अस्वीकार कर रही थी। दीवार मे बने गड्ढे जैसे आले मे न जाने कब से उपेक्षित पडा हुआ धूल-धूसरित दिया, मानो अपने नाम की लज्जा रखने के लिए ही एक इच भर बत्ती और दो बूद तेल बचाए हुए था।

ऐसे ही घर के पश्चिम वाले खाली कोने मे रधिया अपने नवजात शिशु को, जीवन के साथ-साथ दरिद्रता का परिचय करा रही थी। आँखें मूदे हुए वह ऐसा लगता था, मानो किसी बडे पक्षी के अण्डे से तुरन्त निकला हुआ बिना परो का बच्चा हो। नाल जहाँ से काटा गया था, वहाँ कुछ सूजन भी आ गई थी और रक्त भी जम गया था।

मालूम हुआ चमारिन एक रुपये से कम मे राजी नही हुई, इसीसे फिजूल-

खर्ची उचित न समझ कर उसने स्वयं सब ठीक कर लिया।

पीड़ा के मारे उठा ही नहीं जाता था—लेटे-लेटे दराँती से नाल काटना पड़ा, इसी से ठीक से नहीं कट सका; पर चिन्ता की बात नहीं है, क्योंकि तेल लगा देने से दो-चार दिन में सूख जायेगा। मैंने आश्चर्य से उस विचित्र माता के मलिन मुख की प्रशान्त और सौम्य मुद्रा को देखा।

उसके लिए मैं अभी हरीरा, दूध आदि का प्रबन्ध करने जा रही हूँ, सुन कर वह और भी करुण-भाव से मुस्कराने लगी। जो कहा उसका अर्थ था कि मैं कहाँ तक ऐसा प्रबन्ध करती रहूँगी; यह तो उसके जीवन भर लगा रहेगा।

चाक के पास निर्विकार-भाव से बैठे हुए बदलू को पुकार कर जब मैंने बनिए के यहाँ से गुड़, सोंठ, घी आदि लाने का आदेश दिया, तो वह मानो आकाश से नीचे गिर पड़ा। उसकी दुखिया की माई तो कहती थी कि गुड़ देखकर उसे उबकाई आती है, घी खाने से उसके पेट में शूल उठता है—इसी से तो वह बाजरे की रोटी देकर निश्चिन्त हो जाता है।

बदलू के सरल मुख को देखकर जब मैंने अपने मिथ्यापवाद के भार से सिकुड़ी-सी रधिया पर दृष्टि डाली, तब उस दम्पत्ति से कुछ और पूछने की आवश्यकता नहीं रही। बदलू जिस वस्तु का प्रबन्ध नहीं कर सकता, वह रधिया के लिए हानिकारक हो उठती है—यह समझते देर नहीं लगी। पर, अपने इस दिव्य ज्ञान को छिपाकर मैंने सहज-भाव से कहा—जो सब स्त्रियाँ खाती हैं, वह दुखिया की माई को भी खाना पड़ेगा, चाहे उबकाई आवे, चाहे शूल उठे।

उस घर में सन्तान का जन्म जैसा आडम्बरहीन था, मृत्यु भी वैसी ही कोलाहलहीन आती थी।

मुलिया तेज बुखार में इधर-उधर घूमती ही रही। जब चेचक के दाने उभर आये, तब माई ने पकड़कर घर के अन्धेरे कोने में टूटी खटिया पर डाल दिया। लट से घर बुहारना, नीम पर देवी के नाम से जल चढ़ाना आदि जो कर्त्तव्य रधिया के विश्वास और शक्ति के भीतर थे, उनके पालने में कोई त्रुटि नहीं हुई, पर चौथे दिन उसने परम-धाम की राह ली।

उस बालिका पर बदलू की विशेष ममता थी, इसी से जब वह उसे यमुना के गम्भीर जल मे विसर्जित कर लौटा, तब उसके शान्त मौन मे छिपी मर्म-व्यथा का अनुमान कर रधिया ने एक सपने की कथा गढ डाली। सपने मे देवी मइया कह रही थी कि इस कन्या को मैंने इतने ही दिन के लिए भेजा था; अब इसे मुझे लौटा दो। बदलू जैसे बुद्ध व्यक्ति का इस सपने से प्रभावित हो जाना अवश्यम्भावी था। जब स्वय देवी मइया उसकी मुलिया को ले जाने को उत्सुक थी, तब कोई दवा न करना अच्छा ही हुआ। दवा-दारू से लडकी तो बच ही नही सकती थी—उस पर देवी मइया का कोप सहना पडता। फिर उस लडकी का इससे अच्छा भाग्य क्या हो सकता था कि स्वय माता उसके लिए हाथ पसारें।

एक बार मैंने रधिया को उसके झूठ बोलने के सम्बन्ध मे सारगर्भित उपदेश दिया; पर उसने अपने मैले-फटे अचल से आँखें पोछते हुए जो सफाई दी, वह भी कुछ कम सारगर्भित न थी। उसका आदमी बहुत भोला है। उसका हृदय इतना कोमल है कि छोटी-छोटी चोटो से भी धीरज खो बैठता है। घर की दशा ऐसी नही कि उतने जीवो को दोनों समय भोजन भी मिल सके, इसी से वह अपने और बच्चों के छोटे-मोटे दुख को छिपा जाती है। अब भगवान् उसे परलोक मे जो चाहे दण्ड दें, पर किसी का कुछ छीन लेने के लिए वह झूठ नही बोलती।

रधिया का उत्तर ही मेरे लिए एक प्रश्न बन गया। उसने असत्य को असत्य भी कैसे कहा जाय और न कहे, तो उसे दूसरा नाम ही क्या दिया जाय!

अनेक बार मैंने बदलू को समझाया कि यदि वह बेडौल मटको के स्थान मे सुन्दर नक्काशीदार झज्झर और सुराहिया बनावे, तो वे शहर मे भी बिक सकेंगी। पर उसने चाक पर दृष्टि जमाकर खरखराते गले से जो उत्तर दिया उसका अर्थ था कि उसके बाप-दादा, परदादा सब ऐसे ही घडे बनाते रहे हैं—वह गँवई-गाँव का कुम्हार ठहरा—उससे शहराती बर्तन न बन सकेंगे। फिर मैंने अधिक कहना-सुनना व्यर्थ समझा।

एक दिन मैं पढ़ने वाले बच्चो को कुछ पौराणिक कथाएँ समझाने के

लिए कई चित्र ले गई। वे कलात्मक तो नहीं– पर बाजार में विकने वाली शिव, पार्वती, सरस्वती आदि की असफल प्रतिकृतियों से अच्छे कहे जा सकते थे।

बदलू के बच्चों में दुखिया ही पढ़ने आ सकती थी। सम्भवतः वही अपने बप्पा को वह सूचना दे आई। पर जब अपनी सारी गम्भीरता भूलकर बदलू दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा, तब मेरे विस्मय की सीमा नहीं रही। मैंने उसे सब चित्र दिखा दिए और उनका अर्थ भी यथासम्भव सरल करके समझा दिया, फिर भी बदलू बच्चों में बैठा ही रहा। सरस्वती के चित्र पर उसकी टकटकी बँधी देखकर मुझे पूछना ही पड़ा—'क्या इसे तुम अपने पास रखना चाहते हो?' बदलू की दृष्टि में संकोच था—इतनी सुन्दर तस्वीर कैसे माँगी जाय! उसके मन का भाव समझकर जब मैंने उसे वह चित्र सौंप दिया, तब वह बालकों के समान आनन्दातिरेक से अस्थिर हो उठा।

कई दिनों के बाद मैंने बदलू के अँधेरे घर के जर्जर द्वार पर चित्र को लेई से चिपका हुआ देखा और सत्य कहूँ, तो कहना होगा कि मुझे उस चित्र के दुर्भाग्य पर खेद हुआ।

दीवाली के दिन बहुत-से मिट्टी के खिलौने खरीदने का मेरा स्वभाव है। वास्तव में वह ऐसा पर्व है, जब मिट्टी के शिल्पियों की कारीगरी का अच्छा प्रदर्शन हो जाता है और उस दिन प्रोत्साहन पाकर वे वर्ष-भर कला के विकास की ओर प्रयत्नशील रह सकते हैं। आधुनिक सभ्य युग ने हमारे उत्सवों का उत्साह छीन ही नहीं लिया, वरन् इन शिल्पियों का विकास भी रोक दिया है। विचारों में उलझी हुई मैं खिलौने सजाने के लिए जैसे ही बड़े कमरे में पहुँची, वैसे ही बाहर बदलू का खरखराता हुआ कण्ठ सुनाई दिया। वह तो कभी मेरे यहाँ आया ही नहीं था, इसी से आश्चर्य भी हुआ और चिन्ता भी। क्या उसके घर कोई बीमार है, किसी प्रकार की आपत्ति आई है? बरामदे में आकर देखा—मैले कपड़ों में सकुचाया-सा बदलू एक टूटी डलिया लिए खड़ा है।

कुछ आगे बढ़कर जब उसने डलिया सामने रख कर उस पर ढका हुआ

फटे कपडे का टुकडा हटा दिया, तब मैं अवाक् हो रही। बदलू एक सरस्वती की मूर्ति लाया था—सफेद और सुनहरे रग से चित्रित। मूर्ति की प्रशान्त मुद्रा को उसके शुभ्र वस्त्र, सुनहले बाल, सुनहली बीणा और लाल चोच और पैर वाले सफेद हस ने और भी सौम्य कर दिया था। एक-एक बाल की लट, जितनी कला से बनाई गई थी, उससे तो बनाने वाला बहुत कुशल शिल्पी जान पडा। पूछा, 'किस से बनवा लाये हो इसे ?' जो उत्तर मिला उसके लिए मैं किसी प्रकार भी प्रस्तुत नही थी। बदलू ने सलज्ज आँखें नीची कर और सूखे बेडौल हाथ फैला कर बताया कि उसने अपने ही हाथो से बनाई है। विश्वास करना सहज न होने के कारण, मैं कभी मूर्ति और कभी बदलू की ओर देखती रह गई। क्या यह वही कुम्हार है, जिसने एक वर्ष पहले सुन्दर घडे बनाने मे भी असमर्थता प्रकट की थी ? मुख से निकल गया—'तुम तो गाँव के गँवार कुम्हार हो, जब नक्काशीदार घडा बनाना असम्भव लगता था, तब ऐसी मूर्ति बनाने की कल्पना कैसे कर सके ?'

धीरे-धीरे सत्य स्पष्ट हुआ। सरस्वती के चित्र को देखते-देखते, बदलू के मन मे कलाकार बनने की इच्छा जाग उठी। जहाँ तक सम्भव हो सका, उसने सारी शक्ति लगाकर उस चित्रगत सौन्दर्य को मिट्टी मे साकार करने का प्रयत्न किया। कई बार असफल रहा, पर निरन्तर अभ्यास से आज वह सरस्वती की ऐसी प्रतिमा बना पाया, जो मुझे उपहार मे देने योग्य हो सकी।

तब से कितनी ही दीवालियाँ आई, बदलू ने कितनी ही सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ बनाईं और उनमे से कितनी ही सम्पन्न घरो मे अलकार बन रही है।

सरला रधिया तो मानो अपने पति को कलावन्त बनाने के लिए ही जीवित थी। जैसे ही उसके बेडौल मटको का स्थान सुन्दर मूर्तियो ने लिया, वैसे ही अपनी ममता समेट कर किसी अज्ञात लोक की ओर प्रस्थान कर गई।

बदलू तो ऐसा रह गया, मानो चकवा-चकवी के जोडे मे से एक हो। सवेरे से साँझ तक और साँझ से सवेरे तक वह रधिया के लौट आने की

प्रतीक्षा करता रहता था। प्रतीक्षा वैसे ही करुण है; पर जब एक जीवित मनुष्य उस मृत की प्रतीक्षा करने बैठता है, जो कभी नहीं लौटेगा, तब वह करुणतम हो उठती है। मिथ्यावादिनी रधिया उस उदासीन ग्रामीण के जीवन में कौन-सा स्थान रिक्त कर गई है, यह तब ज्ञात हुआ, जब उसने घर बसाने की चर्चा चलाने वाले के सर पर एक मटकी दे मारी।

स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुन्दर है। जब वह इन विशेषताओं के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है, तब उसका रिक्त स्थान भर लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।

अन्त में तेरह वर्ष की दुखिया ने छोटा-सा अञ्चल फैलाकर अपने बप्पा और भाई-बहनों को उसकी छाया में समेट लिया। रधिया का प्रतिरूप बनकर वह उसी के समान सबकी व्यवस्था में अपने आपको गला-गलाकर बड़ा करने लगी।

दो वर्ष हो चुके, जब बदलू की कला पर मुग्ध होकर उसका एक ममेरा भाई उसे बच्चों के साथ फैजाबाद ले गया था; परन्तु दीवाली के दिन वह एक-न-एक मूर्ति लेकर उपस्थित होना नहीं भूलता। केवल इसी वर्ष उसके नियम में व्यतिक्रम हो रहा है, क्योंकि दीवाली आकर चली गई; पर बदलू अब तक कोई मूर्ति नहीं लाया। कदाचित् वह रधिया की खोज में चल दिया हो; पर मेरे घर के हर कोने में प्रतिष्ठित बुद्ध, कृष्ण, सरस्वती आदि की मूर्तियाँ, पुराने चाक पर बेडौल घड़े गढ़ने वाले ग्रामीण कुम्भकार का स्मरण दिलाकर मानो कहती ही रहती हैं—कला तुम्हारा ही पैतृक अधिकार नहीं, कल्पना तुम्हारी ही क्रीतदासी नहीं।

विष्णुकांत शास्त्री

नैन नैनीताल की छवि मे पगे

एक मोड और. . और लो सामने नैनीताल था । मुझे लगा कि मैं किसी जादू नगरी मे आ गया हूँ । पहली नज़र मिलते ही नैनीताल ने मुझे मोह लिया । सामने विशाल ताल था, जिसके तीन ओर ऊँचे-ऊँचे हरे-भरे पहाड थे । ऐसी सहज गरिमामयी शोभा इसके पहले मैंने नही देखी । हिन्दुस्तान के अनेक पर्वतीय आवास मैंने देखे हैं, दार्जिलिंग, मसूरी, कश्मीर... सबकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, पार्वत्य शोभा की सामान्यता के बावजूद, सच तो यही है कि 'किसी के रूप से मिलता नही किसी का रूप' । पहाड और जलराशि दोनो के प्रति मेरा गहरा अनुराग है... दोनो का इतना घनिष्ठ मणिकाचन सयोग पहली बार ही देख पाया और यह स्वाभाविक ही था कि कुछ समय के लिए मैं खो जाता ।

नैनीताल का ऊपरी हिस्सा मल्लीताल कहलाता है । वही खेल का बडा-सा मैदान है, अच्छे होटल है, सिनेमा-घर हैं, सचिवालय हैं, अमीरो की बस्ती है । शाम के समय नैनीताल के सभी शौकीन इस मैदान मे या इसके इर्द-गिर्द इकट्ठे होते हैं । मैदान कहने से घास से सुशोभित हरा-भरा स्थलखड का चित्र आँखो के सामने आता है, किन्तु नैनीताल का मैदान घास रहित है, मिट्टी भी जैसे पत्थरो की पिसाई से बनी है । हाँ, लम्बा-चौडा खूब है, बडे क्रिकेट ग्राउण्ड से भी बडा ही होगा । उसके ऊपर बस्ती है, नीचे ताल । एक सिनेमा, रेस्तराँ, स्केटिंग रिंक, गुरुद्वारा एव नैना देवी का मन्दिर ताल और मैदान के बीच, ताल की ओर अवस्थित है ।

दोपहर के बाद जब घूमने निकला तो मैं ताल की उपरली ओर खडा होकर देर तक मुग्ध दृष्टि से उसे एव उसके दोनो तरफ के पहाडो को भी देखता रहा । विद्यापति की पक्ति मे कुछ परिवर्तन कर दू, तो मेरी बात

बन जायेगी, 'दीर्घ अवधि हम रूप निहारिनु नयन न तिरपित भेल'। देखते-देखते लगा कि ताल के दोनों ओर घिरी हुई पर्वत शृंखलाएँ कूर्मांचल की दो विशाल भुजाएँ हैं, जिनसे उसने अपनी कान्ति से पन्ने को लजानेवाली इस हरिताभ झील को दृढ़ आलिंगन पाश में बाँध रखा है। युग-युग व्यापी इस अखण्ड मिलन ने उनके प्रेम में तो किसी भी प्रकार की शंका, भय, भ्रम या ऊब पैदा नहीं की है। झील के हृदय में उसी प्रकार प्रेम पुलकित लहरियाँ उठते देख रहा हूँ, जिस प्रकार प्रथम मिलन में उठी होंगी। कूर्मांचल को वृक्षों के मिस उसी प्रकार से कंटकित, रोमांचित होते देख रहा हूँ, जिस प्रकार वह पहले-पहल हुआ होगा। क्या यही नित्य-नूतन प्रेम है, क्या यही 'मिलेइ रहत मानो कबहुँ मिलै ना' की स्थिति है?

अचानक मुझे लगा कि मैं अकेला हूँ। 'तू एकाकी तो गुनहगार' 'बच्चन' की इस पंक्ति की सच्चाई वहीं समझ सका। अकेलापन किसे नहीं अखरता, 'स एकाकी न रमते'। श्रुति साक्षी है कि परमात्मा भी अकेला नहीं रम सका था। मैंने चारों तरफ आँखें घुमायीं, कुछ सजे-धजे स्त्री-पुरुषों के जोड़े थे, कुछ नौजवानों के झुण्ड थे, ताल पर राजहंसिनियों के समान कुछ नौकाएँ थिरक रही थीं। किसी-किसी में युगल थे, किसी-किसी में मित्र या मेरी ही तरह कुछ एकाकी। अपरिचितों को परिचित एवं नव-परिचितों को स्नेही बना लेना भगवान की कृपा से मेरा सहज स्वभाव रहा है, किन्तु क्या उससे वस्तुतः अकेलापन दूर हो जाता है। मेरी ही एक पंक्ति है, 'हूँ वही पंछी, अकेला ही रहा जो झुंड में भी'। यह नहीं कि मैं झुंड में ही अकेला रहा हूँ, अनेकों बार अकेला ही घर से निकला हूँ, लम्बी-लम्बी यात्राओं के लिए; किन्तु याद नहीं पड़ता कि इसके पहले अकेलापन इतना अधिक महसूस हुआ हो। मनोविज्ञान की दृष्टि से मैं संभवतः उभय-मुखी (ऐंबीवर्ट) व्यक्ति हूँ। 'मन मिले का मेला, नहीं तो सब से भला अकेला' का सिद्धान्त इस संशोधन के साथ बरतता आया हूँ कि 'अनमेल' मनवालों के साथ भी निभाव करता रहा हूँ, 'जिगर' का एक शेर याद आ गया:

गुलशन परस्त हूँ, नहीं गुल ही मुझे अजीज
काँटों से भी निबाह किये जा रहा हूँ मैं।

जिनके साथ मन मिला है (भले ही मत न मिला हो) उनके साथ छह-छह घंटो तक गपशप की है, बहस की है, कविताएँ सुनी-सुनायी है, हँसा हूँ, हँसाया है, शायद अपने भावातिरेक के कारण उन्हे बोर भी कर दिया है। और जब अकेला रहना पडा है, तब कई-कई दिनो तक अकेला भी सानन्द रहा हूँ। यो भी मेरा प्रति दिन का बहुत-सा समय किताबो के साथ ही बीतता है और सच ही लिख रहा हूँ कि उस समय भी मेरी शेरवानी की जेब मे एक किताब पडी हुई थी, किन्तु उस समय किताब खोलना कुफ होता।

सोचने लगा यदि दर्शन और भारती भी होती, परिवार के और लोग भी होते तो बडा मजा आता। दर्शन को यदि इस होटल मे ठहरना पडता, तो ढाल चढ़ते-उतरते उसका मुँह देखने काबिल होता। यो ही चलने मे बहुत तेज है और जब चढाई आ जाये तब तो उसके बारह ही बज जाते हैं! लेकिन जिद ऐसी है कि सब जगह ही जायेंगे। यहाँ आयी होती, तो ताल के चारो ओर चक्कर लगाकर, नौका विहार कर जरूर खुश होती, किन्तु पहाडो के ऊपर के दर्शनीय स्थान उनके बूते के नही हैं। यह बात दूसरी है कि वह उन स्थानो को देखे बिना मानती नही। सोचते-सोचते लगा कि मैं परिवार मे ही हूँ, 'मन जहाँ हो मनुज भी मानो वही है'। लगा इसमे पर्याप्त सत्य है। किन्तु जगत तो केवल भावनात्मक सत्य से नही चलता। यथार्थ तो यही था कि मैं नैनीताल में था और इस समय अकेला था तथा परिवार का साहचर्य चाहता था। यह नही कि 'होमसिक' हो गया था, बल्कि यह कि इस आनन्द को बाँटकर और अधिक कर लेना चाहता था।

सोचा कि सक्रियता से शायद भावनातिरेक से बच सकूं। एक घण्टा घुडसवारी की। यहाँ घोडे बहुत मिलते हैं। दार्जिलिंग, मसूरी, कश्मीर में साधारणत इतने अच्छे घोडे नही मिलते। ताल के चारो ओर चक्कर तो लगाया ही, कुछ ऊपर भी घूम आया। एक तरह से सारा शहर ही देख लिया। प्राचुर्य और दारिद्रय का सह-अस्तित्व देखते-देखते पथरा गयी कलकतिया आँखें भी नम हो आयी। यह सोचकर कि कुछ फटे चिथडो

के बल पर ही यहाँ की खून जमा देने वाली सर्दी झेलने वालों की संख्या कितनी अधिक है। विधाता को दोष देकर अपने दायित्व से मुक्त हो जाने की प्रवंचना अब चल नहीं सकती।

इस झील में 'शिकारे' की सैर तो बहुत खूब है, किन्तु नैनीताल में नौका-विहार का आनन्द कुछ और ही है। यहाँ की सजी-सँवरी नावें सैलानियों को स्नेह भरा निमन्त्रण देती रहती हैं। नाव पर बैठते ही मेरे बनारसी संस्कार जाग उठते हैं और डाँड पकड़ने के लिए हाथ मचल उठते हैं। एक घण्टे तक नाव खेता रहा। कुछ नावें और भी थीं। कभी-कभी दो या अधिक नावों में रेस भी लग जाती और खेने वाले यदि नौसिखिए हुए तो आपस में वे टकरा भी जातीं। नाववाले ने बताया कि मौसम के दिनों में नावें इतनी अधिक रहती हैं कि वे यों ही टकराती रहती हैं। मैंने सोचा कि अच्छा ही हुआ कि मैं उन दिनों यहाँ नहीं आया, भीड़ क्या कलकत्ते में कम है, जो यहाँ भी उसका दुःख झेलता फिरूँ। कैसा सौहार्द हो जाता है अपरिचित पर्यटकों में भी, घूम-फिर कर बार-बार मिलने वाले अन्य नावों के आरोही मधु मिश्रित मुस्कान के साथ मौन संभाषण करते तो लगता कि नहीं, मैं अकेला नहीं हूँ, ये सब भी तो अपने ही हैं।

मुझे बताया गया कि ताल बड़ा गहरा है और कहीं-कहीं तो उसकी गहराई ९६ फीट से भी अधिक है, अर्थात् १६ विष्णुकांत यदि एक के ऊपर एक खड़े कर दिये जाएँ तो भी शायद थाह न पा सकें। यह सारा जल इतने घोर पहाड़ में कहाँ से आ गया। यह जल वर्षा का नहीं है, इसका स्रोत नीचे है, ऊपर से कठोर हृदयहीन पत्थर दिखने वाले पहाड़ के अन्तःकरण में इतनी कोमलता, ममता, करुणा का संचय हो सकता है, बिना देखे इसका विश्वास कैसे किया जा सकता है। कठोर दिखने वालों में भी कोमलता हो सकती है, 'दिनकर' ने इसके समर्थन में प्रमाण देते हुए लिखा है, 'क्या न व्याकुल निर्झरों का गिरि हृदय में वास है', केवल निर्झरों का ही नहीं विशाल नैनीताल का भी वास है। हमें विश्वास रखना चाहिए कि आज के प्रस्तरीभूत मानवमन में भी कहीं नैनीताल है और अवश्य है, केवल हम वहाँ तक पहुँच नहीं पा रहे हैं।

नैनीताल की एक विशेषता यह भी है कि जल बिल्कुल स्वच्छ होते हुए भी 'हरित द्युति' है। बिहारी के अनुसार राधा की झाँई से श्याम 'हरित द्युति' होते थे। किन्तु यहाँ तो श्याम की झाँई से राधा हरित द्युति हो गयी हैं। दोनों तरफ के पर्वत इस विशाल दर्पण में अपना प्रतिबिंब देख-देखकर अपने पर मुग्ध हो रहे थे या ताल पर, यह तो नहीं कह सकता किन्तु वे गुणी से मतवाले अवश्य हो रहे थे, जैसा कि उनके झुकत वृक्षों से पता चलता था। नैनीताल के 'सुरताल' का पूरा ज्ञान मुझ जैसे बेताल को कैसे हो सकता था, लेकिन यह तो देख ही रहा था कि ताल-ताल पर नाचने वाली लहरियाँ पूरी मस्ती में थीं। ताल के आधे हिस्से में छाया और आधे में धूप, गुलाब जी की पंक्ति फुरी, 'आधा तन राधा बना, आधा तन घनश्याम'।

धीरे-धीरे छाया लम्बी होती गई और अँधेरा घिर आया। अँधेरे में नैनीताल का जादू और बढ़ गया, और रहस्यमय हो गया। होटलों, बँगलों और किनारे के लैंप पोस्टों की रंगबिरंगी रोशनियों के प्रतिबिंब ताल के स्थिर जल पर पड़कर अद्भुत समाँ बाँध रहे थे। ऐसे में निकला चाँद, उस दिन शायद कृष्णपक्ष की प्रतिपदा या द्वितीया थी। सच, उस मोहक वातावरण में चाँद ने चार चाँद लगा दिये; पहाड़ से निकला तो निश्चय ही वह 'मृगपति सरिस असंक' किन्तु अपनी उस मन स्थिति में, उस वातावरण में मुझे उसकी प्रखरता के लिए विकराल मृगपति की उपमा नहीं जँची, मुझे लगा कि यह घनानन्द के सच्चे, सरल प्रेमी की तरह प्रकट होकर निकला, 'तहँ साँचे चलें तजि आपुनपौ, झिझकें कपटी जे निसाँक नहीं'। मैं स्थिर दृष्टि से चाँद को देखता रहा। कितना बड़ा बिंब था, पंत की पंक्तियाँ याद हो आयीं :

> आज बहुत ही बड़ा चाँद आया है नभ में,
> अन्तर का पुल गया रुपहला हो वातायन।

मेरे कलुषित अन्तर का वातायन रुपहला हुआ या नहीं, यह तो नहीं कह सकता, किन्तु वह कुछ-कुछ खुला अवश्य। चाँद हो, जलाशय हो,

पहाड़ हो, शान्त और निस्तब्ध वातावरण हो तो कोई केवल जड़ यथार्थ के स्तर पर कैसे रह सकता है। जानता हूँ, आजकल भावुकता का नाम लेना अपराध है, किन्तु फिर भी स्वीकारता हूँ कि मैं भावुक हो उठा था, ताल पर चाँदी की मछलियाँ खेल रही थीं, इन मछलियों ने जैसे गुदगुदाकर सोये हुए ताल को फिर से जगा दिया था। निखरी हुई दूधिया चाँदनी भूमि से आकाश तक बिखरी हुई थी, फिर भी पहाड़ों के कितने हिस्से रहस्यमयता की काली चादर से ढँके हुए थे। 'बच्चन' की इन पंक्तियों से उस मर्म मधुर परिवेश का कुछ आभास मिल सकता है:

> चाँदनी फैली गगन में चाह मन में,
> कुछ अँधेरा, कुछ उजाला क्या समा है।
> कुछ करो, इस चाँदनी में सब क्षमा है,
> किन्तु मैं बैठा सँजोये आह मन में ॥

न जाने कितनी देर तक मैं उस वातावरण को चुपचाप जीता रहा।

ताल से सटा हुआ ही है भगवती नैना देवी का छोटा-सा किन्तु सुरम्य मन्दिर। कहते हैं दक्ष यज्ञ के विध्वंस के बाद जब प्रेमोन्मत्त शिव सती की देह अपने कंधे पर लादे विचर रहे थे, तब यहाँ भगवती के नेत्र गिरे थे। इसीलिए यहाँ की देवी को नैना देवी और उनके ताल को नैनीताल कहते हैं।

नैनीताल की सबसे ऊँची चोटी है 'चीना पीक'। सूर्योदय के दर्शनाभिलाषियों को सुबह साढ़े चार बजे ही चढ़ाई शुरू कर सूर्योदय के पहले ही चीना पीक पहुँच जाना चाहिए। साधारणतः उस समय कुहासे के बादल घाटियों में सोये रहते हैं और हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों के स्पष्ट दर्शन होते हैं। ऊँचे-ऊँचे चीड़, देवदारु तथा दूसरे वृक्ष घनी छाया किये हुए थे। बीच-बीच में मिलते थे 'बुरुंश' के वृक्ष जिसमें अत्यन्त सुन्दर लाल-लाल फूल इतनी अधिकता से लगे हुए थे कि बिहारी के नूतन पथिक दावाग्नि के भ्रम से फिर घर की ओर भाग जा सकते थे। मजे की बात यह थी कि जिसमें फूल जितने अधिक थे, उसमें पत्तियाँ उतनी ही

कम थी। किसी-किसी मे तो केवल फूल ही फूल थे, पत्तियाँ थी ही नही। दस बज चले थे किन्तु पहाड अभी अधसोये अधजगे से ही थे। सूरज की किरणो का स्पर्श पाकर कुहासे के बादल ऊपर उठने लगे थे, धर्मवीर भारती से शब्द उधार लू तो कह सकता हूँ, वह दृष्टिरोधी पर्दा पतला पडने लगा था। वह निशब्द शून्यता मुखरित होने लगी थी। उस ऊँचाई से अपने बहुत नीचे घाटियो मे डोलते-मँडराते बादलो को देखकर मन मे गुदगुदी-सी होने लगी है। कैसी प्रफुल्लता भरी है उनमे। उसे देखो अकेला होते हुए भी कैसा मस्त है, क्या उसे ही देखकर भारती ने लिखा था :

एक अकेला चचल बादल
चाँदी के हिरने-सा घाटी मे चरता है।

मल्लीताल के मैदान की सजीली चहलपहल। आधुनिकतम फैशन के विज्ञापन सदृश कुछ भौंरे, कुछ तितलियाँ। ट्राजिस्टर 'सदा राखिये मग' का सिद्धान्त मानने वालो की कृपा से फिल्मी गीतो से गुलजार माहौल। क्रीडारत युवको एव किशोरो के बीच-बीच मे हर्षध्वनि। सजी-धजी भद्र महिलाएँ यदि अपनी गरिमा के गुमान मे गिन-गिन कर कदम रख रही थी तो उनके साथ के सुसज्जित भद्र पुरुप लक्का कबूतर की तरह अकड-अकड कर चल रहे थे। स्केटिंग रिंक अभी बहुत आबाद नही थी। तेज कदमो से मैदानो का एक चक्कर काटकर मैं राजभवन के मार्ग की ओर बढा। नैनीताल मे प्रवेश करने पर बायें हाथ जो पर्वत है उसी के शिखर पर, राजभवन, अच्छे कालेज, स्कूल, चर्च तथा कुछ अत्यन्त सभ्रान्त व्यक्तियो के आवास भी हैं।

राजभवन अग्रेजी पहाडी किले की नकल पर बना था और भव्य लग रहा था। उच्चतम बिन्दु पर पहुँचकर बडी तृप्ति मिली, वहाँ से नैनीताल की दूसरी तरफ के तमाम पहाड, घाटियाँ एव रास्ते दिख रहे थे। दूर, बहुत दूर तक देख पाना कितना अच्छा लगता है।

नैनीताल की सुषमा को शब्दबद्ध करने का यह प्रयास अधूरा है, अपर्याप्त है। मेरा मन तो 'अज्ञेय' के शब्दो मे कह रहा है 'है, अभी कुछ और है, जो

कहा नहीं गया', किन्तु विवेक कहता है कि वह शायद कहा नहीं जा सकता इसलिए भी कि शायद वह शब्दातीत है और इसलिए भी कि मेरी वाणी अक्षम है। भवानी भाई की पंक्ति दुहरा दूं : 'वाणी की दीनता, अपनी मैं चीन्हता'।

जयशंकर 'प्रसाद'

विसाती

उद्यान की शैल-माला के नीचे एक हरा-भरा छोटा-सा गाँव है। वसन्त का सुन्दर समीर उसे आलिंगन करके फूलो के सौरभ से उसके झोपडो को भर देता है। तलहटी के हिम-शीतल झरने उसको अपने बाहुपाश मे जकडे हुए हैं। उस रमणीय प्रदेश मे एक स्निग्ध संगीत निरन्तर चला करता है, जिसके भीतर बुलबुलो का कलनाद कम्प और लहर उत्पन्न करता है।

दाडिम के लाल फूलो की रँगीली छाया सन्ध्या की अरुण किरणो से चमकीली हो रही थी। शीरी उसी के नीचे शिलाखण्ड पर बैठी हुई सामने गुलाबो का झुरमुट देख रही थी, जिसमे बहुत से बुलबुल चहचहा रहे थे। वे समीरण के साथ भूल-भुलैया खेलते हुए आकाश को अपने कलरव से गुंजरित कर रहे थे।

शीरी ने सहसा अपना अवगुंठन उलट दिया। प्रकृति प्रसन्न हो हँस पडी। गुलाबो के दल मे शीरी का मुख राजा के समान सुशोभित था। मकरन्द मुँह मे भरे दो नील-भ्रमर उस गुलाब से उडने मे असमर्थ थे, भौरो के पर नि:स्पन्द थे। कँटीली झाडियो की कुछ परवाह न करते हुए बुलबुलो का उसमे घुसना और उड भागना शीरी तन्मय होकर देख रही थी।

उसकी सखी जुलेखा के आने से उसकी एकान्त भावना भग हो गई। अपना अवगुंठन उलटते हुए जुलेखा ने कहा—'शीरी! वह तुम्हारे हाथो पर आकर बैठ जाने वाला बुलबुल आजकल नही दिखलाई देता।'

आह खीचकर शीरी ने कहा, 'कडे शीत मे अपने दल के साथ मैदान की ओर निकल गया। बसन्त तो आ गया पर वह नही लौटा।'

'सुना है कि ये सब हिन्दुस्तान मे बहुत दूर तक चले जाते हैं। क्या यह

सच है, शीरी ?'

'हाँ, प्यारी ! उन्हें स्वाधीन विचरना अच्छा लगता है । इनकी जाति बड़ी स्वतन्त्रता-प्रिय है ।'

'तूने अपनी घुंघराली अलकों के पाश में उसे क्यों न बाँध लिया ?'

'मेरे पाश उस पक्षी के लिए ढीले पड़ जाते थे ।'

'अच्छा लौट आवेगा, चिन्ता न कर । मैं घर जाती हूँ ।'

शीरीं ने सिर हिला दिया ।

जुलेखा चली गयी ।

जब पहाड़ी आकाश में संध्या अपने रँगीले पट फैला देती, तब विहग केवल कलरव करते पंक्ति बाँधकर उड़ते हुए गुंजान झाड़ियों की ओर लौटते और अनिल में उनके कोमल परों से लहर उठती, जब समीर अपनी झोंकेदार तरंगों में बार-बार अन्धकार को खींच लाता, जब गुलाब अधिकाधिक सौरभ लुटाकर हरी चादर में मुँह छिपा लेना चाहते, तब शीरीं की आशा भरी दृष्टि कालिमा से अभिभूत होकर पलकों में छिपने लगती । वह जागते हुए भी एक स्वप्न की कल्पना करने लगती ।

हिन्दुस्तान के समृद्धिशाली नगर की गली में एक युवक पीठ पर गट्ठर लादे घूम रहा है । परिश्रम और अनाहार से उसका मुख विवर्ण है । थक-कर वह किसी द्वार पर बैठ गया है । कुछ बेचकर उस दिन की जीविका प्राप्त करने की उत्कण्ठा उसकी दयनीय बातों से टपक रही है । परन्तु वह गृहस्थ कहता है, 'तुम्हें उधार देना हो तो दो, नहीं तो अपनी गठरी उठाओ । समझे आगा ।'

युवक कहता है, 'मुझ में उधार देने की सामर्थ्य नहीं ।'

'तो मुझे भी कुछ नहीं चाहिए ।'

शीरीं अपनी इस कल्पना से चौंक उठीं । काफिले के साथ अपनी सम्पत्ति लादकर खैबर के गिरि-संकट को वह अपनी भावना से पादाक्रान्त करने लगी ।

उसकी इच्छा हुई कि हिन्दुस्तान के प्रत्येक गृहस्थ के पास हम इतना

धन रख दें कि वे अनावश्यक होने पर भी उस युवक की सब वस्तुओं का मूल्य देकर उसका बोझ उतार दें। परन्तु सरला शीरी निस्सहाय थी। उसके पिता एक क्रूर पहाड़ी सरदार थे। उसने अपना सिर झुका लिया। कुछ सोचने लगी।

सन्ध्या का अधिकार हो गया। कलरव बन्द हुआ। शीरी की साँसो के समान, समीर की गति अवरुद्ध हो उठी। उसकी पीठ शिला से टिक गई।

दासी ने आकर उसको प्रकृतिस्थ किया। उसने कहा, 'बेगम बुला रही हैं। चलिये मेहदी आ गयी है।'

महीनो हो गये। शीरी का ब्याह एक धनी सरदार से हो गया। झरने के किनारे शीरी के बाग मे शबरी खिची है। पवन अपने एक-एक थपेडे में सैकडो फूलो को रुला देता है। मधु धारा बहने लगती है। बुलबुल उसकी निर्दयता पर क्रन्दन करने लगते हैं। शीरी सब सहन करती रही। सरदार का मुख उत्साहपूर्ण था। सब होने पर भी वह एक सुन्दर प्रभात था।

एक दुर्बल और लम्बा युवक पीठ पर गट्ठर लादे सामने आकर बैठ गया। शीरी ने उसे देखा, पर वह किसी ओर देखता नही। अपना सामान खोलकर सजाने लगा।

सरदार अपनी प्रेयसी को उपहार देने के लिए काँच की प्याली और कश्मीरी सामान छाँटने लगा।

शीरी चुपचाप थी, उसके हृदय कानन मे कलरवो का क्रन्दन हो रहा था। सरदार ने दाम पूछा। युवक ने कहा, 'मैं उपहार देता हूँ, बेचता नही। विलायती और कश्मीरी सामान मैंने चुनकर लिये हैं। इनमें मूल्य ही नही हृदय भी लगा है। ये दाम पर नही बिकते।'

सरदार ने तीक्ष्ण स्वर मे कहा, 'तब मुझे न चाहिए। ले जाओ, उठाओ।'

'अच्छा उठा ले जाऊँगा। मैं थका हुआ आ रहा हूँ। थोड़ा अवसर दीजिए, मैं हाथ-मुँह धो लू।' यह कहकर युवक भरभरायी हुई आँखो को छिपाते हुए उठ गया।

सरदार ने समझा, झरने की ओर गया होगा। विलम्ब हुआ पर वह

न आया। गहरी चोट व निर्मम व्यथा को वहन करते कलेजा हाथ से पकड़े हुए शीरीं गुलाब की झाड़ियों की ओर देखने लगी लगी। परन्तु उसकी आंसू भरी आंखों को कुछ न सूझता था। सरदार ने प्रेम से उसकी पीठपर हाथ रखकर पूछा, 'क्या देख रही हो?'

'एक मेरा पालतू बुलबुल शीत में हिन्दुस्तान की ओर चला गया था। वह लौटकर आज सवेरे दिखलाई पड़ा, पर जब वह पास आ गया और मैंने उसे पकड़ना चाहा तो वह उधर कोहकाफ की ओर भाग गया।' शीरीं के स्वर में कम्पन था फिर भी वे शब्द बहुत सँभलकर निकले थे। सरदार ने हँसकर कहा, 'फूल को बुलबुल की खोज? आश्चर्य।'

बिसाती अपना सामान छोड़ गया, फिर लौटकर नहीं आया। शीरीं ने बोझ तो उतार लिया पर दाम नहीं दिया।

राय कृष्णदास

'प्रसाद' की याद

'प्रसाद' जी के पूर्वज मूलतः जौनपुर के निवासी थे, शहर के प्रतिष्ठित व्यापारी थे। यों ये लोग जाति से कान्यकुब्ज-हलवाई-वैश्य हैं, किन्तु कन्नौज से कब जौनपुर आ बसे, इसकी ठीक स्मृति नहीं। मध्य युग से लेकर अठारहवीं शती तक जौनपुर बहुत समृद्ध और जनपूर्ण नगर था। उसी बीच कभी ये लोग वहाँ बसे होंगे। अठारहवीं शती के अन्त अथवा उन्नीसवीं शती के आरम्भ में इस वंश की एक शाखा काशी में चली आई और उसने सुर्ती-तम्बाकू का काम शुरू किया। यह काम खूब उन्नत हुआ और तभी उस शाखा का लोक-नाम 'सुंघनी-साहु' पड़ा।

उन दिनों तम्बाकू अपने विभिन्न सेवनीय रूपों में खूब प्रचार पर थी। सत्रहवीं शती के अन्त तक तम्बाकू का प्रचार बहुत रुद्ध गति से हुआ, किन्तु अठारहवीं शती के विलासमय युग में उसे फूलने-फलने का सुयोग प्राप्त हुआ। अमीर-रईसों में पीने की मीठी तम्बाकू और जनता में खैनी तथा कड़वी तम्बाकू के रूप में वह खूब प्रसारित हुई, और पण्डित-वर्ग यद्यपि छूने से वंचित ही रहा, फिर भी खैनी के साथ-साथ सुंघनी के रूप में मस्तिष्क को सचेत और जागरूक बनाने के लिए उसका नास खींचने लगा। मस्तिष्क में स्फूर्ति उत्पन्न करने के कारण जनता में इसका नाम पड़ गया था 'मग्ज़रोशन'। तम्बाकू की जो बहुतेरी विरुदावली विद्वद्वर्ग ने तैयार कर डाली थी उसमें से एक इस प्रकार है और त्रिविध सेवन का अच्छा चित्रण करती है :

> क्वचिद्धुम्रा, क्वचिन्मुखगा, क्वचिन्नासाग्रगामिनी ।
> इयं त्रिपथगा गंगा पुनाति भुवनत्रयम् ॥

काशी उन दिनों, एक ओर रईसों और दूसरी ओर पण्डितों का केन्द्र थी।

'प्रसाद-कुल' की उस शाखा ने जहाँ पीने और खाने की उत्तमोत्तम तम्बाकू तैयार की, वहाँ पण्डितों और विद्यार्थियों में वह निःशुल्क सुँघनी का भी वितरण करने लगी। 'सुँघनी-साव' का नामकरण इसी ग्रहीतावर्ग का दिया हुआ है। सुँघनी बँटने की यह प्रथा अब भी उनकी दुकान पर जारी है, यद्यपि पंडितों और विद्यार्थियों में सुँघनी का प्रचार नाम-शेष रह गया है।

देश-विदेश-व्यापी इस व्यापार से वह शाखा बहुत ही समृद्ध हुई; किन्तु कुछ ही दिनों में ऋण, मुकदमेबाजी और प्राणीनाश से वह उच्छिन्न-प्राय हो गई; और उसका स्थान प्रसाद जी के पूर्वजों ने—जो उस शाखा के सपिंड थे—ले लिया। आरम्भिक उन्नीसवीं शती में यह शाखा भी बहुत ही समृद्ध हुई। व्यापार का यह हाल था कि दो हाथों क्या, चार हाथों से भी रुपया बटोरना असम्भव था। चौक से नारियल टोला में घूसते ही प्रसाद जी की दुकान है; वहाँ यह हाल रहता कि बिक्री के घंटों में गली से आना-जाना रुक जाता।

जहाँ व्यापार इतना समुन्नत था, वहाँ उदारता भी यथेष्ट थी। सुँघनी बँटने का पुराना क्रम तो जारी था ही; साधु-सन्तों को कम्बल, रँगे हुए काठ के लाल तुम्बे दिये जाते और भी अनेक प्रकार के सदावर्त चला करते। इसके सिवा घर पर पंडितों, कवियों, गुणी-गवैयों, वैद्यों-मांत्रिकों, पहलवानों आदि का निरन्तर जमघट लगा रहता और इन सबका आदर-सत्कार किया जाता। इस प्रकार के बहुमूल्य समुदाय से बराबर घिरे रहने और उनका प्रतिपालन करने के कारण यह आवश्यक हुआ कि प्रसाद जी के पिता-पितामह में उनकी परख की क्षमता भी हो। फलतः वे लोग इस सम्बन्ध में अपनी योग्यता उत्तरोत्तर समुन्नत करते गये।

यों, तम्बाकू के व्यापार में, ऊँचे दर्जे की पीने और खानेवाली तम्बाकू तथा सुंघनी तैयार करने के लिए, काफी सुरुचि, कारीगरी और विवेक की आवश्यकता होती है। खमीरा और किमाम इत्यादि बनाने के लिए अपेक्षित सुगन्ध और उनके सम्मिश्रण में बहुत ही उत्कृष्ट निर्माणात्मक कौशल अपेक्षित होता है। वस्तुतः तम्बाकू के विभिन्न रूपों का एक सफल निर्माता—एक वास्तविक कलाकार होता है। प्रसाद जी के कुल में यह

विशेषता पूर्ण मात्रा में विद्यमान थी, एवं इसी कारण उनके सामान का इतना दिगन्तव्यापी प्रचार हुआ और उनकी दुकान की इतनी ख्याति हुई। यही सुरुचि और प्रतिभा जब गुण की परख और गुणग्राहकता की ओर प्रवृत्त हुई तो वहाँ भी उसका चमत्कार ज्यों का त्यों बना रहा, अपितु उस वातावरण के सम्बन्ध में कुछ निखरा ही। उनके रहन-सहन में भी उस सुरुचि की छाप थी। अच्छे खाने-पहनने का यथेष्ट शौक था। इसी प्रकार अच्छे शरीर बनाने की भी बेहद लगन थी। प्रसाद जी के पिता की शरीर-सम्पत्ति तो बहुत ही अच्छी थी, बल भी पर्याप्त था।

घर का सारा कामकाज वे ही देखते। शेष भाई तो उनके भरोसे मस्त-मौला थे—आरामतलबी और रुपया उलीचना उनका काम था। अपने एक चचा का हाल प्रसाद जी सुनाया करते कि उनकी भंग पाँच-सात रुपये रोज की—अनार के रस, में छनती। मजा यह कि उस भंग में अफीम भी घोली जाती।

ऐसे रंग-राग और विविधता के वातावरण में प्रसाद जी का जीवन पनपा। देश में उस समय जितने प्रकार के भी 'टाइप' हो सकते थे, सबका कुछ न कुछ परिचय प्रसाद जी को घर बैठे मिलता। सीमा प्रान्त के सामान बेचने वाले मुगल और छुरी आदि बेचने वाली यायावर ईरानी स्त्रियों से—जिन्हें कहीं दुर्रानी और घाघरेवाली आदि कहते हैं—लेकर नेपाल-भूटान के कस्तूरी बेचने वालों तक, तथा ज्योतिषी पंडितों से लेकर पाखंडी और कापालिक तक, कौन ऐसा वर्ग या फिर्का था जिसकी उस रंगमंच पर अवतारणा न होती रही हो? उनमें के बहुतेरे टाइप तो आज लुप्त हो गये हैं। इस प्रकार के विविध पात्रों की यदि ब्योरेवार तालिका बनाई जाय तो वह कई सौ की संख्या छू लेगी। इन लोगों से सम्बन्धित कितनी ही मनोरंजक चित्र-विचित्र एवं मार्के की घटनाएँ प्रसाद जी की हृदय-पाटी पर अंकित होती जातीं। निदान, देखी-सुनी बहु लोक की बातें प्रसाद जी के लिए घर बैठे जन्मसिद्ध थीं।

इस काल की एक घटना याद आ रही है, जो इस कारण उल्लेखनीय है कि प्रसाद जी के विश्वास-निर्माण में उसका भी भाग है—

प्रसाद जी के जन्म से पहले उनके कई भाई शैशव में ही चल बसे थे। ग्रतः प्रसाद जी की ग्रायु कामना के लिए झारखंड के गोला-गोकर्णनाथ-महादेव की मन्नत मान दी गई थी कि जब वह बारह वर्ष के होंगे तब उनका मुण्डन वहीं किया जायगा। इसी सम्बन्ध में उनकी नाक भी बीच से छेद दी गई थी ग्रौर उसमें बुलाक पहना दी गई थी; वह पुकारे भी जाते—'झारखंडी'। यों बड़ी-बड़ी लटों ग्रौर बुलाक से, देखने में वह बालिका जान पड़ते। कभी-कभी उनकी माता उन्हें घाघरी भी पहना दिया करतीं। एक दिन इसी वेश में वे घूम रहे थे ग्रौर उनके यहाँ एक सामुद्रिक-वेत्ता ग्राये थे। प्रसाद जी के एक चचा ने उन्हें थाहने के लिए कहा कि तनिक इस बालिका की हस्तरेखा ग्रौर लक्षण तो देखिए। दैवज्ञ महाशय की विद्या यह लक्ष्य न कर सकी कि वह बालक है—ग्रौर उन्हें लड़की मानकर ही वह भविष्य-कथन कर चली! जब यह कथन पूरा हुग्रा तो प्रसाद जी के चाचा ने उनकी घाघरी ग्रलग कर दी ग्रौर तब ज्योतिषी महाशय को ग्रपनी कचाई जान पड़ी तथा लोगों में विशेष कौतूहल हुग्रा। किन्तु प्रसाद जी पर इस घटना का स्थायी प्रभाव पड़ा। ज्योतिषी का खोखलापन उन्हें भास गया, जो ग्राजीवन बना रहा। उन्होंने सिद्धान्त बना लिया था—यदि ज्योतिष सत्य हो, तो भी मन के लिए बड़ा घातक है; हमारी वर्तमान चिन्ताएँ ही कौन कम हैं जो हम भविष्य को जानकर उसके लिए मरें-पचें।

एक ग्रोर तो यह सौ-रंगी दुनिया, दूसरी ग्रोर धर्म का कर्मठ, जटिल, ग्रवरुद्ध—किन्तु दार्शनिक—वातावरण। यह कुल कट्टर शैव था, जिसमें एकाध सदस्य तो ऐसे थे जो इतर देवता का नाम सुनते ही कान बन्द कर लेते। परन्तु इसी के साथ भगवान शंकर को परात्पर ग्रौर देवाधिदेव मानने के कारण उन साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के दार्शनिक तत्त्व का भी विचार हुग्रा करता। काशी जैसी विद्यापीठ में बसने के कारण संस्कृत की ग्रोर भी इस कुल की ग्रभिरुचि थी ग्रौर उसमें उपयोग्य गति भी थी। कश्मीर ग्रौर दक्षिण भारत में शैव ग्रागम पर बहुत कुछ लिखा गया है ग्रौर उत्कृष्ट वाङमय प्रस्तुत हुग्रा है, जिसे हम सगुण ग्रद्वैतवाद कह सकते हैं।

इसमें कश्मीरी प्रतिभिज्ञान-दर्शन बहुत ही पुष्ट और प्रबल है। 'प्रसाद-' कुल की दार्शनिक विचारधारा मुख्यत इसी परपरा मे थी।

उन लोगो की शिवोपासना का बहिरंग बहुत क्रिया-कलाप-पूर्ण और धूमधामी था। दो बडे-बडे शिवालय थे जिसमे से एक तो प्रसाद जी के घर के सामने ही एक छोटी-सी वाटिका मे है। इसमें नित्य विधिवत् षोडशोपचार शिवपूजन, समय-समय पर रुद्री पाठ, हवन, ब्राह्मण-भोजन और प्रतिवर्ष शिवरात्रि का महोत्सव हुआ करता जिसमे रात्रि-जागरण तथा नाच-गान भी होता। ये उत्सव-पर्व सब रईसी ठाठ के रहते। उन लोगो को शिव का परम इष्ट था जिससे उनका जीवन ओत-प्रोत था। इसी का प्रतीक हम इस कुल के नामो मे पाते हैं।

प्रसाद जी जिस समय होश सँभाल रहे थे उस समय अस्तगत भारतेन्दु का चाँदना साहित्य-गगन पर भली-भाँति बना हुआ था। उनके कालवाले, उनके सहकारी एव उनके अनुवर्ती कितने ही साहित्यिक उनके मार्ग पर चल रहे थे। इस सम्बन्ध का अन्य उल्लेख तो हम ऊपर कर आये हैं, यहाँ मुख्यत हम उनकी ब्रजभाषा वाली पद्यमय रचना की चर्चा कर रहे हैं। काशी के 'हनुमान', 'रसीले', बेनीद्विज', 'द्विज कवि मन्नालाल', रामकृष्ण वर्मा आदि उन्ही के समय से ब्रजभाषा की रचना करते आ रहे थे। 'रत्नाकर' ने उनके समय में लिखना आरम्भ कर दिया था, किशोरी-लाल गोस्वामी भी तभी से कविता लिखने लगे थे।

उन्नीसवी शती के अन्तिम दशक मे काशी मे एक धूमधामी कवि-समाज स्थापित हुआ था, जिसके प्रतिपालक काशी के वल्लभ-मार्गीय गोपाल-मन्दिर वाले गोस्वामी श्री जीवनलाल थे, जो कला-प्रेमी, उत्कृष्ट मृदग-वादक और भावुक काव्य-रसिक थे। उन्ही की गुणग्राहकता से देश-विदेश के कितने ही कवि इस कवि-समाज मे भाग लिया करते। समस्यापूर्ति ही इस समाज की मुख्य 'एक्टिविटी' थी। यदि हम कहे कि 'रत्नाकर' की प्रतिभा यही चमकी और यही उनके 'उद्धवशतक' की नीव पडी तो गलत न होगा।

पढत कवि-सम्मेलन भी हुआ करते। फलत वातावरण ब्रजभाषा-

कविता से संपृक्त था। कोई ऐसा साहित्यिक न था जिसे दस-बीस नये-पुराने कवित्त न याद हों अथवा जो कवित्त-रचना में टांग न अड़ाता हो। ऊपर जिन व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है, उनमें 'रसीले', 'हनुमान' 'बेनी-द्विज', प्रसाद जी के पिता के दरबार में आने-जाने वाले थे।

प्रसाद जी के मुहल्ले—गोवर्धन सराय—में और उसके आस-पास कई प्रतिष्ठित कायस्थ-कुल रहते थे, जिनमें फारसी और उर्दू के साहित्य की खासी चर्चा रहती। उनके कतिपय सदस्य तो उर्दू की उत्तम कविता भी करते। इन परिवारों का प्रसाद जी के घराने से घनिष्ठ सम्पर्क था। इस कारण प्रसाद जी को बचपन से ही उर्दू-कविता की चाशनी भी चखने को मिला करती।

प्रसाद जी जब पढ़ने योग्य हुए तो उनका शिक्षा-क्रम उनके पिता ने ऐसा रखा कि उन्हें संस्कृत, हिन्दी और उर्दू की अच्छी योग्यता हो जाय तथा साहित्यिक रुचि भी उद्बुद्ध हो जाय। उन्होंने अपने आरम्भिक सबक स्वर्गीय मोहनीलाल गुप्त से, जो थोड़ी-बहुत कविता भी करते थे, लिये। उन दिनों गुप्त जी अपने कठोर शासन एवं लड़कों को हिन्दी तथा संस्कृत के आरम्भिक पाठों में दक्ष करने के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। वहाँ भारतेन्दुजी के भ्रातुष्पुत्र स्वर्गीय व्रजचन्द्रजी, जो असमय में न चल बसे होते तो अच्छी साहित्यिक ख्याति प्राप्त करते, उनके सहपाठी थे। श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'ईश' भी, वहीं उनके सहपाठी थे। प्रसाद जी इस छोटी-सी पाठशाला को सदा अपना आरम्भिक सरस्वती-पीठ कहा करते। इसमें एक चोंज भी था। वह मकान केदारनाथ पाठक के श्वसुर का था, जो पीछे पाठक जी को मिल गया था, क्योंकि उनकी पत्नी सरस्वती देवी अपने पिता की अकेली सन्तान थीं। सो, आरंभिक सरस्वती-पीठ के श्लेष से प्रसाद जी उनको अक्सर छेड़ते, जिसे पाठक जी बड़े अभिनय के साथ ग्रहण करते।

संस्कृत और उर्दू में क्रमशः प्रसाद जी की अच्छी गति होती गई। इन भाषाओं के सैकड़ों सुभाषित उन्हें याद कराये गये और कितने ही उन्होंने स्वयं याद किये, जिनका वयस्क होने पर बातचीत में वह बड़े मौके से

उपयोग किया करते। हिन्दी के भी कितने ही छन्द, कवित्त, दोहे, पद इत्यादि उन्हे कण्ठस्थ हो गए। साथ ही, उनकी स्कूलवाली अंग्रेजी पढाई भी चल रही थी। कसरत-कुश्ती मे भी वह भली-भांति लगा दिये गये और उन्होंने खूब शरीर बनाया।

किन्तु असमय मे ही उनके जीवन की इस चर्या मे व्यवच्छेद उपस्थित हुआ। उनके पिता और चाचा-ताउओ का देहान्त हो गया। भाई साहब का जमाना आया; घर में मुकदमेबाजी शुरू हुई और भाई साहब भी चल बसे। इस तरह वह पुराना साज-सामान और धन-वैभव गन्धर्व-नगर की भांति ओझल हो गया। साथ ही, प्रसाद जी के पढने-लिखने की भी इतिश्री हो गई।

भाई साहब के स्वभाव आदि का परिचय आरम्भ मे ही दिया जा चुका है। उनके जमाने की, जब कौटुम्बिक हिस्से का मुकदमा चल रहा था, एक घटना उल्लेखनीय है। उन दिनो मन्त्र-प्रयोग पर लोगो को बहुत विश्वास था। सो प्रसाद जी के भाई साहब पर भी दूसरे फरीक की ओर से बडे आयोजन के साथ मारण-प्रयोग प्रारम्भ हुआ। सयोग की बात कि जिस मकान मे यह प्रयोग हो रहा था और रात भर 'शम्भु रत्न मारय-मारय, भक्ष्य-भक्ष्य स्वाहा' की आहुतियाँ पड रही थी, उसके मालिक का नाम भी शम्भुरत्न था, जो पेशे से दर्जी था। एक रात दुकान बढाकर जो वह घर आया तो वह अमगल और भयावनी शब्दावली उसे सुन पडी और वह अपनी मज्जा तक सिहर उठा। उसने आव देखा न ताव, सीधे उस अनुष्ठान-गृह मे घुस गया और वहाँ के सारे उपकरण का विध्वस कर डाला। उन अनुष्ठानी ब्राह्मणो को भी उसने उसी दम घर से निकाल बाहर किया और तव—कुछ शान्त होने पर—उसकी समझ में यह बात आई कि वह प्रयोग प्रसाद जी के भाई साहब के मारणार्थ हो रहा था। वह उनका कपडा सिया करता; अतः उनसे सुपरिचित था। दूसरे दिन प्रात काल उसने जाकर यह समाचार सुनाया और सभवत. घर ले जाकर उस विध्वस्त अभिचार को दिखाया भी। प्रसाद जी के तथाकथित नियतिवाद पर हम आगे विवेचन करेंगे यहाँ मात्र इतना वक्तव्य है कि इस घटना के विषय

में वह कहा करते कि भाई साहब को उस मारण-प्रयोग से मरना नहीं था, तभी वह खण्डित हो गया; यदि उनकी मृत्यु उसी हीले बदी होती तो, वह पूरा उतर जाता।

निदान, अनुभवहीन प्रसाद के सामने उस समय जो दुनिया आई उसमें मुकदमा, कर्ज, रहने की विशाल हवेली का एक अधबना अंश और अविवाहित स्वयं, थे। इसके पहले, भाई साहब के समय में ही, वह भाव-जगत में प्रविष्ट हो चुके थे। कोई चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने ब्रजभाषा की रचना आरम्भ कर दी थी। उनके बालसखा और सहपाठी 'ईश' जी और उनमें रचनाओं की तथा अच्छे-अच्छे कवित्त चुनके याद करने की होड़-सी लगी रहती। यह सब भाई साहब से छिपा-छिपाकर होता, क्योंकि अपने लिए वह चाहे जैसे रहे हों, प्रसाद जी के लिए यही चाहते कि यह एक जिम्मेदार व्यापारी हो और घर का कामकाज सँभाले। वंश के परम्परागत नियमानुसार वह नित्य कुछ घण्टों के लिए दुकान की गद्दी पर बैठने के लिए भी भेजे जाते। किन्तु भाई साहब को क्या मालूम था कि वहाँ बैठकर कवित्त लिखा करते हैं।

उस समय रीतिकालीन कविता समस्या पूर्ति के घेरे में टिमटिमा रही थी। रचयिता कोई अच्छी-सी या विलक्षण, साथ ही जोरदार उक्ति समस्या रूप में सामने रख लेते और उसी को सजाने व चरितार्थ करने के लिए साढ़े तीन या पौने चार चरणों का निर्माण करते। ऐसे निर्माण में यह विशेषता अपेक्षित होती कि मजमून अनूठा हो और रचना-चमत्कार उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ समस्या तक आकर चूड़ान्त को पहुँच जाय एवं उसकी अन्वर्थ-पूर्ति कर दे। दूकान पर बैठे-बैठे प्रसाद जी इसी उधेड़बुन में संलग्न रहते।

वहाँ इस प्रकार का कुछ समाज भी जुट जाता। 'ईश' जी तो पहुँचते ही, एकाध और कवि भी आ जाते। इनमें एक महाशय थे—रामानन्द। आप उर्दू में सवैये और घनाक्षरी कहा करते। ये छन्द बड़े चुटीले होते। आप एक वारवनिता पर मुग्ध थे! प्रसाद जी की दुकान के पास ही उसका कोठा था। नित्य संध्या को आप उस कोठे के सामने आ जमते और अपनी

मन-भावती को अपनी रचना सुनाते रहते, बीच-बीच में गांजे का दम भी लगाते जाते। इन रचनाओं में भाव तो होते ही, भाषा भी बडी चलती हुई और पुर-असर होती जिससे वहाँ सुनने वालों का ठट्ठ लग जाता। प्रसाद जी आपको अक्सर अपनी दुकान पर बैठा लिया करते। ये रचनाएँ जहाँ एक ओर प्रसाद जी को रस प्रदान करती वहाँ दूसरी ओर उन्हें अच्छी-अच्छी उक्ति लिखने के लिए उद्दीपन का काम भी देती।[1]

किन्तु यह प्रवृत्ति भाई साहब से बहुत दिनों तक छिपी न रही। जब पता चला तो एक दिन अचानक वह दुकान पर पहुँचे और पाया कि प्रसाद जी ने कामकाज तो ऐसा-ही-वैसा देखा है, हाँ, गद्दे-तले सैंकडों कवित्त लिखकर छिपा रखे हैं।.. उसी दिन प्रसाद जी का यह क्रम समाप्त हो गया; किन्तु उनमें का कृती ज्यों का त्यों बना रहा।

भाई साहब के न रहने पर एक ओर तो कठोर उत्तरदायित्व, दूसरी ओर उनमें कृती का—'वलात् नियोजन'। घर का यद्यपि बहुत कुछ नष्ट हो चुका था, फिर भी जितना बच रहा था, वही क्या कम था?

---

१ उन्हीं दिनों इन रचनाओं का, 'उर्दू-शतक' नाम से, एक सग्रह भी निकला था जिस पर 'सरस्वती' (जनवरी १९०७) में आचार्य द्विवेदी ने ढाई पेज का एक प्रशसात्मक लेख लिखा था। आचार्य के शब्दों में—'कवि ने किसी-किसी पद्य को इतना सरस बना दिया है कि आप चाहे जितनी दफा पढिये कभी आप का जी न ऊबेगा। फिर भी उसे पढ़ने की इच्छा होगी। रमणीय और सरस कविता की यही कसौटी है।' उदाहरण के लिए यहाँ एक घनाक्षरी और एक सवैया उद्धृत करना अप्रासगिक न होगा—

एक परचे से परचाया न हुजूर हमें, हम गम खाया किये ऐसी बेबसाई में।
शाहिद हमारे चश्म तर ये रहेंगे खूब दरिया बहाते थे जो दुनिया हँसाई में।
'रामानन्द' तेरा था भरोसा बहुतेरा, तूने ऐसा मुंह फेरा है हिनोज बे-वफाई में।
सीना में पसीना कहीं जहर न पीना पडे, जीना दुशवार है अनाब की जुदाई में॥
आफत के परकाले हैं काले ये गेसू निराले अजीबो-गरीब हैं।
गोर तक आवे, बढ़ें फिर दोश तक, ता-कमर आकर पाये-नसीब हैं॥
हैं 'रामानन्द' दो चन्द ये मार-से, हाथ किसी के न होते हबीब हैं।
आशिक हाथ सम्हाल के बैठो, क्यामत शामत दोनो करीब हैं॥

यदि उतना भी बचाया जा सके, तो जिसने 'गई सो बीति बाहर' नहीं देखी उसकी निगाह में सब कुछ था। इधर प्रतिभा खिलती-खिलती रुक गई थी, वह प्रतिपल उत्फुल्ल होना चाहती थी। किन्तु प्रसाद जी भगोड़े न थे। यद्यपि घर सम्हालने में मन रत्ती-भर न लगता, तो भी, उन्होंने दोनों ही रकाबों पर बड़े ठाठ और दृढ़ता से पाँव जमाये।

इस समय हिन्दी-संसार विकास के जिस मोड़ पर पहुँचा था, उसकी झलक हमें ऊपर मिल चुकी है। यहाँ हमने यह देखा कि स्वयं प्रसाद जी किस क्षेत्र में पनपे और विकसे।। ये दो पक्ष उस साँचे के दोनों भाग हैं, जिसमें प्रसाद जी आगे चलकर ढले।

दर से लगातार ऊर्जा प्राप्त हो रही है। यह मात्रा इससे भी कहीं अधिक हो सकती है, बशर्ते कि हमारी पृथ्वी में उसे ग्रहण करने की क्षमता हो। अपनी वायुमण्डलीय परिस्थितियों के कारण पृथ्वी सूर्य से निस्सारित ऊर्जा का एक चौथाई से कम अंश ही ग्रहण कर पाती है।

४० लाख टन का कलेवा (

सूर्य की ऊर्जा-उत्पादक प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रति सैकिण्ड ५६ करोड़ ४० लाख टन हाइड्रोजन ५६ करोड़ टन हीलियम में परिवर्तित होती है। हीलियम के ध्वंस से बोरोन और कार्बन बनती है। इस प्रक्रिया में सूर्य प्रति सैकिण्ड ४० लाख टन हाइड्रोजन हजम कर जाता है। 'पदार्थ-ध्वंस' की यह प्रक्रिया अनुमानतः पिछले पाँच अरब वर्षों से चल रही है। यह अध्याय यहीं समाप्त नहीं हो जाता, सूर्य से बड़े अनेक नक्षत्र इससे भी अधिक 'पदार्थ' का कलेवा करते हैं। उदाहरणतः रोहिणी नक्षत्र (अलदबरान) प्रति सैकिण्ड ६४ करोड़ टन 'पदार्थ' हजम करता है और सूर्य से १६० गुना अधिक ऊर्जा उत्पन्न करता है।

लाखों मील लम्बी लपटें

सूर्य में 'पदार्थ' के सतत ध्वंस के फलस्वरूप लाखों मील लम्बी लपटें सदैव उठती रहती हैं। इनके मध्य भाग का तापमान २,८०,००,००० अंश फारेनहाइट तक पहुँच जाता है। यह उस ताप न्यूक्लीय प्रक्रिया का परिणाम है, जिसके द्वारा सूर्य में प्रति सैकिण्ड ४० लाख टन 'पदार्थ' ध्वंस होता है। अतः सूर्य से ऊर्जा निस्सरण अबाध गति से होता रहता है। यही विकिरण के रूप में गहन अन्तरिक्ष में दूर-दूर तक सौरमण्डल की सीमाओं में फैल जाती है। यह विकिरण फोटोन, इलेक्ट्रोन, प्रोटोन तथा अन्य विविध तत्त्वों के परमाणुओं का सतत प्रवाह है:

—विशाल अग्नि विस्तृत अन्तरिक्ष में फैलती है।

(ऋग्वेद, तृतीय मण्डल, सूक्त १ प्रथम अनुवाक)

प्रारम्भ में इस विकिरण में रेडियो-उत्सर्जन अपेक्षाकृत क्षीण होता है। लेकिन ज्यों-ज्यों यह ऊपर की ओर फैलती जाती है, इसकी शक्ति

बढ़ती जाती है। इसमें कम ऊर्जायुक्त कण होते है, जो सूर्य के 'वायुमण्डल' के कारण भ्रा जाते हैं। भ्रन्तरिक्ष मे निस्सारित होने के बाद ये कण तीव्र गति से चलते हुए 'सौरवायु' का रूप ले लेते हैं। पृथ्वी पर यह 'सौरवायु' २०० मील प्रति सैकिण्ड की गति से जाती है। अगर इसे पूरी तरह नियंत्रित किया जा सके तो पृथ्वी पर ऊर्जा की कोई समस्या ही न रहे।

सूर्य का स्वरूप

सूर्य का व्यास १३ लाख ६२ हजार किलोमीटर माना गया है। इसका भार पृथ्वी का ३,३०,००० गुना भ्रौर बृहस्पति के भार का १०४७ गुना है। सूर्य का बाह्य-वलय (कोरोना) हरिताभ श्वेत तथा निम्न वर्णमण्डल (क्रोमस्फियर) लाल रग का है। यह लाल रंग हाइड्रोजन तथा हीलियम के कारण है जो सूर्य के वायुमण्डल के मुख्य घटक हैं। इसके भ्रलावा सूर्य के वर्णमण्डल मे ७० भ्रन्य रासायनिक तत्त्व भी विद्यमान हैं, जिनका पता एक पूर्ण चन्द्र ग्रहण के भ्रवसर पर वर्णक्रम दर्शी विश्लेषण (स्पेक्ट्रोस्कोपिक एनालिसिस) के द्वारा चला है।

वैज्ञानिक सूर्य को 'पूर्णतः गैसीय ग्रह' मानते हैं। उनका कहना है कि सूर्य के भ्रान्तरिक भाग का व्यवहार 'भ्रायनित परमाणुभ्रो' के कारण एक भ्रादर्श गैस जैसा है—प्रज्ज्वलित गैस का एक विशाल गोला। निस्सीम भ्रन्तरिक्ष मे ऐसे हजारो-लाखो भ्रग्निपुज हैं। भ्रभी तक ढाई लाख ऐसे नक्षत्रो का पता लग चुका है। इनमे से दस प्रतिशत नक्षत्र हमारे सूर्य से मिलते-जुलते हैं। पृथ्वी से भ्ररबो-खरबो मील दूर होने के कारण ये नक्षत्र हमे टिमटिमाते सितारे प्रतीत होते हैं, जबकि हमारा सूर्य दूरी के लिहाज से पृथ्वी के भ्रधिक करीब है।

सूर्य से प्रति सैकिण्ड ४० लाख टन विकीर्ण ऊर्जा (रेडियेंट एनर्जी) भ्रन्तरिक्ष मे निस्सारित होती है।

सोवियत वैज्ञानिको ने सूर्य के भ्रास-पास विद्यमान समूहगत चुम्बकीय क्षेत्रों का पता लगाया है। विविध दिशाभ्रो मे रेडियो तरगो के निस्सरण

के प्रभावों को मापने का भी वैज्ञानिकों ने प्रयास किया है। उनके पर्यवेक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि सौर वलय (कोरोना) के समीप बड़े-बड़े प्लाज्मा बादल हैं जो कि सूर्य के मध्य भाग के समानान्तर त्रिज्या या अर्द्धव्यास की आकृति में स्थित हैं। सैंकड़ों किलोमीटर लम्बे इन असमान बादलों का अस्तित्व चुम्बकीय क्षेत्रों के अत्यन्त विशिष्ट वातावरण में, जहाँ तापमान दस लाख अंश फारेनहाइट तक पहुँच जाता है, मिल सकता है। इस वैज्ञानिक निष्कर्ष की पुष्टि बाद में ब्रिटिश व आस्ट्रेलियाई वैज्ञानिकों के अनुसंधानों से भी हुई है।

रहस्यमय काले धब्बे

सूर्य की सतह पर जगह-जगह दिखाई देने वाले काले धब्बे वैज्ञानिकों के कौतूहल का कारण हैं। इन्हें सूर्य की आन्तरिक गतिविधि का अंग माना जाता है। इन्हें तथाकथित 'ठंडे क्षेत्र' भी बताया गया है। शायद इसका कारण इन 'क्षेत्रों' में तापमान का कम होना है। सूर्य का सतही तापमान जहाँ ६ हजार अंश सैंटीग्रेड है, वहाँ इन 'धब्बों' या 'ठंडे क्षेत्रों' में तापमान घटकर ४ हजार अंश सैंटीग्रेड ही रह जाता है।

यह भी कहा जाता है कि पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का इन 'धब्बों' से सीधा सम्बन्ध है। पृथ्वी पर फसलों का अच्छा या बुरा होना भी इन 'धब्बों' पर निर्भर है। पृथ्वीवासियों के लिए विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं—अति वर्षा, या बिल्कुल सूखा, भूकम्प, ज्वालामुखीय उत्पात आदि की सृष्टि भी यही 'काले धब्बे' करते हैं। पृथ्वी के मौसम में समय-असमय परिवर्तन इनकी ही कृपा है।

पहले जैसा व्यवहार नहीं

कुछ अमेरीकी वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य का व्यवहार अब पहले जैसा नहीं रहा है। उसके भीतर होने वाली उथल-पुथल इसका एक कारण हो सकती है। सूर्य के बारे में वैज्ञानिकों के अनेक पूर्वानुमान गलत साबित हो रहे हैं। अभी हाल में एक आस्ट्रेलियाई खगोल शास्त्री डा० ए० जे० आर० प्रेंटिस ने कहा कि सूर्य एक 'समान गैस पुंज' नहीं है; बल्कि

उसका अन्तर्भाग ही ज्वलनशील है। उनका कहना है कि सूर्य के मध्य भाग का तापमान पूर्व अनुमान से काफी कम निकला है। तापमान कम होने के कारण ही अब 'न्यूट्रिनोस' का तीव्र प्रवाह अवरुद्ध हो गया है।

सूर्य खोजी अन्तरिक्ष यान

१५ मार्च १९७४ को एक अमेरीकी-प० जर्मनी सूर्यखोजी अन्तरिक्ष यान हीलियोस-१ सूर्य के ४,६३,५०,००० किलोमीटर दूर से निकला था। इससे पूर्व १९७३ मे भी एक अमेरीकी अन्तरिक्ष यान मेरिनर-१० सूर्य के पास से होता हुआ निकला था लेकिन इतना करीब नही जितना कि हीलियोस-१। इस यान ने २ लाख ३७ हजार किलोमीटर प्रति घण्टे की गति से उडकर एक नया कीर्तिमान कायम किया। उससे प्रेषित रेडियो सन्देश को पृथ्वी पर पहुँचाने मे आठ मिनट से अधिक समय लगा।

सूर्य का 'हृदय' शान्त नही। उसके 'अन्तस्' मे सुलग रहे 'प्रचण्ड दावानल' की कल्पना नही की जा सकती।

विगत ६ सितम्बर १९७३ को अमेरीकी व्योम प्रयोगशाला 'स्काईलैब' के यन्त्रो ने सूर्य मे एक प्रचण्ड विस्फोट होने की सूचना दी थी। यह विस्फोट अनुमानत १० करोड परमाणु बमो के विस्फोट के बराबर था। उसके फलस्वरूप जिस बृहदाकार कुकुरमुत्तेनुमा बादल का निर्माण हुआ था, वह हमारी पृथ्वी जैसी पाँच पृथ्वियों के बराबर था। यह विस्फोट उक्त तारीख को अपराह्न २ ३० बजे (भारतीय समय) हुआ। इसके बाद लाखो मील लम्बी सौर-ज्वाला निकली जिसके प्रभाव से पृथ्वी पर सूक्ष्म तरग सचार व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई।

अमेरीका के राष्ट्रीय सागरीय एव वायुमडलीय प्रशासन की अतरिक्ष पर्यावरण प्रयोगशाला ने विस्फोट के अगले दिन (शनिवार ७ सितम्बर १९७३ को) रात्रि ११ ३५ बजे एक भीषण चुम्बकीय तूफान के पृथ्वी से टकराने की सूचना दी।

प्रयोगशाला के निदेशक श्री राबर्ट डेकर ने बताया कि विस्फोट के बाद उत्पन्न सौर-लपट ने सूर्य के २ अरब ८० करोड वर्गमील क्षेत्र को अपने

अंक में ले लिया था। कुछ विकिरण रश्मियां तो विस्फोट के एक घंटे बाद ही पृथ्वी पर पहुँच गई थीं।

प० जर्मनी की बोशम वेधशाला के एक खगोलशास्त्री प्रो० हेज कामिन्स्की ने भी इस विस्फोट की पुष्टि की और चेतावनी दी कि इससे उत्पन्न ऊर्जा तरंगें पृथ्वी के जीवन के लिए घातक सिद्ध हो सकती हैं। उन्होंने बताया कि यह विस्फोट अकल्पनीय क्षमता का विस्फोट था—लाखों हाइड्रोजन बमों के बराबर इसने समस्त सूर्य को झकझोर दिया था। विस्फोट के फलस्वरूप सूर्य की सतह पर एक विशाल क्रेटर का निर्माण हुआ, जिसका व्यास अनुमानतः ६० हजार किलोमीटर था।

प्रो० कामिन्स्की ने यह भी चेतावनी दी कि विस्फोट के बाद जो उच्च शक्ति सम्पन्न ऊर्जा तरंगें पृथ्वी पर आई हैं, वे न केवल लोगों को समय से पहले बूढ़ा कर देंगी, बल्कि वे कैन्सर का कारण भी बन सकती हैं। उन्होंने अनेक व्यक्तियों के हृदय-रोग या रक्तचाप में वृद्धि की संभावना भी व्यक्त की।

मैथिलीशरण गुप्त

मातृभूमि

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग-मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं,
वन्दीजन खगवृन्द, शेष-फन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।

मृतक समान अशक्त विवश आँखो को मींचे,
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हम को नीचे!
करके जिसने कृपा हमे अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल अंक मे त्राण किया था।
जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही,
तू क्यो न हमारी पूज्य हो मातृभूमि, मातामही।

जिसकी रज मे लोट-लोटकर बड़े हुए हैं,
घुटनो के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं,
परमहंस-सम बाल्यकाल मे सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूल-भरे हीरे' कहलाये।
हम खेले-कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद मे,
हे मातृभूमि! तुझको निरख मग्न क्यो न हो मोद मे?

पालन-पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्षस्थल पर हमे कर रही धारण तू ही।
अभ्रकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो! तुझी पर तुझ पर सारे।

हे मातृभूमि! जब हम कभी शरण न तेरी पायेंगे,
बस तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायेंगे।

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा।
हे मातृभूमि! उपजें न जो तुझ से कृषि-अंकुर कभी,
तो तड़प-तड़प कर जल मरें जठरानल में हम सभी।

पाकर तुझ से सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हम से होगा?
तेरी ही यह देह तुझी से बनी हुई है,
बस तेरे ही सुरस सार से सनी हुई है।
फिर अन्त समय तू ही इसे अचल देख अपनायेगी,
हे मातृभूमि! यह अन्त में तुझमें ही मिल जायेगी।

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें सुखदायक होता।
निज स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म-भर जिनसे नाता।
उन सब में तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्त्व है।
हे मातृभूमि! तेरे सदृश किसका महा महत्त्व है।

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल, मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है।
षड्ऋतुओं का विविध-दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है।
शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चन्द्र-प्रकाश है,
हे मातृभूमि! दिन में तरणि करता तम का नाश है।

पाखण्डी भी धूल चढ़ाकर तन में तेरी,
कहलाते हैं साधु नहीं लगती है देरी।
इस तेरी ही शुचि धूल में मातृभूमि! वह शक्ति है,
जो क्रूरों के भी चित्त में उपजा सकती भक्ति है।

कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
जो यह समझे हाय! देखता सपना है।
तुझको सारे जीव एक से ही प्यारे हैं।
कर्मों के फल मात्र यहाँ न्यारे-न्यारे हैं।
हे मातृभूमि! तेरे निकट सबका सम सम्बन्ध है,
जो भेद मानता वह अहो! लोचनयुत भी अन्ध है।

जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान् कभी हम रहें न न्यारे।
लोट-लोट कर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।
उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे,
होकर भव-बन्धन मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे।

माखनलाल चतुर्वेदी

मरण-त्यौहार

नाग ने सागर तरंगें चीर कर,
गगन से भी कठिन स्वर गम्भीर कर,
तरलता के मधुर आश्वासन दिये,
किन्तु ओंठोंमें इरादों को लिये—

क्यों न अब साबरमती पर नाज़ हो !
जब जवाहर शीश, मेरा ताज हो,
झिलमिले नक्षत्र थे, ग्रह भी बड़े,
श्री सुधाकर थे, उतरते से खड़े !

नाश का आकाश में तम-तोम था,
फैल कर भी, विवश सारा व्योम था !
उस समय सहसा सफ़ेदी बह उठी
मोम की पिघली शिखाएँ, कह उठीं:—

'नाश जी ! नक्षत्र यदि लाचार हैं,
श्री सुधाकर भी उतरते द्वार हैं,
तो जलेंगी तेल कर निज कामना,
आइये, मिटकर करेंगी सामना,

जानती हैं जोर घर की वायु का,
जानती हैं समय, अपनी आयु का;
जानतीं बाज़ार दर अपनी अहो,
जानती हैं, वृष्टि के दिन, मत कहो;

जानती हैं—सब सबल के साथ हैं,
किन्तु रवि के भी हज़ारों हाथ हैं;
बे-कलेजे ही, कठिन 'तम' लाद कर,
अब श्मशानों को स्वयम् आबाद कर,

एक से लग एक, हम जलती रहें
और बलि-बहनें बढ़ें, फलती रहें;
सूर्य की किरणें कभी तो आयंगी,
जलन की घड़ियाँ उन्हें ले आयंगी ।

अराति सैन्य सिन्धु में सुवाडवाग्नि से जलो
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो, बढ़े चलो !

श्रद्धा :

'हाँ ठीक, परन्तु बताओगी मेरे जीवन का पथ क्या है ?
इस निविड़ निशा में संसृति की आलोकमयी रेखा क्या है ?
यह आज समझ तो पायी हूँ मैं दुर्बलता में नारी हूँ,
अवयव की सुन्दर कोमलता ले कर मैं सबसे हारी हूँ ।
पर मन भी क्या इतना ढीला अपने ही होता जाता है ।
घनश्याम खंड-सी आँखों में क्यों सहसा जल भर आता है ?
सर्वस्व समर्पण करने की विश्वास महा तरु-छाया में,
चुपचाप पड़ी रहने की क्यों ममता जगती है माया में ?
छाया-पथ में तारक-द्युति-सी झिलमिल करने की मधु लीला,
अभिनय करती क्यों इस मन में कोमल निरीहता श्रम शीला ?
निस्सम्बल होकर तिरती हूँ इस मानस की गहराई में,
चाहती नहीं जागरण कभी सपने की इस सुघराई में ।
नारी जीवन का चित्र यही क्या ? विकल रंग भर देती हो,
अस्फुट रेखा की सीमा में; आकार कला को देती हो ।
रुकती हूँ और ठहरती हूँ पर सोच-विचार न कर सकती,
पगली-सी कोई अन्तर में बैठी जैसे अनुदिन बकती ।
मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ ।
भुज-लता फँसा कर नर-तरु से झूले-सी झोंके खाती हूँ ।
इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है,
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ, इतना ही सरल झलकता है ।'

लज्जा

'क्या कहती हो ठहरो नारी ! सकल्प अश्रु-जल मे अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने-से सपने।
नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल म
पीयूष स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल मे।
देवो की विजय, दानवो की हारो का होता युद्ध रहा
सघर्ष सदा उर-अन्तर मे जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।
आँसू से भीगे अचल पर मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।

(कामायनी के लज्जा सर्ग से)

तुमुल कोलाहल कलह मे

तुमुल कोलाहल कलह मे
मैं हृदय की बात रे मन !

विकल होकर नित्य चचल,
खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक-सी रही तब,
मैं मलय की बात रे मन !

चिर-विषाद, विलीन मन की,
इस व्यथा के तिमिर-वन की,
मैं उषा-सी ज्योति-रेखा,
कुसुम-विकसित प्रात रे मन !

जहाँ मरु-ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती,

उन्हीं जीवन-घाटियों की,
मैं सरस बरसात रे मन !

पवन की प्राचीर में रुक,
जला जीवन जी, रहा झुक
इस झुलसते विश्व दिन की,
मैं कुसुम ऋतु-रात रे मन !

चिर-निराशा नीरधर से
प्रतिच्छायित अश्रु-सर में,
मधुप मुखर मरन्द-मुकुलित,
मैं सजल जलजात रे मन !

सियारामशरण गुप्त

बापू

(१)

ज्ञान-गरिमा-विशिष्ट,
कौन वृद्ध तुम हे तपस्वि, नित्य एकनिष्ठ ?
स्थित थे जहाँ वहीं सुसंस्थित हो।
एकासनासीन सदा,
एक ध्यान-धारण निलीन सदा,
नित्य अचलित हो।
झंझावात आते हैं प्रचण्ड रोषगति से,
मुक्त असंयति-से,

(२)

विश्व-महावंश-पाल,
धन्य, तुम धन्य हे धरा के लाल!
छद्म-छल के प्रबोध,
वीतराग, वीतक्रोध,
तुम में पुरातन है नूतन में,
नूतन चिरन्तन में।
छोटे-से क्षितिज हे,
वसुधा के निज हे,
वसुधा तुम्हारे बीच स्वर्ग में समुन्नत है,
स्वर्ग वसुधा में समागत है;
आकर तुम्हारे नये संगम में
लघु अवतीर्ण है महत्तम में;
दूर और पास आस-पास मिले,
एक दूसरे से हिले;
भीतर में बाहर में,
हास और रोदन ध्वनित एक स्वर में।
जाने किस भाषा में,
ज्ञात किसे, जानें किस आशा में,
हास में तुम्हारे विश्व हंसता;
रोदन में आकर निवसता
विश्व-वेदना का महा पारावार,
घोर घन हाहाकार;
छोटा-सा तुम्हारा यह वर्तमान
विपुल भविष्य में प्रवर्द्धमान;
आज के अपत्य तुम, कल के जनक हो,
एक के अनेक में गणक हो;
सब के सहज साध्य,

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

पराजय गीत

आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ,
विजय-पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ,
बढ़ती हुई कतार फ़ौज की सहसा अस्तव्यस्त हुई,
त्रस्त हुई भावों की गरिमा, महिमा सब सन्यस्त हुई।
मुझे न छेड़ो इतिहासों के पन्नों! मैं गतधीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ।

मैं हूं विजित, जीत का प्यासा, कहो भूल जाऊं कैसे?
वह संघर्षण की घटिका है बसी हुई हिय में ऐसे—
ज्यों मां की गोदी में शिशु का मृदु दुलार बस जाता है,
जैसे अंगुलीय में मरकत का नव नग कस जाता है।
विजय, विजय रटते-रटते यह मम मनुआ कल-कीर हुआ,
फिर भी असि की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ।

गगन भेद कर वरद करों ने विजय-प्रसाद दिया था जो,
जिस के बल पर किसी समय में मैंने विजय किया था जो,
वह सब आज टिमटिमाती स्मृति-दीपशिखा बन आया,
कालान्तर ने कृष्ण आवरण में उस को लिपटाया।
गौरव गलित हुआ गुरुता का, निष्प्रभ क्षीण शरीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ।

एक सहस्र वर्ष की माला मैं हूं उलटी फेर रहा,
उन गत युग के गुम्फित मनकों को फिर-फिर हेर रहा,
घूम गया जो चक्र, उसी की ओर देखता जाता हूं,
इधर-उधर चहुं ओर पराजय की ही मुद्रा पाता हूं,

आखो का ज्वलन्त क्रोधानल क्षीण दैन्य का नीर हुआ
आज खड्ग की धार कुठिता है, खाली तूणीर हुआ।

विजय-सूर्य ढल चुका, अधेरा, आया है रखने को लाज
कही पराजित का मुख देख न ले यह विजयी कुटिल समाज
आचल, कहा फटा आचल वह ? मा का लज्जा ग्रस्त कहा ?
कहीं छिपाऊ यह मुख अपना ? खो कर विजय फकीर हुआ
आज खड्ग की धार कुठिता है खाली, तूणीर हुआ।

जहा विजय के प्यासे सैनिक हुए आख की ओट कई
जहा जूझ कर मरे अनेकों, जहा खा गये चोट कई
वही आज सन्ध्या को बैठा मैं हू, अपनी निधि छोडे
कई सियार, श्वान, गीदड ये लपक रहे दौडे-दौडे,
विजित साझ के झुटपुटे समय कर्कश रव गम्भीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुठिता है खाली तूणीर हुआ।

रग-रग मे ठडा पानी है, अरे उष्णता चली गयी
नस-नस मे टीसें उठती है, विजय दूर तक टली सही
विजय नही रण के प्रागण की धूल बटोरे लाया हू
हिय के घावो मे, वर्दी के चिथडो मे ले आया हू
टूटे अस्त्र, धूल माथे पर हा ! कैसा मै वीर हुआ !
आज खड्ग की धार कुठिता है, खाली तूणीर हुआ।

वर्दी फटी, हृदय घायल, कारिख मुख, पर क्या वेश बना ?
आगे सकुची, कायरता के पकिल से सब देश सना
अरे पराजित, रण चडी के ओ कपूत ! हट जा, हट जा
अभी समय है, कह दे, मा मेदिनी जरा फट जा, फट जा !
हन्त, पराजय-गीत आज क्या द्रुपद-सुता का चीर हुआ।
खिचता ही आता है जब से खाली यह तूणीर हुआ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

भारती, जय

भारती, जय विजयकरे !
कनक-शस्य-कमल धरे !
लंका पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।
तरु-तृण वन-लता-वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण,
धवल-धार हार गले !
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएं उदार,
शतमुख-शतरव-मुखरे !

शेष

सुमन भर न लिये,
सखि, वसन्त गया।
हर्ष-हरण-हृदय
आह! निर्दय गया ?

उदयशंकर भट्ट

एकला चलो रे

[पद्य नाटक]

यदि तेरी पुकार सुनकर कोई नहीं आता, तो तू
अकेला ही चल,

अकेला चल, अकेला चल, अकेला ही चल,
यदि किसी के मुह से शब्द न निकले, अरे, अरे,
ओ अभागे,

यदि सभी मुह मोड़ लें, यदि सभी भयभीत हों,
तब अपने प्राणों को उन्मुक्त करके—
तू स्वयं अपनी तान छेड़ दे, अकेला ही तान छेड़ दे।
यदि तेरे संगी साथी सभी लौट जायें, अरे, अरे,
ओ अभागे,

यदि दुर्गम पथ में कोई तेरा साथ देने का इच्छुक न हो,
कंटकाकीर्ण मार्ग में—
रक्तरंजित चरणों से, ओ भाई, तू अकेला ही चल।
यदि प्रकाश के लिए कोई दीप नहीं रखता,
यदि मेघाच्छन्न और अन्धकारपूर्ण रात्रि में कोई घर का
द्वार बन्द कर देता है,

तब विद्युत् के समान—
अकेला ही सबके लिए दीपक बनकर जल।[1]

एक स्वर — ढाई सहस्र वर्ष पूर्व ऐसे ही एक दिन—
घरबार छोड़कर, तोड़कर मोह माया,

[1] स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता का अनुवाद।

विषम विकार युक्त,
अधिकार द्वारा मुक्त,
चल दिया,
इसी भूमि प्रागण मे—
वीर एक—
धीर एक—
निर्भय शरीर एक—
भेद-मोह प्राचीर—
निर्भय अकेला ही सविवेक पूत मन,
विश्व की व्यथाएँ
अविवेक की व्यथाएँ भर,
दुख त्रस्त, ग्रस्त व्यस्त,
जग को,
समस्त को,
प्राण विश्रान्ति देने,
शान्ति देने,
एक दिन, एक दिन, युग युग युग बीत।

वह महाभिनिष्क्रमण उस देवदूत का,
मानव प्रपूत का,
कौन नही जानता है,
इससे बने वे शुद्ध,
ज्ञान बुद्ध,
प्राण बुद्ध,
दया बुद्ध,
क्षमा बुद्ध,
सत्य बुद्ध,
श्रेय, प्रेय, ध्येय से प्रबुद्ध बुद्ध।

जिनके प्रकाश से,
और पूत हास से
शान्त विश्व प्राण हुए,
सत्य ने,
दया ने,
क्षमा, धैर्य, शम, दम ने मानो अवतार लिया—
मुक्त करने को जग,
दुःख हरने को भव-सागर अपार का,
आधि-व्याधि अभिभूत विश्वपारावार का।

दूसरा स्वर और फिर अकेला, एक और वीर था अकेला
करुणा का पाठ सा पढ़ाता, गाता,
जन के लिए महानर ईसा, प्राणभूति सा चढ़ाता;
वह प्रकाश ले, वह विकास ले, फिलस्तीन में उदय हुआ।
फैल गया नभ के छोरों तक जिसका करुणहास नया,
जिसने मानव के दुःख को दुःख जाना और उपाय किया
करुणामिश्रित मधुर हास से सारा पाप अपाप किया,
वह ईसा थे, क्षमा, शान्ति के, दया धर्म के पुंज महान्,
वह ईसा थे, रोगी, पीड़ित, दुःख दरिद्र के दयानिधान,
वह भी एक महाभिनिष्क्रमण वरदानी ईसा का था,
जिसने मानव के पशुबल को घृणा व्यंग को पीसा था;
उच्च प्राण, गिरि के समान उच्च,
चला वह अकेला वह सशक्त निःसीम आत्मा का बल लेकर
चला वह अकेला दुःख दग्ध को दया के सिन्धु का जल देकर।

तीसरा स्वर फिर छः सौ वर्ष बाद उतरा अरब देश में एक दूत
विश्वास नया भर, हास नया भर, ज्ञान नया भर देवदूत।
संगठित किया जग को उसने, मानव वह प्राण अकेला रे,
आचार धर्म का ध्येय, ज्ञेय, अज्ञेय खुदा का चेला रे;

है एक खुदा, है एकेश्वर, है एक पुत्र उसके सारे,
सब अपने है, है व्यर्थ ज्ञान यह अपना और पराया रे,
उसने दी दृष्टि नई जग को, उसने दी सृष्टि नई जग को,
उसने नव प्राण दिये जग को, उसने नव ज्ञान दिये जग को,
'सब मानव एक समान बनो, सबमे आलोक उसी का है,
सब मे विश्वास उसी का है, सबमे उद्योग उसी का है,
है एक खुदा, अल्लाह एक है, एक जाति यह मानव है,
उस पर विश्वास करो साथी, वह नित्य, सत्य, अक्षय, नव है,
आपस मे लड़ने वालो को लड-कटकर मरने वालो को,
यह ज्ञान दिया, यह ध्यान दिया, भाईचारे को स्थान दिया,
वह चला एक, वह उठा एक, वह बढ़ता ही जाता था नर,
वह देवदूत, वह जन सहचर, निर्भेद मोहम्मद पैगम्बर।

एक स्वर सन्देश सुना किसने इनका ?
कुछ याद रहा, कुछ भूल गये,
घर मे दीवारो पर फिर से
फिर धूल चढी प्रतिकूल गये,

दूसरा स्वर स्वार्थों ने, विषयो ने घेरा
धन के मद ने झकझोर दिया,
कर्त्तव्य गया, सब ज्ञान गया,
उद्देश्य गया, आदेश गया,

तीसरा स्वर जन क्रुद्ध हुए फिर युद्ध हुए
पशुओ से लडे परस्पर वे,
मूर्खता बढी, अज्ञान बढा
प्रलयंकर अधम अधमतर वे,

चौथा स्वर फिर नाश हुआ, जन जनता का,
देशो का जीवन क्षुब्ध हुआ,

विध्वस्त हुआ, सब त्रस्त हुआ,
सुख का सागर विक्षुब्ध हुआ;

एक स्वर

रह रहकर दुख की घटा घिरी,
रह रहकर बिजली टूट पड़ी;
रह रहकर प्रलय मेघ छाये,
रह रहकर बादल टकराये;

दूसरा स्वर

फिर युद्ध हुए, जन क्रुद्ध हुए,
आकाश फटे, विश्वास हटे;
धरती चिघाड़ उठी पागल,
पर्वत फुंकार उठे हिलहिल;

नर बना जानवर से बदतर,
नर बना राक्षसों सा दृढ़तर;
वह दयाहीन, करुणाविहीन,
वह क्रूर नृशंस वासनाधीन;

बम्बों से कम्पित गगन हुए,
तोपों से पीड़ित सुजन हुए;
नर नाश फूट कर उदधि बने,
विश्वास टूट सब जलधि बने;

औ' एटमबम्ब भयानकतर,
दानव-सा आया प्रबल प्रखर;
सब ओर नाश, सब ओर प्रलय,
सब ओर निराशा तिमिर अनय;

एक स्वर

उस समय बाल रवि हँसा एक,
उस समय जगा मानो विवेक,
उस समय जगा विज्ञान ज्ञान,
उस समय हँसे करुणानिधान,

उस समय दिशाएँ मौन खडी
उस समय तारिका मुग्ध जडी
उचके पर्वत सुनने को स्वर
झुक आये बादल विह्वल तर

तैंतीस कोटि एकत्रित स्वर
तैंतीस कोटि कल-कंठ मुखर
भर प्राणों में विश्वास प्रलय
'गाधी की जय गाधी की जय

वासनाविहीन, दीना का स्वर
पीयूष विमल, पर दुःखकातर
करुणा कृपाण, परमार्थ प्राण
बीसवीं सदी का बुद्ध ज्ञान,
गाधी गौरव का ज्योति पुंज,
अविजेय किन्तु करुणा निकुंज,

दूसरा स्वर
उसने देखा जग दुःख आर्त
पीडा से व्याकुल विकल स्वार्थ
कुण्ठित मति, विगलित स्वाभिमान
रोगी, स्वार्थी, अविवेकवान

देशानुबंध से शून्य दीन
स्वाधीन भावना विभवहीन
ईश्वर-विश्वास, प्रेम का पथ,
चल दिया अहिंसा व्रत अनुगत

ये सत्य अहिंसा के दो कर,
जीवन, जीवन के दो डग पगभर
वह चला रूँधता कीचड पथ
वह चला दिखाता जीवन पथ

तीसरा स्वर प्रत्येक चरण संस्कृति चलती
प्रत्येक चरण उन्नति चलती;
प्रत्येक चरण युग-धर्म चला,
प्रत्येक चरण युग-कर्म चला;

प्रत्येक चरण सभ्यता चली,
प्रत्येक हृदय भव्यता चली;
वह चला सुशीतल पवन चला,
आत्माभिमान का गगन चला;

वह चला पाप का दमन चला
वह चला चन्द्रमा मगन चला;
था एक सत्य उसका साथी,
थी एक अहिंसा की बाती,

उसने बढ़ बढ़ कर युद्ध किये,
मृत में जीवन उद्‌बुद्ध किये;
स्वातन्त्र्य दिया युग-दारा उठे,
सोते-सोते विश्वास उठे ।

सुमित्रानन्दन पन्त

ताज

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विपण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !

तड़ तड़ पड़ती धार वारि की उन पर चंचल,
टप टप झरतीं कर मुख से जल बूँदें झलमल !
नाच रहे पागल हो ताली दे दे चलदल,
झूम झूम सिर नीम हिलाती सुख से विह्वल !
हरसिंगार झरते, बेला-कलि बढ़ती पल-पल,
हँसमुख हरियाली में खग-कुल गाते मंगल !

दादुर टर-टर करते, झिल्ली बजती झन-झन,
म्यांउ-म्याउ रे मोर, पीउ-पीउ चातक के गण !
उड़ते सोन-बलाक आर्द्र सुख से कर क्रन्दन,
घुमड़-घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन !
वर्षा के प्रिय स्वर उर में बुनते सम्मोहन,
प्रणयातुर शत कीट-विहग करते सुख-गायन !
मेघों का कोमल तम श्यामल तरुओं से छन
मन में भू की अलस लालसा भरता गोपन ।

रिमझिम-रिमझिम क्या कुछ कहते बूंदों के स्वर,
रोम सिहर उठते, छूते वे भीतर अन्तर !
धाराओं पर धाराएं झरतीं धरती पर,
रज के कण-कण में तृण-तृण की पुलकावलि भर !
पकड़ वारि की धार झूलता है मेरा मन,
आओ रे सब मुझे घेर कर गाओ सावन !
इन्द्र-धनुष के झूले में झूलें मिल सब जन,
फिर-फिर आये जीवन में सावन मन भावन !

रामधारी सिंह 'दिनकर'

युधिष्ठिर की ग्लानि

शृंग चढ़ जीवन के आर-पार हेरते-से
योगलीन लेटे थे पितामह गभीर-से,
देख धर्मराज ने, विभा प्रसन्न फैल रही
श्वेत शिरोरुह, शर-ग्रथित शरीर में।
करते प्रणाम, छूते सिर से पवित्र पद
उंगली को धोते हुए लोचनों के नीर से,
'हाय पितामह, महाभारत विफल हुआ'
चीख उठे धर्मराज व्याकुल अधीर-से।

'वीर गति पा कर सुयोधन चला है गया
छोड़ मेरे सामने अशेष ध्वंस का प्रसार,
छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन
व्योम में बजाता जय-दुन्दुभि-सा बार-बार,
और यह मृतक शरीर जो बचा है शेष,
चुप-चाप मानो पूछता है मुझ से पुकार —
"विजय का एक उपहार मैं बचा हूं, बोलो,
जीत किस की है और किस की हुई है हार?"

'हाय पितामह, हार किसकी हुई है यह?
ध्वंस-अवशेष पर सिर धुनता है कौन?
कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूंढता है?
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन?
और बैठ मानव की रक्त-सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य-भरे अर्थ गुनता है कौन?
कौन देखता है शवदाह बन्धु-बान्धवों का?
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन?

'जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन-बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता;
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को
जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता;
और कहीं वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता;
तो भी हाय, यह रक्तपात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख मांग मरता।

'किन्तु, हाय, जिस दिन बोया गया युद्ध-बीज
साथ दिया मेरा नहीं मेरे दिव्य ज्ञान ने;
उलट दी मति मेरी भीम की गदा ने और
पार्थ के शरासन ने, अपनी कृपाण ने;
और जब अर्जुन को मोह हुआ रण-बीच,
बुझती शिखा में दिया घृत भगवान ने;
सब की सुबुद्धि पितामह, हाय, मारी गयी,
सब को विनष्ट किया एक अभिमान ने।

'कृष्ण कहते हैं, युद्ध अनघ है, किन्तु, मेरे
प्राण जलते हैं पल-पल परिताप से,
लगता मुझे है क्यों मनुष्य बच पाता नहीं
दह्यमान इस पुराचीन अभिशाप से!
और महाभारत की बात क्या? गिराये गये
जहां छल-छद्म से वरेण्य वीर आप-से,
अभिमन्यु-वध औ' सुयोधन का वध हाय,
हम में बचा है यहां कौन, किस पाप से?

'एक ओर सत्यमयी गीता भगवान की है,
एक ओर जीवन की विरति प्रबुद्ध है;

ऐसा लगता है, लोग देखते घृणा से मुझे,
धिक् सुनता हूं अपने पे कण-कण में,
मानव को देख आंखें आप झुक जातीं, मन —
चाहता अकेला कहीं भाग जाऊं वन में।

'करूं आत्मघात तो कलंक और घोर होगा,
नगर को छोड़ अतएव वन जाऊंगा;
पशु-खग भी न देख पायें जहां, छिप किसी
कन्दरा में बैठ अश्रु खुल के बहाऊंगा;
जानता हूं, पाप न धुलेगा वनवास से भी,
छिपा तो रहूंगा, दुःख कुछ तो भुलाऊंगा;
व्यंग्य से विंधेगा वहां जर्जर हृदय तो नहीं,
वन में कहीं तो धर्मराज न कहाऊंगा।'

और तब चुप हो रहे कौन्तेय,
संयमित करके किसी विधि शोक दुष्परिमेय;
उस जलद-सा, एक पारावार
हो भरा जिसमें लबालब, किन्तु, जो लाचार—
बरस तो सकता नहीं, रहता मगर बेचैन है।

भीष्म ने देखा गगन की ओर;
मापते मानो युधिष्ठिर के हृदय का छोर;
और बोले — 'हाय नर के भाग !
क्या कभी तू भी तिमिर के पार
उस महत् आदर्श के जग में सकेगा जाग,
एक नर के प्राण में जो हो उठा साकार है
आज दुख से, खेद से, निर्वेद के आघात से ?'

(कुरुक्षेत्र से)

केदारनाथ अग्रवाल

निर्माण के स्वर

कि हम भी गुनगुनायेंगे,
गले से जिन्दगी अपनी —
स्वरो से रस चुआयेंगे,
बडे मैदान के ऊपर
जहा हैं आम, महुए के खड़े तरुवर
लिए पतझर —
नये भौरें, नई बौरें,
नई कोपल, नई कोयल बुलायेंगे,
वहा पर मोद की मुरली
मधुरतम हम बजायेंगे,
बसन्ती वासना के पग
पवन पर हम नचायेंगे।
कि हम भी गुनगुनायेंगे,
पुलक से पार लगने को
स्वरो के पुल बनायेंगे
समय के सिंधु के ऊपर,
कनक से प्रात की ढोलक लिए मनहर,
खडे होकर,
नये निर्द्वन्द्व हाथो से
समुत्सुक हम बजायेंगे;
अरुण यौवन, तरुण जीवन,
सृजन के स्वर्ग के सपने नचायेंगे,
करोड़ो कर्म के उत्सव

मगन मन हम मनायेंगे ।
कि हम भी गुनगुनायेंगे ! !

नरेन्द्र शर्मा

आषाढ़

पकी जामुन के रंग की पाग बांधता आया, लो, आषाढ़ !

अधखुली उस की आंखों में झूमता सुधि-मद का संसार,
शिथिल कर सकते नहीं संभाल खुले लम्बे साफे का भार,
कभी बंधती, खुल पड़ती पाग, झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

सिन्धु शय्या पर सोयी बाल जिसे आया वह सोती छोड़,
आह, प्रति पग अब उस की याद खींचती पीछे को जी तोड़,
लगी उड़ने आंधी में पाग, झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

हर्ष-विस्मय से आंखें फाड़ देखती कृषक-सुताएं जाग,
नाचने लगे रोर सुन मोर, लगी बुझने जंगल की आग,
हाथ से छुट खुल पड़ती पाग, झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

जरी का पल्ला उड़-उड़ आज कभी हिल झिलमिल नभ के बीच,
बन गया विद्युत-द्युति, आलोक सूर्य-शशि-उडु के उर से खींच ;
कौंध नभ का उर उड़ती पाग, झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

उड़ गयी सहसा सिर से पाग, छा गये नभ में घन घनघोर !
छुट गयी सहसा सिर से पाग, बढ़ा आंधी-पानी का जोर !
लिपट, लो, गयी मुखी से पाग, झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

त्रिपथगा

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय
जीवन की त्रिगुणमयी गगा,
गतिशील त्रिपथगा, सदा बही
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय !

हिंसा, अन्याय, स्वार्थपरता
यह जीवन-रक्षा की परिणति !
जो भाव प्रगति-पथ को गति दे,
बनता रहता है वही अगति !

हर-हर करती, पर्वत तरती,
गगा तम सा धारा बनती,
ससृति यो धवल रूप धरती
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय !

बनती सकीर्ण साम्प्रदायिक
फिर क्रातिकारिणी क्षुब्ध बुद्धि,
ज्यो अग्नि राख मे खो जाये
कर दीप्त तेज से स्वर्ण शुद्धि !

तब चिता-भस्म को नहलाती
वह विष्णुपदी बन कर आती
धरती को उर्वर कर जाती
तट पर शत नगरी बसवाती
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय !

जनतन्त्र यन्त्रवत् बन जाता
सूनापन बस भूमडल मे !

गति राशि रूप-चैतन्यहीन,
वह छिपती ब्रह्म-कमंडल में !
पर फिर सुषुप्ति क्यों उठी भूल ?
रह सकी न गंगा दिशा भूल !
हे क्रान्ति शान्ति के उभय कूल,
जीवन-प्रवाह चिर-प्रगतिमूल
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय !

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

जीवन के कुसुमित उपवन में गुंजित मधुमय कण-कण होगा,
शैशव के कुछ सपने होंगे, मदमाता-सा यौवन होगा :
यौवन की उच्छृंखलता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

पथ में कांटे तो होंगे ही, दूर्वादल, सरिता, सर होंगे;
सुन्दर गिरि, वन, वापी होंगी, सुन्दर-सुन्दर निर्झर होंगे;
सुन्दरता की मृग-तृष्णा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

मधुवेला की मादकता से कितने ही मन उन्मन होंगे,
पलकों के अंचल में लिपटे अलसाये से लोचन होंगे :
नयनों की सुघड़ सरलता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

साकीबाला के अधरों पर कितने ही मधुर अधर होंगे,
प्रत्येक हृदय के कम्पन पर रुनझुन-रुनझुन नूपुर होंगे
पग पायल की झनकारों में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

यौवन के अल्हड़ वेगों में बनता-मिटता छिन-छिन होगा
माधुर्य सरसता देख-देख भूखा-प्यासा तन-मन होगा
क्षण-भर की क्षुधा-पिपासा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

जब विरही के आंगन में घिर सावन घन कड़क रहे होंगे,
जब मिलन-प्रतीक्षा में बैठे दृढ़ युग-भुज फड़क रहे होंगे,
तब प्रथम मिलन-उत्कंठा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

जब मृदुल हथेली गुम्फन कर भुज-वल्लरियां बन जायेंगी
जब नव-कलिका-सी अधर पंखुरियां भी सम्पुट कर जायेंगी,
तब मधु की मदिर सरसता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

जब कठिन कर्म-पगडंडी पर राही का मन उन्मुख होगा,
जब सब सपने मिट जायेंगे, कर्त्तव्य-मार्ग सम्मुख होगा,
तब अपनी प्रथम विफलता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

अपने भी विमुख, पराये बन आंखों के सम्मुख आयेंगे,
पग-पग पर घोर निराशा के काले बादल छा जायेंगे,
तब अपने एकाकीपन में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

जब चिर-संचित आकांक्षायें पल भर में ही ढह जायेंगी,
जब कहने-सुनने को केवल स्मृतियां बाकी रह जायेंगी,

विचलित हो उन आघातों में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

हाहाकारों से आवेष्टित तेरा-मेरा जीवन होगा,
होंगे विलीन यह मादक स्वर मानवता का क्रन्दन होगा :
विस्मित हो उन चीत्कारों में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

रणभेरी सुन, कह 'विदा', 'विदा' जब सैनिक पुलक रहे होंगे,
हाथों में कुमकुम थाल लिये—कुछ जलकण ढुलक रहे होंगे,
कर्त्तव्य-प्रणय की उलझन में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

वेदी पर बैठा महाकाल जब नर-बलि चढ़ा रहा होगा,
बलिदानी अपने ही कर से निज मस्तक बढ़ा रहा होगा—
तब उस बलिदान-प्रतिष्ठा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

कुछ मस्तक कम पड़ते होंगे जब महाकाल की माला में
मां मांग रही होगी आहुति जब स्वतन्त्रता की ज्वाला में
पल भर भी पड़ असमंजस में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

व्याकरण और रचना खण्ड

भाषा एवं वाक्य

'गया के राम मोहन साथ घर'—ये सार्थक शब्द हैं पर ये मिलकर भी कोई अर्थ नही देते।

'राम मोहन के साथ घर गया'—उन्ही शब्दो से बना यह वाक्य है, यह सार्थक वाक्य है। प्रश्न यह है कि जब शब्द वही हैं, और वे सार्थक भी हैं फिर भी कोई अर्थ क्यो नही दे सके? 'वाक्य' म क्या वैशिष्ट्य या विशेषता आ गयी कि उससे अर्थ व्यक्त होने लगा?

वाक्य मे एक विशेष व्यवस्था या क्रम है जो मात्र शब्दावली मे नही रहता। क्रम है: कर्त्ता (राम) कर्त्ता का विस्तार (मोहन के साथ) कर्म (घर) क्रिया (गया)।

इनके लिये एक वैकल्पिक रूप भी व्यवस्थागत बन सकता है। यथा (कर्त्ता का विस्तार) मोहन के साथ (कर्त्ता) राम (कर्म का विस्तार) अपने (कर्म) घर (क्रिया) गया।

यह दूसरा रूप 'मोहन के साथ' 'राम अपने घर गया', व्याकरण की दृष्टि से अधिक उचित व्यवस्था से बनाया हुआ वाक्य है—क्योकि, मोहन के साथ (कर्त्ता का विस्तार), पहले आना अधिक उचित है।

वाक्यांश और वाक्य

इसी शब्दावली को देखे तो विदित होता है कि केवल 'मोहन के साथ' कहे तो वाक्य नही बनता। 'अपने घर' कहे तो भी वाक्य नही बनता, क्योकि लगता है कि इन वाक्यांशो मे कोई बात नही कही गयी। किन्तु यदि 'राम गया' कह दें तो इन दो शब्दो से ही वाक्य पूरा हुआ विदित होता है, क्योकि इसमे 'राम' के विषय मे कहा गया है कि वह 'गया'—इस प्रकार इन दो शब्दो से ही पूरा अर्थ प्राप्त हो जाता है।

इसका अर्थ हुआ कि 'राम' यहाँ उद्देश्य है और 'गया' विधेय है। एक वाक्य में स्वाभाविक क्रम भी यही होता है: पहले 'उद्देश्य', बाद में 'विधेय'।

वाक्य-रूप : अर्थ-छवि में अन्तर :

(१) 'राम ने लड्डू खाया'—यह सरल वाक्य है, व्याकरण से व्यवस्थित।

(२) 'लड्डू राम ने खाया'—इस वाक्य में कर्म को पहले रखकर जैसे 'लड्डू' को प्रश्नवाचक—'लड्डू?' और 'राम ने खाया' को उसका उत्तर वाक्य बना दिया है।

(३) 'लड्डू खाया राम ने'—इस वाक्य में पहले कर्म 'लड्डू', फिर क्रिया 'खाया', तब कर्त्ता—'राम ने'—यह क्रम प्रस्तुत किया गया। इससे भी अर्थ में विशेषता आयी है। इसमें एक लय भी आ गयी है।

इस प्रकार व्याकरण-व्यवस्थित वाक्यों में ऐसे हेर-फेर से अर्थ-छवि में अन्तर आता है।

उपयुक्त शब्द :

वाक्य में यह भी अपेक्षित है कि उपयुक्त शब्दों का प्रयोग हो। उपयुक्त शब्द—

१. प्रसंगानुकूल ठीक होते हैं। कुत्तों के प्रसंग में 'भौंकना', सिंह के प्रसंग में 'दहाड़ना'। हाथी चिंघाड़ते हैं, ऊंट बलबलाते हैं, घोड़े हिनहिनाते हैं, गधे रेंकते हैं, आदि।

२. वही अर्थ प्रकट करते हैं जो अभिप्रेत है, 'पानी गये न ऊबरै मोती मानुस चून'।

३. वाक्य की प्रकृति के अनुकूल होते हैं। 'राम अपने घर गया' में 'घर' के स्थान पर 'गृह' का प्रयोग समीचीन नहीं होगा।

४. मुहावरे में ठीक लगें—'मेरे बड़े भाई कान के कच्चे हैं, पर अपनी

नाक पर मक्खी नहीं बैठने देते'। इस वाक्य में 'बच्चे' के स्थान पर 'अपक्व' नहीं रखा जा सकता, न मक्खी के स्थान पर 'मक्षिका' या 'मच्छर'।

वाक्य और उसके भेद :

एक सरल वाक्य भी पदान्तरण से वाक्य-भेद प्रस्तुत करता है, और उससे अर्थ-छवि में अन्तर आता है।

'राम गया'—यह वाक्य 'सरल वाक्य' कहा जायगा।

'सरल वाक्य' में एक 'उद्देश्य' और एक 'विधेय' होता है। 'विधेय' में एक ही क्रिया प्रधान होती है, वह क्रिया 'समापिका-क्रिया' होती है।

रचना की दृष्टि से वाक्य के तीन भेद होते हैं—(१) सरल (या साधारण) वाक्य, (२) मिश्र (या मिश्रित) वाक्य, (३) संयुक्त (या जटिल) वाक्य।

सरल वाक्य : भाषा की मूल प्रकृति

'सरल वाक्य' का रूप ही भाषा की प्रकृति का मूल रूप है जिसका रूप है—

उद्देश्य	विधेय
कर्ता का विस्तार + कर्ता	कर्म का विस्तार + कर्म + क्रिया का विस्तार + क्रिया।

सरल वाक्यों से ही मिल कर मिश्र और संयुक्त वाक्य बन जाते हैं।

मिश्र वाक्य :

इन दो सरल वाक्यों को लें—

(१) लड़का पाँच बरस का हुआ। (२) पिता ने उसे मदरसे को भेजा।

पहले वाक्य में 'हुआ', और दूसरे में 'भेजा' समापिका-क्रियाएं हैं, इन दोनों से एक बड़ा वाक्य बना—'जब लड़का पाँच बरस का हुआ तब पिता

ने उसे मदरसे में भेजा।' इसमें दोनों, अलग-अलग, एक बड़े वाक्य के 'उपवाक्य' हो गये हैं। ऐसे वाक्यों में एक मुख्य उपवाक्य होता है। इसमें मुख्य उपवाक्य है—'तब पिता ने उसे मदरसे को भेजा'। दूसरा **आश्रित उपवाक्य** है।

यहाँ ये दोनों उपवाक्य 'जब' और 'तब' सम्बन्ध बोधक **अव्ययों** से जोड़े गये हैं।

संयुक्त वाक्य :

संयुक्त वाक्य में सरल अथवा मिश्र वाक्यों का मेल रहता है, यथा — 'कोई कहता है कि राम गया और कोई कहता है कि मोहन गया, किन्तु पता नहीं कि सत्य क्या है।'

वाक्य-रचना सरल या साधारण वाक्यों से मिश्र या मिश्रित वाक्यों में कठिन होती जाती है, और संयुक्त या जटिल वाक्यों में कठिनतर और कठिनतम। अतः जिन बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिये उनमें से एक तो है कि उपवाक्य अपने उचित स्थान पर रखे जायें। इसी प्रकार यह भी देखना होगा कि परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित वाक्य के अवयव यथा-संभव दूर न जा पड़ें, साथ ही अव्ययों और विभक्तियों को भी ठीक स्थान पर ही रखा जाय, तथा अनावश्यक शब्दावली को स्थान न मिले।

आश्रित उपवाक्य के भेद :

आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—

(१) संज्ञा उपवाक्य, (२) विशेषण उपवाक्य, (३) क्रियाविशेषण उपवाक्य।

किसी वाक्य में पद भी शब्द-रूप की तरह व्यवहार करते हैं। वे शब्द-रूप हैं संज्ञा, विशेषण, क्रिया-विशेषण। एक बड़े वाक्य में उपवाक्य भी इन्हीं की भाँति संज्ञा, विशेषण या क्रिया-विशेषण के रूप में व्यवहार कर सकते हैं।

एक शब्द-रूपी वाक्य

(१) भाग, भाग, (२) साँप साँप (३) लो (४) जाओ,
(५) खाइये, (६) आइये।

प्रत्यक्ष-परोक्ष उक्ति

राम ने कहा, 'मैं कल उससे मिला था। इस वाक्य में राम का कथन या 'उक्ति' 'प्रत्यक्ष' दी गयी है। ऐसी प्रत्यक्ष 'उक्ति' को ' ' इन चिह्नों को लगाकर वाक्य में प्रस्तुत करते हैं।

इसका एक रूप यह भी मिलता है — 'राम ने कहा कि मैं कल उससे मिला था'। इसमें 'कि' संयोजक के आने से उक्ति द्योतक चिह्न नहीं रखे गये।

इसी का एक रूप और हो सकता है — 'राम ने कहा कि वह कल उससे मिला था।' यह 'उक्ति' का परोक्ष रूप है, जो हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। यह अंग्रेजी के 'इनडायरेक्ट नैरेशन' के अनुकरण पर लिया जाता है।

वाच्य

कर्तृवाच्य : 'राम ने रावण को मारा'। इसमें कर्त्ता की प्रधानता है, अर्थात् यह कर्तृवाच्य है। कर्मवाच्य : 'राम के द्वारा रावण मारा गया' — यह कर्मवाच्य है। कर्मवाच्य के वाक्यों में मूल कर्त्ता को करण कारक में रखा जाता है। भाववाच्य : एक तीसरे प्रकार का वाक्य रूप भी हिन्दी में होता है; यथा, 'चला नहीं जाता', 'बैठा नहीं जाता', 'खूब पड़ा जाता है', 'लेटा नहीं जाता'।

ये वाच्य हैं, इनसे वाक्य के रूप में अन्तर आता है।

इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि हिन्दी में क्रिया के प्रयोग भी तीन प्रकार के होते हैं — कर्तरि, कर्मणि एवं भावे। प्रयोगों का कारक-चिह्नों से सम्बन्ध है, अतः यहीं इन पर प्रकाश डाला गया है।

शब्द-विकार : वाक्य में

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनके रूप में वाक्य के अनुकूल होने के लिए विकार आता है और कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनमें विकार नहीं आता। पहले हैं 'विकारी', दूसरे हैं 'अविकारी' (अव्यय)।

विकारी शब्द

विकारी शब्दों में जिन कारणों से विकार आता है वे हैं—१. कारक, २. लिंग, ३. वचन, ४. पुरुष।

कारक से विकार

ये वाक्य लें

१. घोड़ा भाग गया (घोड़ा कर्त्ता/कारक विभक्ति रहित)

२. घोड़े ने दाना खाया (घोड़ा कर्त्ता/कारक-विभक्ति 'ने' सहित। आकारान्त 'घोड़ा' का रूप विभक्तियुक्त होने के लिये तिर्यक 'घोड़े' हो गया है।)

विभक्तियुक्त आकारान्त कर्त्ता कारक में आकारान्त संज्ञा का रूप विकारी 'एकारान्त' युक्त या तिर्यक (यथा—घोड़े ने, तोते ने, बेटे ने) हो जाता है। पर इसका भी अपवाद है। संस्कृत तत्सम रूपवाली आकारान्त संज्ञाएं (यथा—राजा ने, प्रजा ने आदि) अविकृत रहती हैं।

कर्त्ता कारक के अतिरिक्त अन्य कारक और उनकी विभक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. कर्म कारक—दो रूप—	(क) बिना कारक-विभक्ति प्रत्यय के (ख) 'को' कारक विभक्ति प्रत्यय युक्त
२. करण कारक—	विभक्ति 'से' (के द्वारा, के साथ आदि)
३. सम्प्रदान—	विभक्ति प्रत्यय 'को' (के लिए, के वास्ते आदि)
४. अपादान—	विभक्ति 'से'
५. सम्बन्ध—	" का, की, के

विशेषण से	भाववाचक संज्ञा
गुरु	गुरुत्व
मीठा	मिठास
कड़वा	कड़वाहट
रमणीय	रमणीयता
क्रिया से	भाववाचक संज्ञा
मारता	मार
मिलाता	मिलावट

व्यक्तिवाचक और भाववाचक संज्ञा बहुवचन में नहीं आती। जब इनका प्रयोग बहुवचन में होता है तो ये जातिवाचक बन जाती हैं।

सर्वनाम

प्रयोग के अनुसार सर्वनाम के निम्नलिखित प्रकार हैं— (१) पुरुषवाचक, (२) निजवाचक, (३) निश्चयवाचक, (४) सम्बन्धवाचक, (५) प्रश्नवाचक, और (६) अनिश्चयवाचक सर्वनाम।

हिन्दी में सब मिलाकर ११ सर्वनाम हैं—मैं, तू, आप, यह, वह (पुरुष वाचक); सो, जो (सम्बन्धवाचक); कोई, कुछ (अनिश्चयवाचक); कौन, क्या (प्रश्नवाचक)।

निज वाचक सर्वनाम

निज वाचक सर्वनाम का रूप 'आप' है, लेकिन यह अन्य पुरुष और मध्यम पुरुष 'आप' से भिन्न है। यथा—१. मैं आप अपना काम कर लूंगा। 'आप'-निजवाचक। २. आप भी मेरे साथ चलें। 'आप'-मध्यम पुरुष। ३. आप अपने समय के महान वक्ता थे। 'आप'—अन्य पुरुष।

विशेषण

विशेषण के तीन भेद—१. सार्वनामिक विशेषण। २. गुणवाचक विशेषण। ३. संख्यावाचक विशेषण।

१ सार्वनामिक विशेषण—पुरुष और निजवाचक सर्वनामों को छोड़कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान होता है। जब ये अकेले आते हैं तब सर्वनाम होते हैं और जब इनके साथ संज्ञा या विशेषण आता है तब ये विशेषण होते हैं। जैसे — 'नौकर आया है, वह (सर्वनाम) बाहर खड़ा है।' तथा 'वह (विशेषण) नौकर नहीं आया।

२ अनिश्चित संख्यावाचक—(क) निश्चित संख्यावाचक में 'कोई' या 'लगभग' लगाकर भी अनिश्चित संख्या बताई जाती है—(१) बरात में कोई पचास व्यक्ति होंगे। (२) उस सभा में लगभग दो सौ लोगों की ही उपस्थिति थी।

(ख) निश्चित संख्या वाचक दो संख्याओं के मेल से भी अनिश्चित संख्या का बोध कराया जाता है 'बीस-पच्चीस लड़के', 'तीस-पैंतीस पुस्तकें' आदि।

(ग) निश्चित संख्यावाचक को बहुवचन में कर देने से भी अनिश्चित संख्या का बोध होता है. 'पच्चीसों पुस्तकें', 'लाखों नर-नारी', 'करोड़ों की सम्पत्ति'।

(घ) किसी निश्चित संख्या के बाद 'एक' जोड़ देने से भी अनिश्चित संख्या का बोध होने लगता है—'पचासेक' (पचास + एक), 'बीसेक' —(बीस + एक)।

क्रिया

क्रिया के दो भेद होते हैं—(१) सकर्मक क्रिया, (२) अकर्मक क्रिया।

सकर्मक क्रिया : मोहन आम खाता है।

अकर्मक क्रिया . मोहन रोता है।

स्थूल रूप से कहें तो जब क्रिया के सम्बन्ध में 'क्या' प्रश्न पूछा जाय, पर एक तो प्रश्न ही ठीक न लगे और दूसरे उत्तर अनावश्यक प्रतीत हो, तो क्रिया अकर्मक होगी। यथा — 'मोहन रोता है'। प्रश्न होगा 'क्या' रोता है ? प्रश्न ही ठीक नहीं लगता, और उत्तर तो कुछ हो ही नहीं सकता।

पर मुहावरे में 'रोना रोता' अर्थ रखता है; 'वह अपना रोना रोता है'।

उधर खाता है क्रिया के सम्बन्ध में यह पूछा जा सकता है कि 'क्या खाता है?' प्रश्न ठीक लगता है। उत्तर मिलेगा 'आम'। अतः यह खाता है' क्रिया सकर्मक है।

द्विकर्मक क्रिया: 'राम ने मुझे पानी पिलाया।' 'पिलाया' क्रिया के दो कर्म हैं: 'मुझे' और 'पानी'। यहां 'पानी' मुख्य कर्म है, 'मुझे' गौण कर्म है। 'पिलाना' क्रिया 'पीना' सकर्मक क्रिया का प्रथम प्रेरणार्थक रूप है। ऐसा रूप ही दो कर्म लेता है। इन रूपों को देखें:

सकर्मक	द्विकर्मक	प्रेरणार्थक
पीना	पिलाना	पिलवाना
देखना	दिखाना	दिखवाना
देना	दिलाना	दिलवाना

प्रेरणार्थक क्रिया भी सकर्मक का ही एक रूप है।

यौगिक सकर्मक

काटना	काटना
(अकर्मक)	(सकर्मक)

यहाँ अकर्मक क्रिया यौगिक प्रक्रिया से सकर्मक बन गयी है।

नाम क्रिया: संज्ञा से और क्रिया से बनती है।

हथियाना — हाथ संज्ञा में यौगिक प्रक्रिया से 'हथि' और उसमें 'इयाना' लगाकर यह क्रिया बनायी गयी है। लतियाना, बतियाना। चिकनाना — 'चिकना' विशेषण में अन्त में 'ना' जोड़कर क्रिया बनायी गयी है। (संज्ञा और विशेषण 'नाम' बोधक हैं। ना, लाना या याना अन्त में लगाकर नाम क्रिया या नामधातु क्रिया बनती है)

संयुक्त क्रिया के भेद

१. गोपाल जाने लगा। आरम्भ बोधक (गोपाल जाने का कार्य या व्यापार आरम्भ करने को प्रस्तुत हुआ — यह अर्थ इस संयुक्त क्रिया से

सम्भव हुआ है। इसमें 'जाने' मुख्य क्रिया है। 'लगा' सहायक क्रिया है—इन दोनों से संयुक्त क्रिया बनी।)

२. मुझे जाने दीजिए, उसने मुझे बोलने दिया। अनुमति बोधक मुख्य क्रिया में 'ए' का आदेश—जाना—जाने, बोलना—बोलने। सहायक क्रिया—'देना' क्रिया का उचित रूपान्तर।

३ वह काम न करने पाया। शाम होने पर ही वह जाने पाया। अवकाश बोधक (१) मुख्य क्रिया में 'ए' आदेश—करना/करने/जाना/जाने (२) सहायक क्रिया—'पाना' क्रिया के उचित रूपान्तर में।

विकल्प—मुख्य क्रिया के 'धातु' रूप से भी काम चल जाता है।—वह काम न कर पाया।—शाम होने पर ही वह जा पाया।

४ (क) पढ़ता आया हूँ। (ख) चढ़ता गया। (ग) पिछड़ता रहेगा। नित्यता बोधक मुख्य क्रिया—पढ़ता, चढ़ता, पिछड़ता। 'हेतुहेतुमद्भूत' का सामान्य रूप। यह रूप पढ़, चढ़, पिछड़ जैसी धातुओं में ता, ती, ते प्रत्यय लगा कर बनता है। सहायक क्रिया—आना, जाना, रहना के उचित रूपान्तर युक्त।

विकल्प राम यों ही कहा करता है। मुख्य क्रिया—कहा (कहना *क्रिया का सामान्य भूत)। सहायक क्रिया—करना क्रिया का उचित* रूपान्तर।

५ (१) भगा जाता है। दिन बैठा जाता है। (२) मरी जाती थी। तत्परता बोधक मुख्य क्रिया—सामान्य भूत रूप बैठा, मरी। सहायक क्रिया—जाना क्रिया का रूपान्तर—जाती थी, जाता है।

६ (१) उठ बैठना। (२) कूद पड़ना। (३) जाग उठना। अवधारणा बोधक—मुख्य क्रिया—क्रिया का धातु रूप—उठ, कूद, जग, जाग। सहायक क्रिया—जाना, आना, उठना, बैठना, लेना, देना, पड़ना, डालना, आदि का रूप।

७ वह बोल सकता है। शक्तिबोधक—मुख्य क्रिया—धातु रूप। सहायक क्रिया—'सकना' का उचित रूपान्तर।

८ 'वह पढ़ चुका है।' पूर्णता बोधक/समाप्ति बोधक। मुख्य क्रिया—

धातु रूप। सहायक क्रिया — 'झुकना' का रूपान्तर।

९. उसमे चलने नहीं बनता। योग्यता बोधक — मुख्य क्रिया — सामान्य हेतुहेतुमद्भूत रूप में। सहायक क्रिया — 'बनना' का रूपान्तर।

१० 'पढ़े जाओ'। निरन्तरता बोधक। मुख्य क्रिया-पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त : पढ़ा, पढ़े। सहायक क्रिया — 'जाना' का रूपान्तर।

११. 'मैं यह पुस्तक लिए लेता हूं'। निश्चय बोधक। मुख्य क्रिया — पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त : लिया, लिये। सहायक क्रिया — लेना, देना, डालना, बैठना के रूप युक्त।

१२. वह पढ़ना-पढ़ाना जानता है। २. इसमें कुछ होना-हवाना नहीं है। (पुनरुक्त संयुक्त क्रिया)।

१३. 'मैं कल अपने गाँव जाना चाहता हूँ।' इच्छा बोधक — मुख्य क्रिया — क्रिया का समान्य रूप — जाना। सहायक क्रिया — 'चाहना' का रूपान्तर।

१४. (१) मेह पड़ना ही चाहता है। (२) यह उपन्यास अभी पढ़े डालता हूँ। तत्काल बोधक। मुख्य क्रिया — क्रिया का सामान्य रूप 'पढ़ना'। सहायक क्रिया — 'चाहना' का रूपान्तर।

(टिप्पणी — इच्छा बोधक में 'चाहना' का अर्थ तत्काल बोधक के 'चाहना' से मिलाइये। दोनों में अन्तर है। फिर भी 'चाहना' सहायक क्रिया से बनने के कारण इसे भी इच्छा-बोधक ही मानते हैं।)

दूसरा प्रकारः विकल्प (मुख्य क्रिया : क्रिया के धातु रूप में 'ए' आदेश। सहायक क्रिया — 'डालने' का रूपान्तर)

१५. 'वह समाचार पत्रों के लिए समाचार लिखा करता है'। अभ्यास बोधक। (मुख्य क्रिया — सामान्य भूतकाल की। सहायक क्रिया — 'करना' क्रिया का रूपान्तर)।

१६. 'मुझे भी वह दृश्य दिखाई दिया।' नाम बोधक। (मुख्य क्रिया — 'नाम' शब्द, अर्थात् संज्ञा या विशेषण — 'दिखाई' सहायक क्रिया — करना, होना, रहना, देना के रूप आते हैं।)

काल

हिन्दी मे क्रिया के कालो के तीन भेद है —

(१) वर्तमान काल, (२) भूत काल, और (३) भविष्यत् काल।

वर्तमान काल के भेद—

(१) हवा चलती है — सामान्य वर्तमान।
(२) चिट्ठी भेजी जा रही है — अपूर्ण वर्तमान।
(३) नौकर आया है — पूर्ण वर्तमान।
(४) वह लौटा हो — सम्भाव्य वर्तमान।

भूतकाल के भेद—

(१) गाडी आई, चिट्ठी भेजी गई, राम गया — सामान्य भूतकाल।

(२) नौकर जा रहा था चिट्ठी लिखी जा रही थी — अपूर्ण भूतकाल।

(३) वह आया था, राम ने रावण को मारा था — पूर्ण भूतकाल।

भविष्यत् काल के भेद

(१) वह कल पाठशाला जायेगा — सामान्य भविष्यत्।
(२) मैं वह पत्र लिख चुकूगा — पूर्ण भविष्यत्।
(३) मेह बरसता रहेगा — अपूर्ण भविष्यत्।

अर्थ-प्रकार के भेद

हिन्दी मे क्रियाओ के पाँच अर्थ-प्रकार है

(१) निश्चयार्थ, (२) सभावनार्थ, (३) सदेहार्थ, (४) आज्ञार्थ, और (५) सकेतार्थ।

'आता है' (निश्चयार्थ), 'बरसे' (सभावनार्थ), 'गया होगा' (सदेहार्थ क्रिया), – 'जाओ' (आज्ञार्थ क्रिया), 'होता' (सकेतार्थ क्रिया)।

विविध कालों से संयुक्त ये भेद काल के साथ अर्थ के विविध भेद प्रस्तुत करते हैं।

कृदन्त : विकारी कृदन्त : भेद

१. क्रियार्थक संज्ञा — क्रिया का 'ना' कारान्त रूप : पढ़ाना, पढ़ना — यह क्रिया-रूप 'संज्ञा' की भाँति प्रयोग में आता है।

२. भाववाचक कृदन्त — संज्ञा रूप में : विविध प्रत्ययों के योग से 'बोल' = ('बोलना' से 'ना' का लोप) 'जमाव' = [(धातु) जमा + आव], दुराव-छिपाव, बनाव-सिंगार। 'रहन' = (मूल क्रिया रूप 'रहना' के आकारान्त को ह्रस्व 'रहन' करके) रहन-सहन, लेन-देन, चलन-फिरन। 'घेरा' = [घेर (धातु) + आ] 'पढ़न्त' = [पढ़ (धातु) + अंतिम स्वर का लोप = पढ़् + अन्त = पढ़न्त]। 'पढ़ाई' = [पढ़ (धातु) + आई = पढ़ाई)। 'सजावट = [सजा (धातु) + वट]। 'घबड़ाहट' = [घबड़ा (धातु) + हट]। 'लिखावट' = [लिख (धातु) + आवट]। 'घुड़की' = [घुड़क (धातु) + ई]। 'गिनती' = (गिन (धातु) + ती]। 'करनी' = [कर (धातु) + नी]। 'बचत' = [बच (धातु) + त]। 'बुझौवल' [बूझ (धातु) + औवल]। 'बसेरा' = [बस (धातु 'बसाना' की) + एरा]। 'समझौता' = [समझ (समझना की धातु) + औता]। 'पहिनावा' = [पहिन (पहिनना 'क्रिया' की धातु) + आवा]।

३. कर्तृवाचक कृदन्त : (क) क्रिया के 'ना' कारान्त मूल रूप में 'ए' आदेश के साथ 'वाला' जोड़कर — गानेवाला, लिखनेवाला। (ख) 'हारा' जोड़कर — बेचनेहारा। (ग) सामान्य क्रिया के 'ना' को लघु करके, 'हार' जोड़कर — होनहार, पालनहार।

४. वर्तमानकालिक कृदन्त : डूब (धातु) + ता: इसमें आकारान्त संज्ञा-विशेषण की भाँति विकार होते हैं।

५. भूतकालिक कृदन्त : (क) झपटा (हुआ) (झपटना की धातु झपट + आ, (ख) बोया (हुआ) (बोना) क्रिया की धातु 'बो' + या)

धातु के अंत में 'आ', 'ए' या 'आ' हो तो 'या' लगाकर, भूतकालिक कृदन्त बनता है। धोया (धोना से), खाया (हुआ) (खाना से), सेया, — अंडे सेये है('सेना' क्रिया से), (ग) सिया हुआ कपडा (सीना क्रिया की धातु 'सी' के ईकारान्त को लघु 'सि' करके 'या' लगाया गया है), (घ) 'किसी का छुआ हुआ खाना मैं नहीं खा सकता' 'छुआछूत'। (छूना क्रिया की धातु 'छू' 'ऊ' कारान्त, उसे लघु 'छु' करके 'आ' जोडने से।

अविकारी कृदन्त (अव्यय)

पूर्वकालिक — 'खाकर' (धातु रूप में के = दौडके/कर = भाग कर/करके = देख करके) (यथार्थ में 'कर' एवं 'के' ही ठीक हैं)। तात्कालिक कृदन्त — 'देखते ही' (देखना क्रिया का वर्तमानकालिक कृदन्त 'देखता' — अन्तिम 'ता' को 'ए' आदेश से 'देखते' करके 'ही' जोड देने से।

अपूर्ण क्रिया द्योतक: 'लौटते' (वर्तमानकालिक कृदन्त 'लौटता' को अन्त में 'ए' आदेश मुक्त करके बनता है)।

पूर्ण क्रिया द्योतक — गए/बीते ('जाना' क्रिया का भूत कृदन्त 'गया' उसके अन्त में 'ए' आदेश 'गये'। 'बीतना' — बीता (भू कृ) + 'ए' आदेश = बीते)।

अव्यय : अविकारी
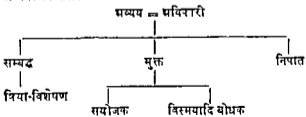
क्रिया-विशेषण

(क) वह बाजार की ओर धीरे-धीरे जा रहा था (एक वचन पुल्लिंग) धीरे-धीरे जा रही थी; (एक वचन स्त्रीलिंग); धीरे-धीरे जा रहे थे; (बहुवचन)— ऊपर के वाक्यों में 'धीरे-धीरे' 'क्रिया' की विशेषता बताता है।

(ख) इस बर्तन को खूब साफ करो। 'साफ' क्रिया-विशेषण है। ('खूब' 'साफ' का विशेषण होने के कारण क्रिया-विशेषण है।) (ग) बहुत तेज घोड़ा। ('बहुत' क्रिया-विशेषण — 'तेज' विशेषण की विशेषता बताता है।)

समुच्चयबोधक या संयोजक :
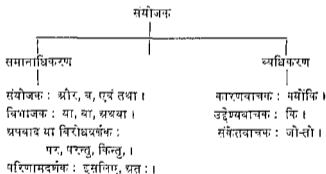
विस्मयादिबोधक अव्यय

(क) हर्षबोधक—आहा!, वाह-वाह!; (ख) शोकबोधक—हाय!, हा!, आह!, बाप रे बाप!; (ग) आश्चर्यबोधक—हैं! क्या!, अरे!, ओहो!; (घ) तिरस्कारबोधक—छि:, छी-छी, धिक्। (ङ) प्रशंसाबोधक—शाबाश, वाह-वाह, वाह; (च) घृणाबोधक—छि: हट; (छ) अवज्ञाबोधक—रे, अरे, रे-रे।

निपात
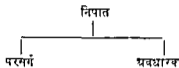
(क) परसर्ग : कारक चिह्न

ने—कर्ता, पर, मे—अधिकरण, से—करण एव अपादान, को—कर्म एव सप्रदान आदि।

(ख) अवधारक

अवधारक अव्यय के दो प्रकार—

(अ) अन्तर्भावी अवधारक—भी, तो कृष्ण तो आ गया। तुम्हारे साथ वह भी खेलेगा।

(आ) बहिर्भावी अवधारक—ही, तक, मात्र। मोहन ही भाषण देगा।

शब्द संरचना

शब्द-सरचना प्रक्रिया-प्रकार

शब्द साधक प्रत्यय द्वारा — समास द्वारा — पुनरुक्ति द्वारा — सधि द्वारा
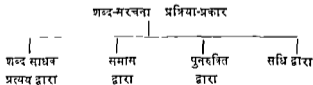
प्रक्रिया :

(क) रो (= धातु) + ना (= परसर्ग प्रत्यय) = रोना मूल क्रिया-रूप एव क्रियार्थक सज्ञा (प्रत्यय द्वारा)। (ख) राजपुत्र

राज (=राजा, संज्ञा), पुत्र (= संज्ञा) [दो शब्दों का योग और कारक-चिह्न (= का) लोप) समास द्वारा। (ग) चिट्ठी-पत्री भेजना (दो पर्यायों से बना एक शब्द) पुनरुक्ति द्वारा। लाल-लाल आँखें (एक ही शब्द की आवृत्ति) पुनरुक्ति द्वारा। यहाँ कुत्ता-वुत्ता तो नहीं है (एक ही शब्द की आवृत्ति) पुनरुक्ति द्वारा (एक सार्थक शब्द के साथ निरर्थक पर सम-उच्चारण युक्त शब्द की पुनरुक्ति द्वारा। (घ) भाग्योदय: (भाग्य + उदय) : दो शब्दों के मेल में संधि की प्रक्रिया।

शब्द-साधक प्रत्यय

प्रत्यय के भेद
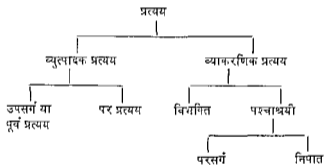
(१) व्युत्पादक प्रत्यय :

ईमानदारी = ईमान (प्रातिपदिक) + दार (प्रत्यय) + ी (पर प्रत्यय)। वत्स + ल + ता = वत्सलता (प्रातिपदिक) + (प्रत्यय) + (प्रत्यय)।

(क) पूर्वप्रत्यय या उपसर्ग (प्रिफ़िक्स) :

अत्याचार = अति (उपसर्ग) + आचार [आत्यन्तिकता द्योतक] अधि (उपसर्ग) — अधिकरण। अनु (उपसर्ग) = अनुक्रम, अनुज।

अप (उपसर्ग) = अपकीर्ति, अपहरण। अभि (उपसर्ग) = अभिमान। प्र (उपसर्ग = प्रखर, प्रबल।

(ख) परप्रत्यय या प्रत्यय (सफिक्स)
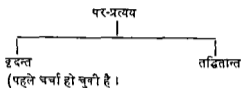
तद्धित :

पार्वती ('पर्वत' सज्ञा से अपत्यवाचक), शैव ('शिव' से गुणवाचक), कौशल ('कुशल' से भाववाचक)।

(२) व्याकरणिक प्रत्यय के प्रकार :

(क) विभक्ति—

बालकों = बालक (सज्ञा) + ओं (= बहुवचन पुल्लिंग का द्योतक प्रत्यय है)।

(ख) परचाश्रयी — 'लडके ने यह काम किया' = 'ने' पश्चाश्रयी प्रत्यय है। इन्हे ही 'कारकचिह्न भी कहा जाता है।

समास

समासो के मुख्य चार भेद — १ अव्ययीभाव समास, २ तत्पुरुष समास, ३ द्वन्द्व समास, ४ बहुव्रीहि समास।

(१) अव्ययीभाव समास: यथाविधि, यथासाध्य, प्रतिदिन आदि। (यथा = अव्यय प्रथम पद। विधि — द्वितीय पद। इसमे प्रथम पद 'यथा' प्रधान है।)

(२) तत्पुरुष समास. (क) कर्म तत्पुरुष — गृहागत (गृह को आगत)। (ख) करण तत्पुरुष — वाग्युद्ध (वाक् से युद्ध)। (ग)

सम्प्रदान तत्पुरुष — रसोईघर (रसोई के लिये घर)। (घ) अपादान तत्पुरुष — कामचोर (काम से जी चुराने वाला)। (ङ) सम्बन्ध तत्पुरुष — सेनापति (सेना का पति)। (च) अधिकरण तत्पुरुष — गृह-प्रवेश (गृह में प्रवेश)। सेनापति — (सेना का पति) = 'पति' 'पति' द्वितीय पद इसकी प्रधानता है। अतः तत्पुरुष। हिन्दी में तत्पुरुष समास में किसी कारक-चिह्न का ही लोप होता है।

(३) **कर्मधारय समास : नीलाम्बर** = नील (विशेषण), अम्बर (विशेष्य)। विशेष्य द्वितीय पद, यही यहाँ प्रधान है। द्वितीय पद प्रधान होने के कारण यह तत्पुरुष है, पर विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध के कारण यह **कर्मधारय** है। **चन्द्रमुख** = चन्द्र (उपमान), मुख (उपमेय)। उपमेय दूसरा पद, वही प्रधान। अत: तत्पुरुष, किन्तु उपमान-उपमेय सम्बन्ध के कारण **'कर्मधारय'**।

(४) **द्विगु समास : त्रिभुवन** = (त्रि = संख्यावाचक विशेषण; भुवन = विशेष्य)। 'भुवन' विशेष्य रूप में द्वितीय पद और प्रधान पद। अत: तत्पुरुष, विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध से कर्मधारय। विशेषण संख्या-वाचक अतः नाम **'द्विगु समास'**। शीतोष्ण= शीत (विशेषण) + उष्ण (विशेषण) — दोनों पद विशेषण। ऐसा समास भी 'कर्मधारय' कहलाता है।

(५) **द्वन्द्व समास :** दालभात = दाल और भात। दोनों पद प्रधान, अत: द्वन्द्व समास।

(६) **बहुव्रीहि समास :** गजानन = गज (हाथी) + आनन (मुख) : अर्थ हुआ हाथी का मुख। किन्तु इसका अर्थ इस प्रकार होता है — गज का आनन है जिसका वह, 'गणेश'।

संधि

संधि के तीन भेद — (१) स्वर संधि, (२) व्यंजन संधि, (३) विसर्ग संधि।

स्वर संधि : पाँच भेद — (क) दीर्घ, (ख) गुण, (ग) वृद्धि, (घ) यण्, (ङ) अयादि।

(क) दीर्घ स्वर सधि

अ+अ=आ	राम+अयन=रामायण
अ+आ=आ	रत्न+आकर=रत्नाकर
आ+अ=आ	विद्या+अर्थी=विद्यार्थी
आ+आ=आ	विद्या+आलय=विद्यालय
इ+इ=ई	रवि+इन्द्र=रवीन्द्र
इ+ई=ई	कवि+ईश्वर=कवीश्वर
ई+इ=ई	देवी+इच्छा=देवीच्छा
ई+ई=ई	जानकी+ईश=जानकीश
उ+उ=ऊ	भानु+उदय=भानूदय
उ+ऊ=ऊ	सिन्धु+ऊर्मि=सिन्धूर्मि
ऊ+उ=ऊ	भूस्वय+उदय=स्वयभूदय
ऊ+ऊ=ऊ	भू+ऊर्जिन=भूर्जिन

(ख) गुण स्वर सधि

अ+इ=ए	देव+इन्द्र=देवेन्द्र
अ+ई=ए	सुर+ईश=सुरेश
आ+इ=ए	महा+इन्द्र=महेन्द्र
आ+ई=ए	रमा+ईश=रमेश
अ+उ=ओ	चन्द्र+उदय=चन्द्रोदय
अ+ऊ=ओ	समुद्र+ऊर्मि=समुद्रोर्मि
आ+उ=ओ	महा+उत्सव=महोत्सव
आ+ऊ=ओ	महा+ऊरु=महोरु

अ+ऋ=अर्	सप्त+ऋषि=सप्तर्षि
आ+ऋ=अर्	महा+ऋषि=महर्षि

(ग) वृद्धि स्वर संधि

अ+ए=ऐ	एक+एक=एकैक
अ+ऐ=ऐ	मत+ऐक्य=मतैक्य, नव+ऐश्वर्य=नवैश्वर्य।
आ+ए=ऐ	सदा+एव=सदैव
आ+ऐ=ऐ	महा+ऐश्वर्य=महैश्वर्य
अ+ओ=औ	जल+ओघ=जलौघ,
आ+ओ=औ	महा+ओज=महौज
अ+औ=औ	परम+औषध=परमौषध
आ+औ=औ	महा+औषध=महौषध।

(घ) यण् संधि

इ+अ=य	यदि+अपि=यद्यपि
इ+आ=या	इति+आदि=इत्यादि
इ+उ=यु	प्रति+उपकार=प्रत्युपकार
इ+ऊ=यू	नि+ऊन=न्यून
इ+ए=ये	प्रति+एक=प्रत्येक
ई+अ=य	नदी+अर्पण=नद्यर्पण
ई+आ=या	देवी+आगम=देव्यागम
ई+उ=यु	सखी+उचित=सख्युचित
ई+ऊ=यू	नदी+ऊर्मि=नद्यूर्मि
ई+ऐ=यै	देवी+ऐश्वर्य=देव्यैश्वर्य
उ+अ=व	अनु+अय=अन्वय
उ+आ=वा	सु+आगत=स्वागत
उ+इ=वि	अनु+इत=अन्वित

उ+ए=वे	अनु+एषण=अन्वेषण
ऋ+अ=र्	पितृ+अनुमति=पित्रनुमति
ऋ+आ=रा	पितृ+आदेश=पित्रादेश ।

व्यंजन संधि

1. क, च, ट, त, प के बाद अनुनासिक को छोडकर तृतीय या चतुर्थ वर्ण आता है या य, र, व रहता है तो क, च ट त प के स्थान में उसी वर्ग का तीसरा वर्ण हो जाता है—

दिक्+गज=दिग्गज
षट्+आनन=षडानन

ध्वनि : स्वर-व्यजन

शब्द का निर्माण ध्वनियो से होता है । यथा—'गाय' । 'गाय' शब्द 'ग्' (व्यजन)+आ (मात्रा रूप 'ा'=स्वर)+य् (+व्यजन)+अ (मात्रा रूप मे विद्यमान स्वर) । इस प्रकार स्वर और व्यजन के मेल से यह शब्द बना ।

हिन्दी का प्रत्येक वर्ण 'अ'=स्वर की मात्रा से युक्त होता है । बिना स्वर के व्यजन को (्) हलन्त युक्त दिखाया जाता है, जैसा हमने ऊपर 'गाय' के 'ग' और 'य' को (ग् ा य् अ) दिखाया है ।

हिन्दी मे 'स्वर' ये हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ (ऋ), ए, ऐ, ओ, औ, अँ, अं, एव अः या विसर्ग । 'ऋ' अब केवल सस्कृत तत्सम शब्दो मे प्रयोग मे आती है । इसी प्रकार विसर्ग भी सस्कृत तत्समो मे ही आता है । यथा—ऋषि, प्रकृति, दुःख, अतः, आदि ।

हिन्दी के स्वर वर्णमाला मे जिस क्रम से बताये जाते हैं, उनसे उनके उच्चारण-स्थान का भी सकेत मिलता है —

कंठ्य	तालव्य	ओष्ठ	
अ आ	इ ई	उ ऊ	—मूल स्वर

कण्ठ-तालु से	कण्ठ-ओष्ठ से	
ए ऐ	ओ औ	—संयुक्त स्वर
	अँ अं	—अनुनासिक

ऋ संस्कृत तत्समों में—मूर्धन्य है।

: को प्राण-ध्वनि कह सकते हैं।

'व्यंजन' की परिभाषा में बताया जाता है कि वह स्वर की सहायता के बिना उच्चरित नहीं हो सकता। जब हम 'क' बोलते हैं तो शुद्ध व्यंजन होगा 'क्', जिसे बोलने के लिए स्वर 'अ' या 'अ' की मात्रा से युक्त करके बोलना पड़ता है 'क'। 'कमरा' के 'क' में 'क्+अ' है। 'क' जब किसी अन्य व्यंजन से मिलता है तब वह स्वर को छोड़कर अन्य व्यंजन की सहायता लेता है और संयुक्त वर्ण कहलाता है, यथा 'क्लान्त'। क्+ल्+ा+न्+त।

हिन्दी वर्णमाला में व्यंजन जिस रूप में दिये जाते हैं, उनसे कई बातों का ज्ञान होता है। हिन्दी वर्णमाला में व्यंजन यों दिये गये हैं:

	अघोष		घोष		नासिक्य	
उच्चारण स्थान	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण		
कंठ=	क	ख	ग	घ	ङ	—इसे कवर्ग कहते हैं
तालु=	च	छ	ज	झ	ञ	—,, चवर्ग ,,
मूर्द्धा=	ट	ठ	ड	ढ	ण	—,, टवर्ग ,,
दन्त=	त	थ	द	ध	न	—,, तवर्ग ,,
ओष्ठ=	प	फ	ब	भ	म	—,, पवर्ग ,,
		य र ल व				—,, अन्तस्थ ,,
		श ष स ह				—,, ऊष्म ,,

तीन संयुक्त वर्ण भी वर्णमाला में सम्मिलित किये जाते हैं: क्ष, त्र, ज्ञ।

यह बात भी हम जानते हैं कि ऊष्म वर्णों में से 'ष' अब केवल संस्कृत तत्सम में ही उपयोग में आता है।

शुद्ध लेखन

(अ) शब्द: वर्तनी

हिन्दी मे शब्द का शुद्ध लेखन शुद्ध उच्चारण पर निर्भर करता है। हिन्दी में जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है। अग्रेजी मे 'ब्रिज शब्द है, उसकी वर्तनी है bridge। हिन्दी मे ऐसा कोई शब्द नही जिसके लेखन में वर्तनी मे अक्षर कुछ हो और बोला कुछ जाता हो। अत प्रत्येक शब्द का ठीक उच्चारण जानना आवश्यक है।

हिन्दी म वर्णमाला मे कुछ अक्षर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा रखते हैं: ये हैं—

१ 'ब' तथा 'व'=बात (बातचीत) एव वात (=वायु)
मेरी बात मानो। वातावरण गर्म है।

२ 'श, ष और स'—होश, दोष, कोस।

३ छ और क्ष—छात्र (विद्यार्थी), क्षात्र (क्षत्रिय का) धर्म।

४ अ एव अँ—हस (=पक्षी) और हँसना।

हिन्दी मे वर्तनी की भूलो या त्रुटियो का दूसरा कारण है सयुक्ताक्षर लिखने मे नियम का अज्ञान। सयुक्ताक्षर दो अक्षरो के भी हो सकते हैं, और अधिक के भी। दो अक्षर के स्मरण (स्+म), दो से अधिक के सयुक्ताक्षर हर्म्य (ह्+र्+म्+य), प्रवत्स्यपतिका (प्रव+त्+स्+य)।

सयुक्ताक्षर मे सयुक्त होने का सामान्य क्रम यही है कि पहले बोले जाने वाला पहले, बाद मे बोले जाने वाला बाद मे। यथा क्+ला+कला।
'ब्दार' अशुद्ध है, शुद्ध है 'द्वार'। एक अक्षर से दूसरा तीन स्थलो पर सयुक्त हो सकता है o¹ ये हैं वे तीन स्थान। पहला स्थान है अक्षर की

o² |

o₃

शिरोरेखा के ऊपर—यथा 'शर्करा'. 'र' 'क' से सयुक्त हुआ है 'क' की शिरोरेखा के ऊपर। 'शब्द' मे 'ब' सयुक्त हुआ है 'द' से। 'ब' 'द' मे दूसरे स्थान पर मिला है। 'द्वार' मे 'द' मिला है 'व' मे। अत. 'व' स्थान ३ पर

मिला, अतः 'द्व' लिखा गया है। यह रूप तो अक्षरों के लिखने में प्रस्तुत होता है—दो अक्षर जब मिलते हैं एक पहले बोला जायगा, वह आधा उच्चरित होगा और बाद में पूरा। 'हलन्त' के द्वारा इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं :
शक्‌करा=शर्करा; शब्‌द=शब्द; द्‌वार=द्वार

अतः 'शुद्ध' ठीक है 'शुध्द' गलत है, या अशुद्ध है। 'शुद्ध' है 'शुद्‌ध' अतः 'द' के ऊपर नीचे के स्थान पर 'ध' चढ़ाया जायगा। इस शब्द के लिखने में वर्तनी में त्रुटि इसी कारण होती है कि बहुधा 'ध' को 'द' से संयुक्त किया जाता है। शब्द का रूप 'शुध्द' नहीं है, 'शुद्‌ध'=शुद्ध है।

'र' के संयुक्त होने की एक स्थिति 'शर्करा' में हम देख चुके हैं। दूसरी स्थिति में अक्षर के नीचे मिलता है यथा 'शुक्र', 'राष्ट्र' में 'र' '्र' इस रूप में मिलता है। इन दोनों में 'र' का पूरा उच्चारण है, 'क' और 'ट' र से संयुक्त हुए हैं।

कुछ संयुक्ताक्षरों के दो रूप होते हैं : 'क्क' या 'क्क'
'ल्ल' या 'ल्ल'
'त्त' या 'त्त'
'श्र' या 'श्र'

इनमें से दूसरा रूप अधिक प्रचलित है।

वर्तनी की अन्य त्रुटियाँ

ये बहुत प्रकार की होती हैं, और अद्‌भुत भी होती हैं। यहाँ वे त्रुटियाँ दी जा रही हैं जो अति प्रचलित हैं:—

अशुद्ध	शुद्ध
अध्यन	अध्ययन
प्रर्याप्त	पर्याप्त
उश्रृंखल	उच्छृंखल
कवियित्री कवित्री कवयत्री	कवयित्री

चन्द्रबिन्दु एवं अनुस्वार की त्रुटियाँ

अशुद्ध	शुद्ध
आंख	आँख
चांद	चाँद
उंगली	उँगली अँगुली

शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध
परिणती	परिणति	पाच	पाँच
शृ गार	शृ गार या शृगार	पाचवा	पाँचवाँ
उपरोक्त	उपर्युक्त		
पुरष्कार पुरुष्कार	पुरस्कार		

वर्तनी के कुछ विवादास्पद प्रश्न

	(क)		(ख)
१	आइये	या	आइए
	आये	या	आए
	गये	या	गए

(क) मे दिये गये रूप व्याकरण के आधार पर है · इस पक्ष का कहना है कि एक तो 'इ' के बाद 'ए' आने पर 'य' श्रुति होती है, अत 'ए' को 'ये' हो जाना चाहिए ।

दूसरे जिन क्रियाओ के भूतकालिक रूप मे अन्त मे 'या' आता है (आया/गया) तो बहुवचन मे उसका 'ये' रूप होना चाहिये 'ए' नही ।

'ख' के रूप उच्चारण के आधार पर है, जैसा बोलते है, वैसा लिखना चाहिए । हम 'आइए' बोलते हैं, 'आइये' नही, फिर जब एक स्वर 'ए' से काम चलता है तो एक व्यजन और लाकर रूप को जटिल क्यो बनाया जाय ।

(ग) क्रिया मे 'य—ए' का सयोग जहाँ रहे वहाँ 'ए' से काम चलाने से एक अन्य प्रकार की क्रियाओ की समस्या भी हल हो जाती है—

वह जाये/जाय/जावे

वह जायेगा/जायगा/जावेगा

इनमे 'य', 'ये', 'वे' मे से क्या रखना ठीक है—उत्तर है 'ए' रख दीजिये कोई समस्या नही रहेगी ।

त्रुटियों के अन्य प्रकार :

(१) शब्दों का द्विरुक्ति-दोष :

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
आपका भवदीय	आपका/भवदीय
तब फिर	तब/फिर
केवल आप ही	केवल आप/आप ही
तब इसके बाद	तब/इसके बाद
नामक शीर्षक	नामक/शीर्षक
नौजवानयुवक	नौजवान/युवक

(२) शब्दों के दुष्प्रयोग :

आपकी आयु	आपकी अवस्था/आपकी वय
युद्ध का श्रीगणेश	पूजा का श्रीगणेश
सौभाग्यवती मीना का विवाह	सौभाग्याकांक्षिणी मीना का विवाह/ आयुष्मती मीना का विवाह
सुश्री वीणा के पति	श्रीमती वीणा के पति
असंख्य जनसमूह	अपार जनसमूह
श्रद्धा करना	श्रद्धा रखना
प्रतीक्षा देखना	प्रतीक्षा करना

(३) प्रत्यय सम्बन्धी अशुद्धियां :

कौशलता	कौशल
लब्धप्रतिष्ठित	लब्धप्रतिष्ठ
षष्ठम	षष्ठ
सौन्दर्यता	सौन्दर्य/सुन्दरता
आलस्यता	आलस्य

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
चातुर्यता	चातुर्य/चतुरता
व्यवसाइक	व्यावसायिक
साहत्यिक साहित्यक	साहित्यिक

(४) भाववाचक शब्दों के बनाने में त्रुटियाँ :

चातुर्यता	चतुरता। चातुर्य
ऐक्यता	एकत्व। ऐक्य। एकता
सामर्थ्यता	सामर्थ्य
नैपुण्यता	निपुणता/नैपुण्य

(५) लिंग प्रत्यय सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

कोमलांगिनी	कोमलांगी
नारि	नारी
प्रेयसि	प्रेयसी
शताब्दि	शताब्दी

(५) समास सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

कृतघ्नी	कृतघ्न
निर्दोषी	निर्दोष
मन्त्रीमण्डल	मन्त्रिमंडल
सानन्दित	सानन्द
एकतारा	इकतारा
पक्षीराज	पक्षिराज
स्वामीभक्त	स्वामिभक्त
योगीराज	योगिराज

(आ) वाक्यों की अशुद्धियाँ :

(१) लिंग सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	शुद्ध
राम की पत्नी विद्वान है।	राम की पत्नी विदुषी है।
रामा कवि और अध्यापिका है।	रामा कवयित्री और अध्यापिका है।

(२) वचन सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

यह किसका हस्ताक्षर है ?	यह किसके हस्ताक्षर हैं ?
श्री कृष्ण के अनेकों नाम हैं।	श्री कृष्ण के अनेक नाम हैं।
उसके आंख से आंसू बहता है।	उसकी आँखों से आँसू बहते हैं।

(३) क्रिया और काल सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

एक गाय, दो घोड़े और एक बकरी मैदान में चर रहे हैं।	एक गाय, दो घोड़े और एक बकरी मैदान में चर रही है।
बाघ और बकरी एक घाट पानी पीती हैं।	बाघ और बकरी एक घाट पानी पीते हैं।
वहाँ बहुत से पशु और पक्षी उड़ते और चरते हुए दिखाई दिए।	वहाँ बहुत से पशु और पक्षी चरते और उड़ते हुए दिखाई दिये।

(४) विरामचिह्नों की अशुद्धियाँ :

अशुद्ध : कौन कहता है। आदमी बड़ा कमजोर है कि औरत उस पर शासन करती है कि पैदा होने वाले बच्चे औरत और मर्द के लिए भार-स्वरूप हैं कि जीवन दुखपूर्ण है ?

शुद्ध : कौन कहता है कि आदमी बड़ा कमजोर है; कि औरत उस पर शासन करती है; कि पैदा होने वाले बच्चे औरत और मर्द के लिए भारस्वरूप हैं; कि जीवन दुःखपूर्ण है ?

अशुद्ध : सेठ फूलचन्द चारों बेटों के नाम कुल दस लाख रुपये छोड़ गये थे।

शुद्ध : सेठ फूलचन्द, चारो बेटो के नाम, कुल दस लाख रुपये छोड गये थे ।

अशुद्ध : मेरा भाई जो एक इजीनियर है, इगलैण्ड गया है ।

शुद्ध : मेरा भाई, जो एक इजीनियर है, इगलैण्ड गया है ।

(५) वाक्य-विन्यास सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध : कुत्ता दरबान की तरह दुम हिलाता हुआ दरवाजे पर खडा रहता है ।

शुद्ध : कुत्ता दुम हिलाता हुआ दरबान की तरह दरवाजे पर खडा रहता है ।

अशुद्ध : कई रेलवे के कर्मचारियो की गिरफ्तारी हुई ।

शुद्ध : रेलवे के कई कर्मचारियो की गिरफ्तारी हुई ।

अशुद्ध : मुझे चाहिए एक नौकर जो खाना बनाने मे चतुर हो ।

शुद्ध : मुझे एक नौकर, जो खाना बनाने मे चतुर हो, चाहिए ।

मुहावरे एवं कहावतें

'रुपया-पैसा हाथ का मैल है, उसे हथियाने के लिए किसी से हाथापाई करने की या किसी पर हाथ साफ करने की आवश्यकता नही, न हाथ पर हाथ रख कर बैठने की आवश्यकता है, अपने दो-चार हाथ दिखाइये और हाथो-हाथ सब कुछ पाइये । हाथ कगन को आरसी क्या ? काम मे हाथ लगाइये और सफलता वरण कीजिये । 'इस हाथ दे उस हाथ ले' यह बात लोक प्रसिद्ध है, अन्यथा हाथो के तोते उड जायेंगे और आप हाथ मलते रह जायेंगे ।'

मुहावरेदार भाषा से ही भाषा की शक्ति का पता चलता है । कहावत या लोकोक्ति भाषा को मार्मिकता प्रदान करती है ।

हाथ का मैल होना, हाथापाई करना, हाथ पर हाथ रखके बैठना, हाथ दिखाना, हाथ लगाना, हाथ साफ करना, आदि मुहावरे हैं ।

'हाथ कंगन को आरसी क्या', 'इस हाथ दे उस हाथ ले'—ये कहावतें हैं। मुहावरे वाक्यांश होते हैं, और वाक्य के अंग के रूप में प्रयोग में आते हैं; मुहावरे क्रिया से युक्त रहते हैं: आंख आना, आंख लगना, आंख दिखाना, आंख लड़ना, आंख लड़ाना, आंख बचाना, आंख नटेरना, आंख बंद होना, आंख खुलना, आंखें खोलना आदि मुहावरे हैं, सभी क्रिया युक्त हैं।

'आंखों के अंधे नाम नैनसुख'—यह कहावत है।

मुहावरों की संख्या भी कम नहीं है, कहावतें भी बहुत सी हैं। उन्हें जानना चाहिए, उनका अर्थ और प्रयोग हृदयंगम करना चाहिये। इससे हमारी भाषा की अभिव्यक्ति और अभिव्यंजना की शक्ति बढ़ती है।

संक्षिप्तीकरण

सक्षिप्तीकरण का सीधा-सादा अर्थ है किसी भी कथन को सक्षेप मे लिखना । 'सक्षिप्तीकरण' को अग्रेजी मे 'प्रेसी' (précis) कहते हैं । हिन्दी मे सक्षेपण, सक्षेपीकरण, सक्षिप्तता, सक्षिप्तीकरण, सक्षिप्त लेख, सक्षिप्त लेखन आदि भी प्रचलित हैं । यहाँ पर हम 'सक्षिप्तीकरण' का ही प्रयोग कर रहे हैं ।

सक्षिप्तीकरण (précis) की प्रक्रिया से मिलते-जुलते अनेक शब्द हैं । उनमे प्रमुख हैं—अन्वय (paraphrase), सार / साराश (summary), भावार्थ (substance), आशय (purport), मुख्यार्थ (gist), रूपरेखा (synopsis) ।

किन्तु सक्षिप्तीकरण एक स्वतत्र रचना-विधि है । इसके अपने नियम है ।

'सक्षिप्तीकरण' का बहुत महत्त्व है, यह कार्यालयो मे, व्यावसायिक प्रतिष्ठानो मे, पत्रकारिता मे, शोध मे, अध्ययन-अध्यापन मे तथा अन्य अनेक क्षेत्रो मे काम आता है ।

सक्षिप्तीकरण का एक उपयोग कार्यालयो मे आगत पत्रो की सक्षिप्ति के रूप मे होता है । इसके लिए सूचीकरण पद्धति काम मे लेते है । सूचीकरण पद्धति के सक्षिप्तीकरण मे निम्नलिखित तालिका बनाई जाती है—

क्रम सख्या	पत्र सख्या	दिनाक	प्रेषक	प्रेषिति	पत्र का विषय (सक्षिप्त रूप मे)	विशेष
१	२	३	४	५	६	७

इसमे छठे स्तम्भ मे पत्र की सक्षिप्ति एक या दो वाक्यो मे ही दी जाती है । कभी-कमी केवल बातो को गिना-भर देते हैं ।

किन्तु सक्षिप्तीकरण जहाँ एक स्वतत्र रचनाविधि बन जाता है, वह उक्त कार्यालयीय क्षेत्र से इतर क्षेत्रो की वस्तु है ।

अच्छे संक्षिप्तीकरण के गुण

अच्छी संक्षिप्ति में मूल का यथार्थ सार आ जाता है। कोई भी महत्त्वपूर्ण बात नहीं छूटती, पर आती संक्षेप में ही है।

मूल की सभी बातों को अवतरण के उचित संदर्भ में क्रमबद्ध रूप में नियोजित करना होता है। इस क्रमबद्धता में वाक्यों का पारस्परिक तारतम्य भी रहना चाहिये।

संक्षिप्तता तो इसका प्रधान लक्ष्य भी है और धर्म भी। संक्षिप्तीकरण को सामान्य रूप से मूल का तृतीयांश होना चाहिए। उसमें विस्तृत विवरण, विशेषण तथा उदाहरणों को स्थान नहीं होना चाहिए। शब्द संख्या गणना करके निर्धारित करनी चाहिए और शब्द सीमा को पार नहीं करना चाहिए।

संक्षिप्तता के साथ उसमें स्पष्टता अवश्य होनी चाहिए। संक्षिप्तीकरण सरल और स्पष्ट होना चाहिए।

शुद्धता का तात्पर्य है व्याकरण सम्मत शिष्ट प्रयोग: शब्दों का भी और वाक्यों का भी।

भाषा-शैली की सरलता

अलंकृत अथवा समास शैली का कम ही प्रयोग करना चाहिए। चमत्कार को स्थान नहीं होना चाहिए। यथासंभव भाषा सरल होनी चाहिए।

पूर्णता

पूर्णता में यह देखना होगा कि मूल का पूर्ण भाव आये, तथा वाक्यादि भी व्याकरण सम्मत शुद्ध और पूर्ण हों।

क्रम और प्रवाह के संतुलन से ही संक्षिप्तीकरण का स्वरूप निखरता है। मूल के प्रभाव में और संक्षिप्तीकरण के प्रभाव में विशेष अन्तर नहीं होना चाहिए। शब्दों की संख्या की गणना करके घटाने से कोई लाभ नहीं होगा यदि उसका प्रभाव ही घट जाये।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि संक्षिप्तीकरण में संक्षिप्तता, स्पष्टता और क्रमबद्धता अत्यन्त आवश्यक है।

वाचन—मूल अवतरण को भली प्रकार पढ़ना होता है कि यह स्पष्ट हो जाय कि (१) उसमें कथ्य क्या है। (२) उस कथ्य को बताने के लिए जो विचार, तर्क, प्रमाण दिये गये है वे कौन-कौन से है, उनमें से कौन-कौन से मुख्य, कौन से गौण और कौन से अनावश्यक है। इसके लिए कई बार वाचन भी करना पड सकता है।

मुख्य विचारों का सकलन—अब मुख्य विचार-बिन्दुओं को रेखांकित कर लेना होगा। उन्हें क्रम से अत्यन्त सक्षेप में अपने शब्दों में लिख लीजिए। इस लेखन में शब्दों की पुनरावृत्ति से बचना चाहिए।

शीर्षक चयन—'शीर्षक' में अवतरण के कथ्य का मूल केन्द्र-बिन्दु एक शब्द में या कुछ शब्दों में दिया जाता है। इससे अवतरण के समस्त कथ्य की धुरी हाथ आ जाती है।

प्रारूप की तैयारी—अब सक्षिप्तीकरण का प्रारूप तैयार करने का प्रयास कीजिए। यह प्रारूप है, न कि सक्षिप्तीकरण का अंतिम रूप। इसमें सशोधन की सम्भावना बनी रहती है। प्रारूप तैयार करते समय एक विचार-बिन्दु को दूसरे विचार-बिन्दु से सम्बन्ध स्थापित करने का ध्यान रखना चाहिए। एक-दूसरे से क्रमबद्ध होना चाहिए। विचारों में तारतम्य होना चाहिए।

शब्द गणना—मूल अवतरण के शब्दों की गणना करनी चाहिए। प्रारूप तैयार करते समय मूल अवतरण का तृतीयांश शब्दों का ध्यान रखना चाहिए।

संक्षिप्तीकरण का आकार निर्धारण—सक्षिप्तीकरण का आकार मूल का प्रायः तृतीयांश होना चाहिए। इससे कुछ कम हो तो हानि नहीं, पर अधिक के लिए विशेष कारण होने चाहिए।

लेखन—सक्षिप्तीकरण का अंतिम कार्य है—लेखन। अपने प्रारूप को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। यदि उसमें कठिन शब्द आ गये हैं तो उनको सरल शब्दों में बदल देना चाहिए। यदि कहीं विचारों में तारतम्य नहीं

है अथवा स्पष्टता नहीं है तो उसमें सुधार करना चाहिए। अन्तिम रूप देते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि शैली सरल तथा प्रवाहपूर्ण हो। भाषा शुद्ध और शिष्ट हो।

पुनर्परीक्षण—मूल अवतरण के साथ संक्षिप्तीकरण को मिलाना आवश्यक है। कभी-कभी महत्त्वपूर्ण बात छूट जाती है। असावधानी से उसमें व्याकरणगत अशुद्धियाँ रह जाती हैं। एक बार जब आप उसे पढ़ेंगे तो बहुत-सी अशुद्धियाँ आपके ध्यान में स्वयं आ जायेंगी। अतः पुनर्परीक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

संक्षिप्तीकरण के लिए कुछ उपयोगी बातें

संक्षिप्तीकरण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है :

१. बहुत अधिक शब्दों के प्रयोग से बचें। अतः शब्दों पर इतना अधिकार होना चाहिये कि कम शब्द और अर्थ अधिक मिले।
२. एक ही बात अथवा विचार को बार-बार दुहराना नहीं चाहिए।
३. यदि मूल अवतरण में अनावश्यक शब्दों का प्रयोग है तो संक्षिप्तीकरण करते समय उनसे बचना आवश्यक है।
४. कुछ लोग सीधी बात को कहने में वक्रोक्ति का सहारा लेते हैं। इस प्रकार की अभिव्यक्ति से बचना चाहिए।
५. संक्षिप्तीकरण करते समय शब्द-जाल का मोह त्याग देना चाहिए।
६. अत्यधिक अलंकारों के प्रयोग से बचना चाहिए।
७. प्रत्यक्ष कथन का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उस कथन को अप्रत्यक्ष रूप में परिवर्तित कर देना चाहिए।
८. संक्षिप्तीकरण की भाषा-शैली सीधी तथा सरल होनी चाहिए। उसमें क्लिष्ट तथा अस्पष्ट वाक्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
९. मूल अवतरण में आये हुए मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग से बचना चाहिए। इनका प्रयोग अवतरण को चमत्कारपूर्ण बना देता है किन्तु संक्षिप्तीकरण को चमत्कारपूर्ण नहीं होना चाहिए।

१०. लम्बे वाक्यों के स्थान पर छोटे-छोटे सरल वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए। लम्बे तथा बड़े वाक्यों के प्रयोग से भ्रम की सभावना बनी रहती है।

११ मूल अवतरण मे आये हुए विचारों की आलोचना नही करनी चाहिए। सक्षिप्तीकरण मे तो मूल के विचारो को ही प्रस्तुत किया जाता है।

१२ सक्षिप्तीकरण करते समय दृष्टान्तो तथा उदाहरणो को छोड़ा जा सकता है।

१३. सक्षिप्तीकरण मे भूमिका अथवा उपसहार के लिए स्थान नही होता है।

१४ सक्षिप्तीकरण मे सरलता का आग्रह होता है, अत. विशेषणो तथा क्रिया-विशेषणो का बहुत प्रयोग नही होना चाहिए। भाषागत अथवा व्याकरणगत अशुद्धियो का भी सक्षिप्तीकरण मे स्थान नही होना चाहिए।

(क) वाक्याश के लिए एक शब्द: इनका ज्ञान हो तो सक्षिप्तीकरण मे सहायता मिलती है। यथा.

वाक्य खण्ड	एक शब्द
एक से अधिक पत्नी रखने की प्रथा	बहुपत्नीत्व
जहाँ नदियों का मिलन हो	सगम
कष्ट से होने वाला काम	कष्टसाध्य
किसी विषय का विशेष ज्ञान रखने वाला	विशेषज्ञ

ऐसे बहुत से शब्द हैं। उनका ज्ञान आवश्यक है।

(ख) पर्यायवाचियो और उनके अर्थों के अन्तर का ज्ञान—कितने ही शब्द हैं जिनके कितने ही पर्यायवाची होते हैं। 'कमल' के कितने ही पर्यायवाचियों से हम परिचित हैं—यथा, पकज, अरविन्द, कज, जलज, पद्म, सरोज, नलिन, राजीव आदि। इनके अर्थों को ठीक-ठीक जानने की आवश्यकता सक्षिप्तीकरण मे तो है ही, अन्य लेखनो मे भी है, यथा, निबध-लेखन मे।

(ग) एक से अधिक अर्थ रखने वाले शब्दो के अर्थों का और उनके प्रयोग

के उचित संदर्भ का ज्ञान—यथा, (१) मैं कल आया था, और कल जाऊँगा; (२) यहां कितने ही कल-कारखाने हैं; (३) गर्मी के कारण कल ही नहीं पड़ती, अत्यंत विकलता रहती है; (४) कल-कल करती बहती नदिया। अन्य प्रकार के लेखन में भी इनका ज्ञान उपयोगी है।

(घ) बहुत से समान से लगने वाले किन्तु यथार्थ में भिन्न रूप और अर्थ वाले शब्दों से सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि प्रमाद में हम एक के स्थान पर दूसरे का उपयोग कर गये तो अर्थ में विकार और भ्रम पैदा हो जायगा। यथा—कुल एवं कूल : (क) वह राजकुल (वंश) से है, (ख) यहाँ यदि आप लिख गये कि 'वह राजकूल से है' तो भ्रांति होगी। 'कूल' का अर्थ होता है 'नदी का तट'।

'परिणाम' और 'परिमाण' में बहुत अन्तर है। फिर प्रमाद से एक के स्थान पर दूसरा लिख दिया जाता है।

'अभी तक मेरी परीक्षा का परिणाम नहीं आया'। यहाँ आप 'परिमाण' लिख गये तो अर्थ लगेगा ही नहीं, क्योंकि 'परिमाण' का अर्थ है 'मात्रा'।

वस्तुतः इनका ज्ञान सभी को होना चाहिये।

(ङ) लोम-विलोम शब्दों का ज्ञान भी बहुत सहायक होता है। इनका भी ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिये।

निबन्ध लेखन : तैयारियाँ

कोई भी कार्य बिना तैयारी के नहीं हो सकता। निबन्ध लेखन के लिए भी तैयारी की आवश्यकता है। इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि लेखक मनतः तैयार हो जाय।

१. मन का संकल्प—मन तो मूल प्रेरक शक्ति है। जिस काम में मन लग जायगा, वह काम अच्छा होगा और पूरा होकर रहेगा। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'। मन के संकल्प से बड़े-बड़े कार्य सम्भव हुए हैं। अतः जो व्यक्ति लेख लिखना चाहता है, उसे पहले अपने मन को उस ओर लगा देना चाहिए।

मन जब सकल्प कर लेता है तब वह उसी विषय की ओर बार-बार जाता है, और उसी पर बार-बार सोचता है तथा उससे ही सम्बन्धित बातो पर मनुष्य की दृष्टि जाती है। अत मन को आपने निबध लिखने के लिए तैयार कर लिया। मन मे कुछ पढने-लिखने के लिए उमग पैदा हो जाना मन के सकल्प का एक लक्षण है।

२ दूसरी आवश्यकता है 'विषय' का चुनाव—आप कोई भी विषय निबन्ध लिखने के लिए चुन लेते हैं। विषय चुनने मे हम पहले तो यह देखते हैं कि विषय हमारे मन के अनुकूल हो, दूसरे उससे हमारा कुछ न कुछ परिचय हो। आपको यदि सैर-सपाटा पसन्द है तो आप यात्रा सम्बन्धी लेख चुनेंगे। आप यदि जीवन की जटिलताओ मे फँसे हैं तो आप दार्शनिक या गम्भीर लेख का विषय चुनेंगे। आपको तीन विषय दिये गये—ताजमहल, ग्राम्य जीवन, विज्ञान के चमत्कार। अब इनमे से ताजमहल पर आप तभी लिख सकेंगे जब आपने इसको देखा हो, या इस पर कुछ पढा हो, ग्राम्य जीवन पर वह लिख सकते हैं जो गाँव के रहने वाले हैं, विज्ञान के चमत्कार वह लिख सकता है जिसने इस विषय पर पढा हो—अत तैयारी के लिए दो बातें और आवश्यक हुई .

प्रत्यक्ष दर्शन तथा
विषय का अध्ययन।

विषय के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि उस विषय पर मिलने वाली जितनी भी पुस्तकें आपको मिल सकें आप पढ लें। कम से कम दो पुस्तकें तो विषय पर अवश्य ही पढें। जिन पुस्तको को पढें उनके नोट अवश्य ले लें। इसके लिए प्रत्येक विद्यार्थी के पास कुछ पुस्तकें उनके निजी पुस्तकालय मे ही हो तो बहुत अच्छा रहे। फिर जिस विषय पर निबन्ध लिखना है, उसके अनुकूल ही और पुस्तकें जुटाने की आवश्यकता होगी। प्रत्येक विषय पर इसी प्रकार कुछ पुस्तकें पढ कर निबन्ध के लिए तैयार होना पडता है।

पर इस तैयारी के साथ निबन्ध लेखक को एक साधारण तैयारी की भी आवश्यकता रहती है। वह यह है कि जहाँ उसे अपने ज्ञानवर्द्धन और

अभिव्यक्ति कौशल के सम्वर्द्धन के लिए विविध विषयों की पुस्तकों को अवकाश के समय पढ़ते रहना चाहिए और उनके नोट लेते रहना चाहिए—वहां मासिक पत्र तथा साप्ताहिक पत्र के पढ़ने का चाव भी उसे होना चाहिए। विद्यार्थी और लेखक दोनों को इन सब पत्र-पत्रिकाओं से परिचय बनाये रहना चाहिए। जो पढ़ा जाय उसके नोट भी अवश्य लिए जायें। इस प्रकार धीरे-धीरे निबन्ध-लेखक तैयार होता रहता है।

इस प्रकार अध्ययन के द्वारा सामग्री एकत्र हो जाने पर, उस सामग्री पर मनन होना चाहिए। हर प्रकार से उस पर विचार करके प्राप्त सामग्री को कितने उपयोग में और कहां लाना है यह निर्धारित करते जाना चाहिए। अब आप निबन्ध लिखने के लिए निबन्ध की एक 'रूपरेखा' प्रस्तुत करेंगे।

वास्तव में तो विद्यार्थी को दो रूपरेखाएं प्रस्तुत करनी चाहिए। एक में तो उसे उस विषय पर आने वाले समस्त विचारों और बातों को लिख डालना चाहिए। इसे 'अव्यवस्थित रूपरेखा' कह सकते हैं।

यह अव्यवस्थित रूपरेखा आपकी समस्त सामग्री और विचार-श्रम का सार प्रस्तुत कर देती है। इसी के आधार पर निबन्ध की 'व्यवस्थित रूपरेखा' बनाई जा सकती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि निबन्ध को हम चार बड़े भागों में बांट लें :

१. भूमिका अथवा प्रस्तावना,
२. विषय-वर्णन,
३. विवेचन,
४. उपसंहार।

'रूपरेखा' तैयार हो गयी। आपकी कलम कागज पर चलने के लिए उत्सुक है। किन्तु कलम उठाते ही प्रश्न पैदा होता है कि आरम्भ कैसे किया जाय?

आरम्भ की समस्या कुछ कठिन अवश्य है, पर हमें यहां सरसरी तौर पर यह देख लेना है कि आरम्भ प्रायः कितने प्रकार से हो सकता है।

आरम्भ के प्रकार

१ स्तुत्यात्मक—एक आरम्भ 'स्तुत्यात्मक' हो सकता है। मान लीजिए 'विज्ञान के चमत्कार' पर ही आपको निबन्ध लिखना है, तो स्तुत्यात्मक आरम्भ कुछ इस प्रकार होगा—

'—धन्य है उस परमपिता को जिसने यह सृष्टि रची है। वह परमात्मा इस समस्त सृष्टि का मूल और विधाता है। उसकी सत्ता के बिना पत्ता तक नही हिलता। वह सब मे व्याप्त है — ईशावास्यमिद सर्वं — वही इसका कर्ता-धर्ता है। उसको कोटिश प्रणाम है कि उसने आज मुझे यह अवसर दिया है कि मैं विज्ञान के चमत्कार पर कुछ लिख सकू।'

और तब इसके उपरान्त आप अपने विषय का वर्णन आरम्भ करते हैं। यह आरम्भ आज अच्छा नही माना जाता है। इस प्रकार आरम्भ नही करना चाहिए। हाँ, निबन्ध ही यदि ईश्वर-स्तुति पर हो तो इस प्रकार आरम्भ किया जा सकता है।

२ आवेगात्मक—कभी-कभी कोई लेखक आवेगमय उद्गारो से निबन्ध आरम्भ करते हैं—

'अहा हा ! कैसा समाँ बँध रहा है। सामने मच पर सभापति बैठे हैं। पास मे खडे कवि-कोकिल सुरीले स्वर मे कविता पाठ कर रहे हैं। वाह ! वाह ! क्या कहने हैं इस कला-प्रेम के—' अथवा

'हाय हाय ! कैसा अन्धेर है ? अपनी ही सरकार, और यह अन्धकार। इस डिमाक्रेसी — प्रजातन्त्र से कल्याण होने से रहा। इससे तो तानाशाही ही भली। अफसोस ! सद् अफसोस ! शोर ! शोर ! ! शोर ! ! !'

आवेगात्मक आरम्भ मे अभद्रता ही नही, वरन् भावुकता का दुरुपयोग होता है। फिर बिना विषय को समझे आवेगों के झटके देना क्रूरता ही कही जायगी। अत इस प्रकार के आरम्भ भी अनुचित माने जाते हैं।

३ अन्तरम्य उक्ति उल्लेखात्मक—कभी-कभी लेखक किसी ऐसी रोचक बात का ऊपर उल्लेख कर देता है कि लेख के आगे के वर्णन से उसका कोई सम्बन्ध नही प्रतीत होता। वही आगे जाकर उस ऊपर की 'उक्ति'

का रहस्य प्रकट होता है। इस प्रकार के आरम्भ से लेखक उत्कण्ठा को उलझाये रख कर लेख में रुचि बनाये रखना चाहता है। इसका उदाहरण यह हो सकता है —

'जूते उतार कर चलो....

'मेरी आँखों के सामने गोवर्द्धन की चितकबरी पहाड़ी पड़ी हुई थी। उस पर गोंदी की लताएं थीं। मिसावांस के पौधे जहाँ-तहाँ लहलहा रहे थे। उसके शिखर पर श्रीनाथ जी का मन्दिर चमक रहा था। मैं उस पर चढ़ने को तैयार था कि एक कर्कश ध्वनि का धक्का लगा मुझे। जूते उतारने पड़े......।'

आरम्भ में जो वाक्य दिया गया है वह आगे से सम्बन्ध रखता है; किन्तु उसे सबसे ऊपर रख कर कौतूहल पैदा कर दिया गया है।

४. सूक्ति-आरम्भ — कुछ लेखकों को यह चाव होता है कि वे किसी कवि की कोई सूक्ति लिख कर अपना लेख आरम्भ करते हैं। यह सूक्ति या तो (१) लेख के मूल मर्म को स्पष्ट करती है, या (२) उसका सहारा लेकर लेखक प्रकृत विषय की चर्चा आरम्भ करता है। ऐसी सूक्ति अपने भावों की पुष्टि में पहले ही लिख दी जाती है।

उदाहरण के लिए 'व्यायाम' पर निबन्ध लिखने वाला आरम्भ में ही यह श्लोक देकर आगे विषय की प्रस्तावना कर सकता है —

'व्यायाम पुष्टगात्रस्य बुद्धिस्तेजो यशोबलम्'

५. उद्धरणात्मक — पद्य अथवा काव्य के अवतरण की भाँति ही किसी गद्य के उद्धरण से भी आरम्भ हो सकता है।

६. कथात्मक आरम्भ — कोई-कोई निबन्ध किसी छोटी कथा के रोचक वर्णन के साथ ही आरम्भ किये जाते हैं। उस कथा के उल्लेख के द्वारा उसमें वर्णित किसी घटना, अभिप्राय या उद्देश्य को उदाहरण के रूप में लेकर निबन्ध के मुख्य विषयों की चर्चा की जाती है। 'ब्रह्मचर्य' नाम के किसी निबन्ध को यों आरम्भ किया जा सकता है —

'महाभारत का रणक्षेत्र है। भीष्म के भीषण प्रहारों से पाण्डव सेना विकल है। भय से सभी मन में काँप रहे हैं। कृष्ण के साथ अर्जुन अपनी

पूरी शक्ति से भीष्म का अवरोध कर रहा है—पर कहाँ अर्जुन, कहाँ भीष्म? यशस्वी अर्जुन कुण्ठित हो रहा है। अन्तत एक किंपुरुष की आड से शर-सधान किया गया। भीष्म ने किंपुरुष पर शस्त्र उठाना अस्वीकार कर दिया। उनको अर्जुन ने बाणों से बेध दिया। बाण ही उनकी शय्या हो गये। तब भी वे प्रसन्न थे। मृत्यु को उन्होंने तभी ललकार कर कहा कि मैं सूर्य के उत्तरायण होने पर ही प्राण त्यागूंगा। मृत्यु को आज्ञा माननी पडी। इतनी शक्ति, इतना बल, इतना साहस भीष्म में कहाँ से आया? यह एक आजीवन ब्रह्मचारी का चित्र है।'

७ परिभाषात्मक आरम्भ — यह देखा गया है कि कुछ निबन्ध प्रस्तुत विषय या उसके किसी अंश की 'परिभाषा' के साथ आरम्भ किये जाते हैं। प० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के 'साहित्य' शीर्षक प्रसिद्ध निबन्ध का ऐसा ही आरम्भ है। उन्होंने निबन्ध के पहले वाक्य में परिभाषा ही दी है — 'ज्ञान-राशि के सचित कोश का नाम साहित्य है।'

८. घटनात्मक आरम्भ — किसी घटना का उल्लेख करके, अथवा प्रस्तुत विषय की पृष्ठभूमि बनाने वाली घटना का वर्णन करते हुए, अथवा किसी ऐसी घटना का चित्र देते हुए भी निबन्ध का आरम्भ किया जाता है, जिससे प्रस्तुत विषय को प्रेरणा मिली हो।

९ प्रश्नात्मक आरम्भ — 'प्रश्न' के द्वारा ही निबन्ध का अच्छा आरम्भ हो सकता है। प्रश्न सारगर्भित होना चाहिए। 'साहित्य के उद्देश्य' से सम्बन्धित निबन्ध एक वैदिक प्रश्न से आरम्भ किया जा सकता है—

'कस्मै देवाय हविषा विधेम'? किस देवता पर अपनी हवि न्यौछावर की जाय? किसके लिए साहित्य लिखा जाय? वैदिक ऋषियों ने भी प्रश्न किया था, वह मौलिक और मार्मिक था। आधुनिक युग में यही प्रश्न जब साहित्य के लिए किया जाय तो कम महत्त्वपूर्ण नहीं ठहरेगा।'

१० तुलनात्मक आरम्भ — किसी वस्तु के वर्णन का आरम्भ कभी-कभी उसी के समान किसी दूसरी वस्तु की तुलना से भी हो सकता है।

पूर्वपक्षारम्भ — विवादात्मक विषय सम्बन्धी निबन्धों का आरम्भ कभी-कभी पूर्व पक्ष की पूर्ण विवेचना के साथ किया जा सकता है।

पूर्वक्रम संकेत से — आरम्भ से पढ़ते ही विदित होता है कि निबन्ध जहां से आरम्भ किया जा रहा है, वह वस्तुतः उससे पहले से ही आरम्भ हुआ होगा, जिसे लेखक ने छोड़ दिया है, वह इसलिए कि पाठक स्वयं उसकी कुछ कल्पना करके, उसके आगे की बात इस प्रस्तुत निबन्ध में पढ़ें — 'गाँवों की ओर' शीर्षक एक निबन्ध का आरम्भ इस प्रकार है—

'और हम लोग अवश्य गाँवों को चलेंगे।' कभी-कभी ऐसा आरम्भ 'तो' के साथ भी होता है।

११. ऐतिहासिक आरम्भ — कभी ऐसा विषय प्रस्तुत हो सकता है जिसमें इतिहास का एक सूक्ष्म विवेचन आवश्यक हो जाय।

१२. फलागमात्मक आरम्भ — निबन्ध में विषय के पूर्ण विवेचन के उपरान्त जिस परिणाम अथवा निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है, कोई-कोई लेखक उसे ही सबसे पहले देकर निबन्ध का आरम्भ करते हैं, और उसे ही अन्त में सिद्ध हुआ दिखाते हैं।

१३. आकस्मिक आरम्भ — कोई-कोई निबन्ध बिना किसी भूमिका के एक आकस्मिकता के साथ आरम्भ किया जाता है।

इस प्रकार कितनी ही भाँति के आरम्भ मिलते हैं, अब जब निबन्ध लिखने के लिए तैयार हैं इनमें से किसी शैली को ग्रहण कर निबन्ध आरम्भ कर सकते हैं, या ऐसे ही किसी और प्रकार को अपना सकते हैं। यह ध्यान रखने की बात है कि आरम्भ उसी शैली का हो जिस शैली में निबन्ध लिखने की कल्पना आपने की है।

शैली

शैली निबन्ध के लिए सबसे आवश्यक तत्त्व है। शैली के सम्बन्ध में बड़ी गहरी और ऊंची बातें कही जाती हैं। शैली और मनुष्य के चरित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध बताया जाता है। हमें ऐसी किसी ऊंची बात से सम्बन्ध

नही । शैली का साधारण अर्थ भी हम समझ लें तो बहुत है। शैली का स्थूल अर्थ 'ढग' होता है। निबन्ध लिखते समय हमे ढग भी सोच लेना चाहिए। किस ढग मे हमे निबन्ध लिखना है ? किन्तु यह बात भी सत्य है कि प्रत्येक लेखक की अपनी निजी शैली होती है। उसको चाहिए कि वह अपनी निजी शैली को पहचान कर उसी का विकास करे।

अच्छी शैली प्राप्त करने के लिए 'मन की उमग' तथा 'अभ्यास' की आवश्यकता है और इनको पुष्ट करने के लिए 'अध्ययन'। अध्ययन से हमे केवल सामग्री ही नही मिलती शैली भी मिलती है। शैली प्राप्त करने और विकसित करने के लिए हमे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जैसा नीचे लिखा जा रहा है —

१ प्रसिद्ध निबन्ध लेखको की पुस्तको की सूची हमे अपने अध्यापक से माँग लेनी चाहिए।

२ उनकी पुस्तकें लेकर हमे पढ जाना चाहिए।

३ हमे उन पुस्तको मे जिस शैली के निबन्ध विशेष पसन्द आयें, उसी प्रकार के निबन्ध हमे और पढने चाहिए। मासिक पत्रो मे हम उन लेखको के निबन्ध अवश्य पढ़ें जिनके निबन्ध हमे पसन्द आते हैं।

४ ऐसे निबन्धो को पढते समय उस शैली मे आये मुहावरे और शब्दो को हमे हृदयगम करते जाना चाहिए।

५ ऐसे काफी निबन्ध पढ लेने के उपरान्त किसी एक ही विषय पर हमे कितनी ही शैलियों मे निबन्ध लिखने का अभ्यास करना चाहिए। उनमे से जिस शैली मे हमारी अभिव्यक्ति सबसे मनोरम हुई हो, उसी शैली को अपना कर अधिकाशत उसी शैली मे हमे निबन्ध लिखने चाहिए। पुनर्लेखन का अभ्यास बहुत उपयोगी होता है। एक ही अर्थ रखने वाले वाक्य को कई प्रकार से लिखा जाय, जैसे —

'प्रात काल हुआ', 'रात्रि के अन्धकार को विदीर्ण कर सूर्य की प्रथम किरणें फूटी', 'दिवा-सुन्दरी ने अपने काले बालो को हटाकर मुख पर देदीप्यमान बेंदी लगायी।' आदि।

शैली का सम्बन्ध दो बातो से है भाषा से तथा प्रतिपादन से।

भाषा शैली

भाषा शैली में हमारे पास — १. शब्द-भंडार होना चाहिए। इसके लिए न केवल हमारे पास शब्दों की गिनती ही अधिक होनी चाहिये, वरन् एक शब्द के अनेकों पर्यायवाची शब्दों का भी ज्ञान होना चाहिए। शब्दों के इन पर्यायवाचियों के उचित प्रयोग का अभ्यास करना चाहिए।

२. भाषा के विविध मुहावरों का ज्ञान होना चाहिए, और उपयोग करना आना चाहिए।

३. वाक्य-विन्यास की एक नहीं अनेक प्रणालियों का ज्ञान और अभ्यास होना चाहिए। एक ही बात को विविध वाक्य-शैली में लिखने का अभ्यास करना चाहिए।

४. शब्द-चमत्कार : श्लेष-यमक आदि के द्वारा।

५. शब्द-सौष्ठव : भावानुकूल कोमल, परुष और मधुर शब्दों का उपयोग।

प्रतिपादन शैली

शैली का उपयोग विषय प्रतिपादन में भी देखा जाता है। विषय प्रतिपादन के कुछ प्रकार निम्नलिखित हैं :

१. उदाहरण — निबन्ध में अपने कथनों की उदाहरणों से पुष्टि करना।

२. उद्धरण — बीच-बीच में संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, हिन्दी, उर्दू आदि के साहित्य में से अनुकूल उद्धरण देकर कथन का पोषण करना।

३. तर्क — किसी विवेचन में तर्कों और युक्तियों का उपयोग करना।

४. प्रमाण — किसी तथ्य, सत्य अथवा कथन के परिपोषण के लिए किसी प्रामाणिक ग्रन्थ, व्यक्ति या वस्तु का उल्लेख करते जाना।

५. अलंकार — अपनी किसी बात को स्पष्ट करने, उसकी तीव्रता बताने, आदि के लिए उपमा आदि अलंकारों का उपयोग करना।

६. व्यंग, कटाक्ष, आक्षेप, कटूक्ति, परिहास आदि का उपयोग करना।

७ *भावुकता* — कहीं हृदयस्पर्शिता लाने के लिए भावोन्मादपूर्ण शब्दावली का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा विविध रसों का समावेश निबन्ध में किया जाता है, आदि।

ये सब बातें अध्ययन करने और उसके अनुकूल लिखने का निरन्तर अभ्यास करने से प्राप्त हो जाती हैं।

निबन्धों के 'विषय-निरूपण-शैली' की दृष्टि से भी कई भेद किए जाते हैं। वे इस प्रकार हैं—

निबन्ध

वर्णनात्मक | कथात्मक | विवरणात्मक | विचारात्मक | भावात्मक
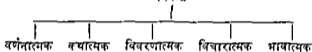
वर्णनात्मक निबन्ध — इन निबन्धों में किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना आदि का वर्णन मात्र रहता है। ऐसे निबन्धों में निम्नलिखित बातों पर दृष्टि रखनी होती है—

१ वर्णन व्यवस्थित और क्रमपूर्वक हो — किसी वस्तु का ऐसा वर्णन किया जाय कि तस्वीर खिंच जाय। जो अवयव जहाँ हैं वर्णन में भी वहीं आयें।

२ विशदता हो — जो बात लिखी जाय वह ऐसी लिखी जाय कि पूर्ण प्रतीत हो। कोई आवश्यक बात छूट न जाय।

३ सूक्ष्म निरीक्षण — लेखक की दृष्टि छोटी से छोटी बात को देख ले, और उसका अपने निबन्ध में ऐसे ढंग से वर्णन करे कि वर्णन प्रभावोत्पादक हो जाय।

४ चयन — इसी के साथ यह भी आवश्यक है कि ऐसी छोटी बातें न सम्मिलित की जायें जो निरर्थक हों।

५ दृष्टि वैचित्र्य — निबन्ध में मौलिकता लाने के लिए यदि लेखक समस्त वर्णन में कोई नयी दृष्टि रखे तो अच्छा रहता है।

६ विषय का ज्ञान — जिस पर लिख रहे हैं उसका पूर्ण ज्ञान होना

जरूरी है। यह ज्ञान पुस्तकें पढ़ कर, प्रत्यक्ष देखकर या जानकार लोगों से सुनकर प्राप्त किया जा सकता है।

विवरणात्मक — विवरणात्मक निवन्धों में किसी दृश्य अथवा स्थिति अथवा आयोजन का वर्णन दिया जाता है। वर्णनात्मक निबन्ध में एक चित्र प्रस्तुत किया जाता है, विवरणात्मक निबंध में एक ब्यौरा दिया जाता है। एक के वाद एक वात दी जाती है। किसी मेले का, किसी यात्रा का, किसी सभा का दृश्य अथवा उसका वर्ष भर की प्रगति का वर्णन ऐसे ही निवन्धों के अन्तर्गत आता है। विवरणात्मक निवन्ध में विविध मनोहर वर्णनों को माला के मनके की भाँति एक सूत्र में पिरो देते हैं।

कथात्मक — कथात्मक निवन्ध के लिए किसी साधारण कथानक की आवश्यकता रहती है। उस कथानक को कहानी का रूप नहीं दिया जाता, क्रमशः कथा को किसी अभिप्राय विशेष से स्पष्ट करते जाते हैं। 'संस्मरण', 'रेखाचित्र', ऐतिहासिक वृत्त आदि इस प्रकार में आ सकते हैं।

विचारात्मक — विचारात्मक निवन्धों में विचार का तत्त्व प्रधान रहता है। ये दो प्रकार के हो सकते हैं — एक आलोचनात्मक — किसी कला कृति अथवा साहित्यिक रचना पर जो विचार प्रस्तुत किए जाते हैं वे आलोचनात्मक कहे जायेंगे। दूसरा दार्शनिक — किसी अन्य वात पर सूक्ष्म विचार दार्शनिक निवन्धों के अन्तर्गत आयेगा।

भावात्मक — भावात्मक निवन्ध उन्हें कहते हैं जिनमें भावुकता, रस या चमत्कार की प्रधानता हो। 'गद्य काव्य' भी इसके अन्तर्गत आते हैं।

निबन्ध लिखते समय यह भी किंचित विचार कर लेना चाहिए कि हम किस प्रकार का निवन्ध लिखना चाहते हैं। यों निवन्ध को रोचक वनाने के लिए इन सभी का थोड़ा बहुत पुट रहना चाहिए, और रहता भी है पर प्रधानता किसी एक की हो जाती है।

निवन्ध के सम्बन्ध में इतनी वातें जान लेने के वाद और इसी प्रकार लिखने के लिए प्रस्तुत होकर आपको कुछ अपने भाषा-विन्यास पर भी ध्यान देना आवश्यक है। भाषा-शैली के सम्बन्ध में तो ऊपर कुछ संकेत

किया जा चुका है, यहाँ कुछ ऐसी दृष्टव्य बातें दी जाती हैं, जिनको आरम्भ करने वाले लेखको को गाठ बाँध लेना चाहिए। वे कुछ विशेष बातें निम्नलिखित हैं—

१ छोटे-छोटे और पूर्ण वाक्य लिखो। लम्बे और अधूरे वाक्यो से आप जो कहना चाहते हैं, उसको भली प्रकार स्पष्ट होने मे बाधा पडती है, व्याकरण की त्रुटियाँ पैदा हो सकती हैं, जिससे लेख भद्दा हो जायगा।

२ सयोजको का उपयोग जहाँ तक हो सके बिलकुल मत करो — और, या, अथवा, किन्तु, परन्तु आदि को जहाँ तक हो सके बचाओ। इससे शिथिलता आती है।

३ शब्दो के चयन पर ध्यान दो। भाव के अनुकूल शब्दो को रखने की चेष्टा करो।

४ पैराग्राफ बना कर लिखो।

५ विराम-चिह्नों का ठीक और अच्छा उपयोग करो।

६ शब्द शुद्ध लिखो — कोश मे देखकर शुद्ध रूप का ज्ञान कर लो।

७ साहित्यिक निबन्धो मे अको (२, ३, ४) का उपयोग मत करो, उन्हें शब्दो द्वारा लिखो, यथा एक, दो आदि।

पत्र-लेखन मे आवेदन-पत्र

पत्र-लेखन हमारे जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता हो गयी है। प्राय पत्र आवश्यकतानुसार ही लिखे जाते हैं। किन्तु पत्र-लेखन को कला का रूप भी दे दिया गया है। पत्र-लेखन को कला का रूप प्राय साहित्यकार ने ही दिया है।

अब पत्र-लेखन के दो क्षेत्र हो गये हैं — एक निजी क्षेत्र, दूसरा व्यावसायिक और व्यावहारिक।

निजी क्षेत्र मे पत्र-लेखन पारस्परिक सबधियो को निजी काम मे लिखे जाते हैं।

व्यावसायिक क्षेत्र में पत्र-लेखन के कितने ही प्रकार हो जाते हैं। जैसे व्यवसाय के क्षेत्र के पत्र, शासकीय क्षेत्र के पत्र। ये पत्र विशेष अभिप्राय के आधार पर कई प्रकार के हो सकते हैं। इन्हीं प्रकारों में से एक प्रकार है —'आवेदन-पत्र' का।

'आवेदन-पत्र', अर्जी या ऐप्लीकेशन (अंग्रेजी शब्द) को कहते हैं। इसमें अपनी योग्यता का विवरण देकर उसके अनुकूल किसी स्थान या पद को प्राप्त करने के लिए निवेदन किया जाता है। सामान्य पत्र की भाँति इसके भी चार अंग तो होते ही हैः १. अपना पता एवं तिथि, २. संबोधन-अभिवादन, ३. निवेदन एवं योग्यता का ब्यौरा, ४. शील द्योतक शब्दावली के साथ हस्ताक्षर। इन चार के अतिरिक्त आवेदन-पत्र में पाँचवाँ अंग होता है 'प्रेषिति' का नाम व पता। अपना पता लिखने के उपरान्त इसे लिखा जाता है। एक छठवाँ अंग होता है: विषय-निर्देश। इसमें संक्षेप में आवेदन-पत्र के मुख्य विषय का संकेत रहता है। आवेदन-पत्र का सामान्य रूप यह होगा—

१ प्रेषक/निवेदक/आवेदक का पता

२ प्रेषिति का पद-नाम व पता

३ (विषय-निर्देश: यथा आपके कालेज में प्रवक्ता-पद के लिए आवेदन आदि)

४ सम्बोधन (यह पत्र सदा ही औपचारिक होता है, अतः इसमें सम्बोधन में केवल 'महोदय' लिखा जाता है।)

५ निवेदन: इसके ये अंग होते हैं — (क) स्रोत (किसी विज्ञापन या अन्य सूचना स्रोत का उल्लेख करते हुए), (ख) प्रत्याशी होने की सूचना (विज्ञापित पद पर नियुक्ति के लिए/कक्षा में प्रवेश के लिए/छात्रवृत्ति के लिए, आदि अपने प्रत्याशी होने की सूचना), (ग) अपनी योग्यताएं तथा अर्हताएं। तालिकाबद्ध रूप में शैक्षणिक योग्यता देना ठीक रहता है। विज्ञापित पद के लिए आप में जो विशेष योग्यताएं हैं

उनका उल्लेख भी करना होता है। (घ) पूर्व अनुभव का विवरण। (ङ) आपकी रुचियां और व्यसन। (च) वय (जन्म के दिनांक और जन्मस्थान के उल्लेख के साथ)। (छ) अपने कथन की पुष्टि और प्रामाणिकता के लिए सलग्न प्रमाण-पत्रों का विवरण। (ज) उन विशिष्ट व्यक्तियों के नाम व पते (जो आपके निकट सम्बन्धी न हों) जिनसे आपके सबध में पूछताछ की जा सकती हो। अन्त में (झ) अपना निवेदन/प्रार्थना। (ञ) एक और विशेष अंग होता है 'आश्वासन' —इसमें आवेदक आश्वासन देता है कि नियुक्त हो जाने पर मैं अपने पद का कार्य अनुशासन और उत्तरदायित्व की भावना से सम्पन्न करूंगा, आदि।

शील द्योतक शब्दावली भी एक प्रकार से ऐसे आवेदन-पत्रों में बंधे-बँधाये ढंग की होती है। यथा—

'विनीत
—क ख ग'

यह एक स्थूल रूपरेखा आवेदन-पत्र की है। विभिन्न आवेदक अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुसार इसमें हेर-फेर कर सकते हैं।

परिशिष्ट

सामान्य हिन्दी

प्रथम वर्ष टी. टी. सी. का पाठ्य-क्रम

भूमिका : पुस्तक - विषय - निर्देश

क—गद्य खंड

१. ललित निबन्ध
२. संस्मरण
३. इंटर्व्यूज़
४. रेखाचित्र
५. रिपोर्ताज
६. साहित्यिक पत्र
७. गद्य काव्य
८. कहानियाँ तथा लघु कथाएँ
९. एकांकी
१०. जीवनी
११. भाषण
१२. लघु आत्मकथा (कल्पित)
१३. यात्रा-साहित्य
१४. शिकार-साहित्य
१५. वाणिज्य-विज्ञान संबंधी लेख

ख—पद्य खण्ड

१. नाट्यगीत
२. राष्ट्रीय कविता
३. समाजवादी दृष्टिकोण

ग—व्याकरण एवं रचना

१. निबन्ध लेखन, आवेदन-पत्र, संक्षिप्तीकरण
२. शब्द संरचना (प्रत्यय, उपसर्ग आदि के योग से) एवं शुद्धिकरण
३. प्रायोगिक व्याकरण
४. मुहावरे एवं कहावतें

प्रथम वर्ष टी डी सी

सामान्य हिन्दी

उपयोगी इकाइयाँ एवं अंक विभाजन

			अंक
पहली इकाई	व्याख्याएँ गद्य से २		५+५=१०
	पद्य से १		५=५
			१५
दूसरी इकाई	पाठ्य पुस्तक के आधार पर भूमिका सहित : २ प्रश्न		
		१ प्रश्न गद्य पर	१०
		१ प्रश्न पद्य पर	१०
तीसरी इकाई	संक्षिप्तीकरण	१ प्रश्न	५
	एव		
	शब्द संरचना+ मुहावरे	२ प्रश्न	३+३=६
चौथी इकाई	व्याकरण	१ प्रश्न	४
	एव		
	शुद्धिकरण	१ प्रश्न	५
पाँचवी इकाई	निबंध	१ प्रश्न	१०
	एव		
	आवेदन-पत्र		५
			कुल ७०

ज्ञापन

उन सबके प्रति जिन्होंने किसी भी रूप में इस संग्रह को तैयार करने में सहायता पहुंचायी, तथा उन सब के प्रति जिन्होंने अपने निबंधों को इस संग्रह में सम्मिलित करने की अनुमति प्रदान की, उन पुस्तकालयों के प्रति जिनसे पुस्तकें प्राप्त हो सकीं कि उनमें से अच्छे निबंधों का चुनाव किया जा सके एवं इस पुस्तक के समस्त संपादकों के प्रति और श्री सुरेन्द्र उपाध्याय और श्री राम प्रकाश कुलश्रेष्ठ के प्रति कि जिन्होंने यथावसर संपादकों को अपेक्षित सहायता दी, विश्वविद्यालय अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

गोविन्द चन्द्र पांडे
कुलपति

प्रकाशक श्री राय कृष्णदास, श्री वाचस्पति पाठक तथा भारती-भंडार, श्री सुमित्रानन्दन गुप्त तथा साहित्य सदन, श्रीमती गुलाबराय, श्री भगवतीशरण सिंह तथा राधाकृष्ण प्रकाशन, राजकमल प्रकाशन, श्री ईशकुमार पुरी तथा आत्माराम एंड संस, श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी, डा० रणवीर रांग्रा तथा वाणी प्रकाशन, किताब महल, श्री कल्याण घोष तथा इण्डियन प्रेस लि०, पूर्वोदय प्रकाशन, प्रो० विद्यानिवास मिश्र, प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री, श्री सन्तोष कुमार, श्री नरेन्द्र शर्मा, श्रीमती सरला शर्मा, श्री केदारनाथ सिंह, श्री केदारनाथ अग्रवाल, श्री श्रीपतराय, श्रीमती (डा०) बिन्दु अग्रवाल, श्री देवेन्द्र कुमार बेनीपुरी और डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' के आभारी हैं जिन्होंने कापीराइट रचनाओं को उद्धृत करने की अनुमति दी।